IIAS

पहाड़ी भाषा तथा साहित्य

सम्पादन:
डॉ. बंशीराम शर्मा
डॉ. जगदीश चन्द्र शर्मा

पहाड़ी भाषा तथा साहित्य

पहाड़ी भाषा तथा साहित्य

सम्पादन
डॉ. बंशीराम शर्मा
डॉ. जगदीश चन्द्र शर्मा

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास,
शिमला - 171005

प्रथम संस्करण 2002

प्रकाशक
सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला

मुद्रक
ग्लोरियस प्रिंटर्स, नई दिल्ली

आमुख

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला ने वर्ष 1995 में 'पहाड़ी भाषा तथा साहित्य' विषय पर एक राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। संगोष्ठी का आयोजन हिमाचल प्रदेश कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी; भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर; हिमाचल प्रदेश पहाड़ी भाषा साहित्य सभा; तथा भारतीय भाषा संगम के सहयोग से किया गया। पहाड़ी भाषा पर राष्ट्रीय स्तर पर यह दूसरा प्रयास था; इससे पूर्व 1989 में एक अन्य संगोष्ठी दिल्ली में आयोजित की गई थी। शिमला के संगोष्ठी में पहाड़ी भाषा के तीन पक्षों पर प्रकाश डाला गया: 'पहाड़ी भाषा: इतिहास और साहित्यिक विकास यात्रा', 'पहाड़ी भाषा का तुल्नात्मक अध्ययन' और 'पहाड़ी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन'।

हर्ष का विषय है कि संगोष्ठी में प्रस्तुत प्रपत्रों को *पहाड़ी भाषा तथा साहित्य* नामक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। पुस्तक का संपादन बंशीराम शर्मा तथा जगदीश चंद्र शर्मा ने किया है जो बधाई के पात्र हैं क्योंकि अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी वे इस कार्य में सफल हुए। आशा ही नहीं विश्वास है कि यह पुस्तक पहाड़ी भाषा की शास्त्रीय विवेचना के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सोपान स्थापित करेगी और विद्धत समाज इस पुस्तक का स्वागत करेगा।

15 फरवरी 2002
शिमला

विनोद चंद्र श्रीवास्तव
निदेशक

सम्पादकीय

हिमालय प्रकृति की मनोहर रचना है । विश्व के इस अपेक्षाकृत कम आयु के पर्वतराज की शृंखलाओं की ऊंचाई ही मानव जाति के लिए आश्चर्य तथा कौतुहल का कारण नहीं है बल्कि विभिन्न मानव समुदायों के आवास, संस्कृति की विविधता, भाषागत भिन्नताओं तथा लोक विश्वासों के बहुरंगी अंकन के कारण यह क्षेत्र संस्कृति के अध्येताओं, कला पारखियों, प्रकृति प्रेमियों, पर्यटकों तथा साधकों के लिए वर्णनातीत आकर्षण का केन्द्र बन गया है । हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला को पर्वतों की रानी कहा जाता है। इसी सुरम्य स्थली में ऐतिहासिक तथा भव्य भवन राष्ट्रपति निवास, जिसे पहले वाइसरिगल लॉज कहा जाता था, में भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान अवस्थित है । सस्थान की विभिन्न गतिविधियों में विविध विषयों पर संगोष्ठियां आयोजित करवाना भी सम्मिलित है। विश्व तथा देश के विचारकों व विशेषज्ञों की वार्ताएं संस्थान की गतिविधियों का आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण अंग हैं । इसी क्रम में पहाड़ी भाषा तथा साहित्य की द्वितीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन संस्थान के तत्वावधान में हिमाचल कला, संस्कृति एवम् भाषा अकादमी; भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर; हिमाचल पहाड़ी साहित्य सभा (पं0); तथा भारतीय भाषा संगम (पं0) के सहयोग से किया गया। समारोह का उद्घाटन श्री सुधाकर राव नाइक, राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश ने किया । समारोह की अध्यक्षता प्रो0 नारायण चन्द पराशर, शिक्षा तथा संस्कृति मन्त्री, हि0 प्र0 ने की ।

पहाड़ी भाषा एवम् साहित्य के सम्बन्ध में पहला राष्ट्रीय सेमिनार फरवरी, 1989 में हिमाचल भवन, नई दिल्ली में आयोजित हुआ । इसका आयोजन हिमाचल कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी, शिमला तथा हिमाचल पहाड़ी साहित्य सभा (पं0) दिल्ली, के संयुक्त तत्वावधान में हुआ था । समारोह का उद्घाटन करते हुए डॉ0 बलराम जाखड़, तत्कालीन अध्यक्ष, लोकसभा ने प्रादेशिक भाषाओं के विकास पर बल दिया । उन्होंने कहा कि सभी लोक भाषाएं समान हैं । कोई भाषा किसी अन्य भाषा से बढ़िया या घटिया नहीं है । उक्त समारोह में देश के विभिन्न भागों से पधारे लगभग 50 प्रतिभागियों ने अपना योगदान दिया । द्वितीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला में 2-3 मई,

1995 को हुआ । कुछ प्रतिभागियों को भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान द्वारा आमन्त्रित किया गया तथा अन्य अकादमी तथा भारतीय भाषा संस्थान मैसूर द्वारा आमन्त्रित किए गए । गोष्ठी में बीस प्रपत्र प्रस्तुत किए गए तथा दो दिनों में इन पर विस्तृत चर्चा हुई । भारतीय भाषा संस्थान मैसूर की ओर से भाषा-विज्ञान सम्बन्धी पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए कुछ भाषा-विदों को संगोष्ठी में सहयोजित किया गया । पत्रों के सम्पादन का कार्य सम्पन्न करते हुए प्रतिभागी साहित्यकारों से सम्पर्क करके उन्हें परिवर्तित- परिवर्द्धित पत्र भेजने की अभ्यर्थना की गई परन्तु उनमें से अनेक ने पूर्व प्रस्तुत आलेख को ही अन्तिम बताते हुए उसमें संशोधन करना आवश्यक नहीं समझा । पत्र-व्यवहार तथा अन्य बाधाओं सम्बन्धी कारणों से प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में अनावश्यक रूप से बिलम्ब हुआ । संगोष्ठी का उद्घाटन संस्थान के पुस्तकालय कक्ष में हुआ। इस अवसर पर हिमाचल कला संस्कृति एवं भाषा अकादमी के सचिव श्री सुदर्शन वशिष्ठ ने मुख्य अतिथि तथा भाग लेने के लिए पधारे विद्वानों का स्वागत किया तथा संगोष्ठी के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला । संस्थान के निदेशक प्रो0 मृणाल मिरि ने भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान की गतिविधियों की चर्चा करते हुए बताया कि संस्थान की स्थापना का उद्देश्य शोध तथा अध्ययन की अग्रिम तथा उच्च अवस्थाओं को छूना तथा विद्वानों को विभिन्न प्रायोजनाओं के लिए कार्य करने हेतु गरिमापूर्ण तथा उपयुक्त वातावरण उपलब्ध करवाना है । संस्थान अपने उद्देश्यों में पूर्ण रूप से गतिशील है और अध्ययन तथा प्रकाशन की गति सन्तोषजनक ढंग से आगे बढ़ रही है । उन्होंने मुख्य अतिथि, राज्यपाल हि0 प्र0, तथा शिक्षा मन्त्री, प्रो0 नारायण चन्द पराशर हि0 प्र0 का अन्य प्रतिभागियों के साथ स्वागत किया ।

इस अवसर पर भारतीय भाषा संस्थान मैसूर के पूर्व निदेशक तथा ख्याति प्राप्त विद्वान डॉ. डी0 पी0 पट्टनायक ने भी अपने विचार रखे । उन्होंने भारतीय भाषाओं पर बात करते हुए बताया कि हमारे देश को भाषाओं का जीवन्त संग्रहालय कहा जा सकता है । पहाड़ी भाषा के विकास के लिए योगदान की चर्चा करते हुए उनका कथन था कि इस क्षेत्र की उप-भाषाओं में सांस्कृतिक तथा भाषागत समन्वय का अटूट तथा मनोहारी सम्बन्ध है । हिमालय क्षेत्र की भाषाओं का सम्यक् अध्ययन करने पर भारत के सांस्कृतिक इतिहास का पुनर्लेखन सम्भव है। उन्होंने भाषा अध्ययन की दिशा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने पर भी बल दिया।

अपने सम्बोधन में प्रो0 नारायण चन्द पराशर, शिक्षा, भाषा एवं संस्कृति मन्त्री, हि0 प्र0 ने पहाड़ी भाषा के इतिहास, सम्वैधानिक परिवेश तथा वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला । उन्होंने भाषावार प्रान्तों के गठन को उचित ठहराते हुए बताया कि

भाषावार प्रान्तों के गठन से अलगाववाद की स्थिति नहीं पनपी बल्कि प्रादेशिक भाषाओं में साहित्य रचना व अनुसंधान को अधिक प्रश्रय प्राप्त हुआ जिससे अनेक विद्वानों ने अपना योगदान देकर उन भाषाओं की पृष्ठभूमि तथा आधुनिक साहित्य पर सराहनीय कार्य किया । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे भाषा सम्बन्धी ज्ञान में जो वृद्वि हुई, वैसी गत अनेक शताब्दियों तक सम्भव नहीं हो सकी थी ।

श्री सुधाकर राव नाइक, राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश ने महाराष्ट्र का उदाहरण देते हुए बताया कि मराठी भाषा-भाषियों को महाराष्ट्र में सम्मिलित करके उस क्षेत्र में भाषा व साहित्य सम्बन्धी अद्‌भुत जागृति के दर्शन सम्भव हुए । उन्होंने पहाड़ी भाषा एवम् साहित्य सम्बन्धी राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित करने के लिए भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला; हिमाचल कला, संस्कृति एवम् भाषा अकादमी, शिमला; भारतीय भाषा संस्थान , मैसूर तथा अन्य सहयोगी संस्थाओं के निर्णय की सराहना की और पहाड़ी भाषा तथा साहित्य के विकास की गति तीव्र करने का आह्‌वान किया । उन्होंने विचार व्यक्त किया कि भाषा को जनभाषा ही रखा जाना चाहिए । उसे क्लिष्ट बना कर हम विद्वानों में तो उसका प्रचार कर सकते हैं परन्तु ऐसा करने से वह जनसामान्य से अलग हो जाएगी । अतः यह आवश्यक है कि भाषा को सामान्य जनता का आभूषण बनाया जाए और उसी दृष्टि से उसका विकास किया जाए ।

संगोष्ठी में प्रस्तुत किए गए पत्रों तथा उन पर हुई चर्चा का यथातथ्य विवरण इस पुस्तक के अगले पृष्ठों में किया गया है ।

पहाड़ी की साहित्यिक विकास प्रक्रिया गत वर्षो में ही गतिशील हुई है । भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान जैसी गरिमापूर्ण संस्था में पहाड़ी भाषा व साहित्य पर संगोष्ठी में भाग लेना अधिकांश प्रतिभागियों के लिए नया अनुभव था । संस्थान के आतिथ्य से अभिभूत होकर प्रतिभागी विद्वान गद्‌गद थे । इसका श्रेय संस्थान के निदेशक प्रो0 मृणाल मिरि को है जिन्होंने इस संगोष्ठी को साकार रूप देने के लिए अपनी उदारता से सभी को सम्मोहित कर दिया । उन्होंने संगोष्ठी के प्रथम सत्र की अध्यक्षता भी की तथा विभिन्न कार्यक्रमों में सक्रिय भूमिका निभाई । संस्थान के उनके अन्य सहयोगी इस आयोजन की सफलता के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। इस सम्बन्ध में धन्यवाद ज्ञापन का यह अवसर नहीं है फिर भी यह मात्र औपचारिकता न होकर भावनात्मक सत्य है ।

हिमाचल की पहाड़ी भाषा तथा उसका साहित्य अपेक्षाकृत अछूता विषय है । इस क्षेत्र की अनेक उप भाषाएं हैं जिनके उच्चारण, शब्द सम्पदा, वाक्य विन्यास तथा व्याकरणगत विशिष्टताओं की दृष्टि से गहन अध्ययन की आवश्यकता है ।

हिमाचल का पहाड़ी भाषा क्षेत्र तिब्बती, बर्मी, डोगरी, पंजाबी, हरियाणवी और मध्य पहाड़ी (गढ़वाली व कुमाऊंनी) आदि भाषाओं से घिरा हुआ है और इनका प्रभाव पश्चिमी पहाड़ी भाषा एवं लोक साहित्य पर स्वाभाविक ही है । इस कारण पहाड़ी भाषा का भाषा-वैज्ञानिक तथा लोक भाषिक अध्ययन अति रोचक स्थिति प्रस्तुत करता है । डॉ. जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण अध्ययन में इसे पश्चिमी पहाड़ी का नाम देते हुए इसमें जौनसारी (जो उत्तर प्रदेश के जौनसार बाबर क्षेत्र में बोली जाती है) तथा भद्रवाही (जो जम्मू एवं काश्मीर की भद्रवाह तहसील में बोली जाती है), को भी सम्मिलित किया है । भाषा सर्वेक्षण का कार्य इस देश में अपेक्षाकृत कम हुआ है और लोक परम्पराओं तथा लोक संस्कृति के साथ लोक भाषा के सम्बन्ध पर तो इससे भी कम ध्यान गया है ।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से किए गए कार्य व्यापक प्रचार-प्रसार से अपेक्षाकृत परे रहते हैं और मात्र शोधार्थियों तक ही उनका क्षेत्र सीमित रहता है । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि राजनैतिक दृष्टिकोण शोध सम्बन्धी दृष्टिकोण से कुछ अंशों में अलग रहता है । साहित्यकार तथा अन्य विद्वान अब यह अनुभव करने लगे हैं कि लोक संस्कृति के परिवेश तथा साहित्य रचना में घनिष्ठ सम्बन्ध है और लोक परम्पराओं को आधार मानकर ही हम सही दिशा में आगे बढ़ सकते हैं । मानव तथा परिवेश का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण हमारे प्रत्येक कार्य में परम्परा का किंचित प्रभाव रहता ही है । इस प्रभाव को भाषा एवं लोक साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है ।

भारतीय संस्कृति का अध्ययन हम तुलनात्मक दृष्टि से भी करते हैं परन्तु सामान्य नागरिक अपना जीवन तुलनात्मक दृष्टि से नहीं जीता उसे सार्वभौम मूल्यों का ज्ञान समाज से स्वयमेव प्राप्त होता रहता है और वह परम्परा तथा आधुनिकता के बीच स्वविवेक से सन्तुलन स्थापित करता चला जाता है । जीवन के इसी प्रवाह का नाम संस्कृति है । संस्कृति का वाहन भाषा है । भाषा चाहे लिखित हो अथवा अलिखित, उसका समाज विशेष में महत्वपूर्ण स्थान है । सभ्यताओं पर द्रुत प्रभावों के कारण मानव-संस्कृतियों तथा जीवन मूल्यों में परिवर्तन होता रहता है । जहां प्राचीन काल से भाषा तथा संस्कृति के क्षेत्र में बाह्य प्रभाव अपेक्षाकृत कम हुआ है, उस ओर झांकने से हमे अपनी प्राचीनता का बोध होता है । प्राचीनता की धारणा पिछड़ापन नहीं है बल्कि आधुनिकता के समकक्ष उसका अपना मूल्य है । इन दृष्टियों से देखने पर पहाड़ी भाषा तथा उसकी उप भाषाओं का भाषा-वैज्ञानिक, लोक साहित्यिक तथा सामग्रीगत अध्ययन विचार चर्चा के लिए रोचक सामग्री प्रस्तुत करता है ।

सम्मेलन में प्रथम भाग के अन्तर्गत 'पहाड़ी भाषा और उसकी साहित्यिक यात्रा' पर सामग्री तथा विषय-पत्र विवेचित हुए । 'पहाड़ी भाषा के स्रोत तथा प्राचीन सन्दर्भ' इस सम्बन्ध में आधार पत्र था । इस पत्र पर विस्तृत चर्चा हुई । डॉ० हरि राम जसटा के पत्र 'हिमाचल प्रदेश की भाषा-पहाड़ी' में पहाड़ी भाषा के प्रति अनेक सम्भावनाओं पर विचार व्यक्त किए गए । डॉ० विश्वचन्द्र ओहरी तथा डॉ० प्रत्यूष गुलेरी ने अपने विषय-पत्रों के माध्यम से पहाड़ी के अभिलेखों की ओर ध्यान आकृष्ट किया । डॉ० पीयूष गुलेरी, डॉ० गौतम व्यथित, श्री सी० आर० बी० ललित, डॉ० शमी शर्मा, श्री देसराज डोगरा तथा श्री अश्विनी गर्ग द्वारा प्रस्तुत आलेखों में इस भाषा के साहित्य की कतिपय महत्वपूर्ण विधाओं पर उपयोगी सामग्री प्रस्तुत की गई । सभी विषय-पत्रों पर गहन चर्चा हुई । प्रथम सत्र की अध्यक्षता प्रो० मृणाल मिरि ने की ।

द्वितीय भाग के अन्तर्गत प्रस्तुत विषय-पत्रों का सम्बन्ध अन्य भाषाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन से रहा । श्री एम० आर० ठाकुर ने पहाड़ी, संस्कृत व पालि का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया । डॉ० कृष्ण कुमार गोस्वामी ने अपने आलेख में पहाड़ी के भाषा सम्बन्धी स्तर पर अपने विचार व्यक्त किए । उन्होंने राष्ट्र भाषा हिन्दी के संदर्भ में पहाड़ी भाषा की चर्चा की और हिमाचली के एक भाषा का स्तर ग्रहण करने से पहले किसी एक बोली को मानक रूप में चयन करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया और अनुभव किया कि वही रूप पहाड़ी भाषा का प्रतिनिधित्व कर सकेगा । इस पत्र में लेखक ने पहाड़ी भाषा की तुलना अनेक भाषाओं एवं बोलियों से की और बताया कि वे किस तरह से मानक रूप में प्रतिष्ठित हुई ।

डॉ० नवरत्न कपूर के आलेख का विषय पंजाबी व पहाड़ी का तुलनात्मक अध्ययन था । डॉ० श्यामलाल डोगरा ने पहाड़ी व डोगरी का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया । उनका संशोधित लेख प्राप्त न होने के कारण प्रस्तुत संकलन में यथावत् प्रकाशित नहीं किया जा सका, इसका हमें खेद है । यहां यह बताना उपयुक्त होगा कि डॉ० श्यामलाल डोगरा ने अपने आलेख में भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों भाषाओं की स्वतन्त्र पहचान को इंगित करने का स्तुत्य प्रयास किया है ।

संगोष्ठी में अनेक सामयिक तथा मूल्यवान विषयों पर चर्चा हुई । प्रदेश के विभिन्न जनपदों तथा बाहर से आये विद्वानों ने उन्नीस लिखित विषय-पत्र प्रस्तुत किए तथा उन पर चर्चा हुई । अध्ययन की दृष्टि से इन पत्रों को निम्न उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

1. पहाड़ी भाषा : इतिहास और साहित्यिक विकास यात्रा
2. पहाड़ी भाषा : तुलनात्मक अध्ययन
3. पहाड़ी भाषा : भाषा–वैज्ञानिक अध्ययन

तृतीय भाग में भाषा–विज्ञान से सम्बन्धित आलेख प्रस्तुत हुए । इस सत्र की अध्यक्षता ख्याति प्राप्त भाषाविद् डॉ० देवी प्रसाद पट्टनायक ने की । डॉ० हुकम चन्द्र पट्याल ने एक नए विषय पर अपना आलेख प्रस्तुत करके पहाड़ी भाषा के चिन्तकों के लिए नई सामग्री की ओर संकेत किया ।

डॉ० पट्याल का अध्ययन क्षेत्र पश्चिमी पहाड़ी के ऐतिहासिक पक्ष से सम्बन्धित है । उन्होंने पश्चिमी पहाड़ी बोलियों तथा भारतीय आर्य भाषा के पुरातन शब्दों और पश्चिमी पहाड़ी के शब्दों का व्युत्पत्तिपरक कोश बनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है ।

डॉ० पट्टनायक ने अपने पत्र में यह स्पष्ट किया कि पहाड़ी एक मानक भाषा का रूप ग्रहण कर सकती है । उनकी मान्यता है कि अधिक भाषाओं को महत्त्व देने से भाषायी सद्भावना बढ़ती है । उन्होंने अपने पत्र में पहाड़ी की राजस्थानी की स्थिति से तुलना की तथा बताया कि पहाड़ी बोलियों का आपस में कोई विरोध नहीं है बल्कि पहाड़ी को एक भाषा का दर्जा मिलने से उन्हें भी सम्मान मिलेगा । उनके अनुसार पहाड़ी जैसे भाषायी आन्दोलन सामाजिक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर सद्भावना पैदा करते हैं तथा इसे भाषा का स्तर प्रदान करने से हिन्दी भाषा के गौरव पर कोई असर पड़ने वाला नहीं क्योंकि हिन्दी का महत्त्व क्षेत्रीय स्तर पर सम्पर्क भाषा का ही रहेगा । यह पत्र पहाड़ी भाषा के सम्बन्ध में भाषा परियोजना की दृष्टि से मौलिक चिन्तन प्रस्तुत करता है । इस अवसर पर ख्यातिप्राप्त साहित्यकार भीष्म साहनी तथा अन्य अध्येताओं ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए।

डॉ० जगदीश चन्द्र शर्मा ने पश्चिमी पहाड़ी की संज्ञाओं में लघुतावाची रूपों और भाषायी गुणों की चर्चा की । उन्होंने अपने पत्र में नौ पश्चिमी पहाड़ी बोलियों (बघाटी, क्यूंथली, सोराचली, सिरमौरी, बिलासपुरी, कांगड़ी, मंडियाली, चुराही तथा पंगवाली) से उदाहरण प्रस्तुत करके पश्चिमी पहाड़ी में लघुतावाची रूपों का आकलन प्रस्तुत किया। लेखक ने इस तत्त्व की सहायता से पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में समानता की ओर संकेत करते हुए बताया कि इनमें निर्जीव वस्तुओं को दर्शाने वाले संज्ञा शब्द वस्तु के आकार के अनुसार कम से कम तीन रूपों में पाए जाते हैं, जैसे बड़ा, छोटा और बहुत छोटा । पश्चिमी पहाड़ी में अन्य भाषाओं की तरह हर संज्ञा का लिंग अवश्य होता है। उनकी मान्यता है कि जिन बोलियों में मात्र दो

ही लिंग हैं, उन में पुल्लिंग अथवा स्त्री लिंग में ही सभी पदार्थो को दर्शाया जाता है परन्तु नपुंसक लिंग उन बोलियों में पाया जाता है जहां तीन लिंग होते हैं । यह आर्य भाषाओं में एक नई खोज है और पश्चिमी पहाड़ी इस दशा में अन्य आर्य भाषाओं से अलग है । डॉ0 चौहान एवं डॉ0 मधुबाला ने अपने शोध पत्रों में कांगड़ी उप-भाषा के व्याकरणिक तत्वों पर प्रकाश डाला । उन्होंने भाषा के एक रूप से दूसरे रूप में प्रयुक्त होने से सम्बन्धित प्रक्रिया की भी चर्चा की है । डॉ0 मधुबाला ने कांगड़ी सर्वनाम के विविध प्रयोगों पर भी विस्तृत चर्चा की है ।

प्रस्तुत पुस्तक की कई सीमाएं रही हैं । एक तो यह पहाड़ी भाषा की केवल कुछ ही उप-भाषाओं का प्रतिनिधित्व कर सकी है । दूसरे, भाषा के सभी तत्वों पर यहां पत्र प्रस्तुत नहीं हो सके । संगोष्ठी का विषय काफी लचीला होने के कारण पुस्तक में सन्दर्भित लेखों का क्षेत्र पर्याप्त विविधता पूर्ण है । इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अभी तक हिमाचली भाषा और साहित्य पर चिन्तन करने वाले विद्वान गिने चुने हैं। आशा है इस प्रयास से शोधकर्ता तथा सामान्य पाठक वर्ग को पहाड़ी भाषा और उसके साहित्य में रुचि उत्पन्न होगी ।

बंशीराम शर्मा
जगदीश चन्द्र शर्मा

विषयानुक्रमणिका

भाग दो : तुलनात्मक अध्ययन

भाग तीन : भाषा- वैज्ञानिक अध्ययन

भाग एक

पहाड़ी भाषा
साहित्यिक विकास यात्रा

पहाड़ी भाषा के स्रोत तथा प्राचीन सन्दर्भ

डॉ0 बंशीराम शर्मा

'पहाड़ी' शब्द का अर्थ 'पर्वतवासी', 'छोटे आकार का पहाड़' तथा 'भाषा विशेष' है। डॉ0 जी0 ए0 ग्रियर्सन ने यह शब्द हिमालय क्षेत्र के भाषा समूह के लिए प्रयुक्त किया है । उनके अनुसार पहाड़ी भाषा समूह को पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी पहाड़ी वर्गों में विभाजित किया जा सकता है । पूर्वी पहाड़ी वर्ग के अन्तर्गत नेपाली, जिसे खसकुरा भी कहा जाता है, मध्य पहाड़ी के अन्तर्गत कुंमाऊंनी तथा गढ़वाली और पश्चिमी पहाड़ी वर्ग के अनुसार पश्चिमी हिमालय, यथा, जौनसार बावर, शिमला हिल स्टेट्स, कुल्लू, मण्डी, सुकेत, चम्बा तथा पश्चिमी कश्मीर (भद्रवाह) में प्रचलित उप भाषाओं को सम्मिलित किया गया है ।[1] भारत के भाषा सर्वेक्षण की बृहत् योजना से पूर्व हिमालय क्षेत्र की भाषाओं के लिए इस प्रकार का अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया था अतः इस वर्गीकरण को मुख्यतः डॉ0 अब्राह्म ग्रियर्सन की देन माना जा सकता है । वर्गीकरण की दृष्टि से भले ही यह नई बात हो, परन्तु यह कहना युक्ति संगत होगा कि हिमालय क्षेत्र में भाषा सम्बन्धी अध्ययन इससे पूर्व भी हुए हैं और प्रचुर साहित्य भी प्रकाश में आ चुका था । अपने अध्ययन के भूमिका भाग में ही डॉ0 ग्रियर्सन ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि प्रस्तुत सर्वेक्षण में कमियों के प्रति वे अवगत थे ।

पहाड़ी भाषा के ऊपर वर्णित तीन वर्गों के सम्बन्ध में यह कहना ठीक होगा कि नेपाली अथवा खसकुरा पूर्वी हिमालय की भाषा है और सन्दर्भ के लिए नेपाली नाम से इस भाषा को लोग पूर्वी पहाड़ी नाम की अपेक्षा अधिक जानते व समझते हैं । इसी प्रकार गढ़वाली तथा कुमांऊंनी नाम मध्य पहाड़ी नाम की अपेक्षा अधिक प्रचलित हैं । हिमाचल प्रदेश के सम्पूर्ण भाग में किन्नौर, लाहुल-स्पिति को छोड़ कर पहाड़ी भाषा के नाम से लोग अधिक परिचित हैं । वे इसे पश्चिमी पहाड़ी के नाम से नहीं जानते अतः प्रस्तुत पत्र में पहाड़ी भाषा से अभिप्राय हिमालय क्षेत्र के हिमाचल प्रदेश में प्रचलित विभिन्न उप भाषाओं के समूह से है । डॉ0 ग्रियर्सन ने इस वर्ग में जम्मू क्षेत्र की भद्रवाही तथा उत्तर प्रदेश के जौनसार बावर क्षेत्र में प्रचलित जौनसारी को भी सम्मिलित किया है परन्तु हम यहां वर्तमान हिमाचल

प्रदेश के भौगोलिक क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में ही चर्चा करेंगे।

इस भाषा के प्राचीन स्रोतों तथा सन्दर्भों को मुख्यत: निम्नांक्ति तीन भागों में बांटा जा सकता है :

1. लोक साहित्य व संस्कृति सम्बन्धी स्रोत
2. ऐतिहासिक तथा प्रशासनिक स्रोत, तथा
3. भाषा एवं साहित्य सम्बन्धी स्रोत

इस वर्गीकरण के अन्तर्गत विभिन्न सन्दर्भों का विवरण इस प्रकार है :

1. लोक साहित्य व संस्कृति सम्बन्धी स्रोत

लोक साहित्य व संस्कृति की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश पर्याप्त सम्पन्न क्षेत्र है । भाषा के स्वरूप को सुरक्षित रखने की यहां प्राचीन काल से ही अद्‌भुत परम्परा रही है । मौखिक साहित्यिक धरोहर के अन्तर्गत लोक गाथाएं, लोक गीत, लोक कथाएं, देवानुष्ठान सम्बन्धी भारथाएं, पूजा मन्त्र, त्यौहार-उत्सवों से सम्बन्धित शब्दावली आदि प्राचीन भाषा स्वरूप के अनुपम सन्दर्भ हैं । लोक गाथाओं में गूगा गाथा,जिसे रक्षा बन्धन के दिन से गूगा नवमी तक निरन्तर गाया जाता है, लोक महाकाव्य का अद्वितीय उदाहरण है । भरथरी (भर्तृहरि), पण्डवायण, मुसद्‌दा रामायण, बरलाज, काब, राजा रसालू, गोपीचन्द, ऐंचली गीत आदि परम्परागत तथा कालातीत लोकाख्यान हैं ।

गूगा महाकाव्य जनजातीय क्षेत्र लाहुल-स्पिति तथा किन्नौर के अतिरिक्त सभी भागों में प्रचलित लोक गाथा है । गूगा चौहान राजस्थान का योद्धा था और नागों के साथ उसका सम्बन्ध होने से उसकी पूजा नागों के रक्षक देवता के रूप में भी की जाती है । उसके पिता का नाम राजा जेउर (जेवर) तथा माता का नाम बाछल था । बाछल ने बारह वर्ष तक गुरु गोरखनाथ की सेवा की परन्तु वर-प्राप्ति के दिन धोखे से उसकी बहन काछल ने गुरु से वर प्राप्त कर लिया । इसके फलस्वरूप काछल के यहां दो पुत्रों, अर्जण तथा सुर्जण का जन्म हुआ । बाछल के पुत्र गूगा से उनका बैर रहा । गूगा का जन्म गुरु गोरखनाथ द्वारा अन्तर्दृष्टि से काछल के कपट को समझकर दिये गये वरदान का परिणाम माना जाता है । अर्जण तथा सुर्जण और गूगा के पालन-पोषण, वैर तथा मृत्यु का वर्णन इस गाथा में उपलब्ध होता है । इसका आरम्भिक भाग, जिसे स्थानीय भाषा में 'गवाह' कहा जाता है, सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित है । गाथा के कुछ अंश इस प्रकार हैं:

न थी धरती न था कासा, बरसेआ धुंधूकारा ।
न था चन्द न था सूरज, न था नौ लख तारा ।।

न थी स्याही, न था मसाजन, न था लिखणहारा ।
न थे संत, न था वेद, न था ज्ञान बचारा ।।[2]

पहाड़ी भाषा के इतिहास का विकास नाथ-सिद्ध काल से हुआ । चरपट नाथ नौ नाथों में से एक थे । किम्वदन्तियों के अनुसार उनका जन्म हिमाचल प्रदेश के चम्बा ज़िला के भरमौर गांव में हुआ । सिद्ध व नाथों के मन्त्र लोक भाषा में प्रचलित हैं । नवाला, सवाला, शिवपूजन के प्रकार नाथों की ही देन हैं । पहाड़ी भाषा में चरपट नाथ की सबदी के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

मन नहीं मूंडे मूंडै केस । केसां मूंडया क्या उपदेस ।
मूंडै नहीं मन मरदक मान । चरपट बोले तत गियान ।।

भरथर चरपट गोपी चन्द । बिंदौ आत्मा परमानन्द ।
छांडौ षीर बहु भोग । राषौ आत्मा साधौ जोग ।।

चिरकट चीर चंक्र मन कंथा । चित चमांऊ करणा ।
अैसी करणी करौ रे अवधू । ज्यूं फेरी न होऊ मरणा ।।

तांबा तूंबा ये दोइ सूचा । राजा ही ते जोगी ऊचा ।
तांबा डूबै तूंबा तिरै । जीवै जोगी राजा मरै ।।[3]

बाबा बालक नाथ, भरथरी, गोपी चन्द, बीर नाथ, दत्तात्रेय, गोरख नाथ, जालन्धर नाथ, नागा अरजण (नागार्जुन जिन्हें अर्जुन नागा भी कहा जाता है) आदि सिद्धों तथा नाथों के सम्बन्ध में बहुसंख्यक गाथाएं, गीत, मन्त्र तथा अनुष्ठान, आख्यान और ग्राम गान इस क्षेत्र में लोक संस्कृति के अंग हैं । नाथ व सिद्धों का काल दसवीं शताब्दी के लगभग रहा होगा ।[4]

गूगा की कहानी भी बारहवीं शताब्दी के आसपास की है । भरथरी शिमला क्षेत्र की प्रसिद्ध लोक गाथा है । भरथरी ने हिमाचल प्रदेश में तपस्या की थी । उनकी लोक गाथा के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

राजा रो भरथरी चौरी गेई जाई,
चौरी गाये थीयो आसनो लाई ।

राणी थामों पेंगुला भगुवे रा पाला,
होमो छोड़ो रो भरतरी केरे के चाला ।

राणी बोलो पेंगुलो आवणा साथो,
तू मांगी भिछिया हां डाऊंगी हाथो ।।[5]

पण्डवायण अथवा लोक महाभारत का गायन बरलाज उत्सव के अवसर पर प्रस्तुत किया जाता है । यह शिमला क्षेत्र का लोकप्रिय महाकाव्य है । पण्डवायण के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

बीजो रो शेरेयो जामदे लागे
जामी रो शेरेयो गोड़ने लाये,
गोड़ी रो शेरेयो पाकदे लागे
पाकी लुणी रो शेरेयो कूनुएं लाये ।[6]

गद्दी जनजाति में मुसद्दा लोक रामायण पहाड़ी भाषा की अनोखी लोक रचना है । इसी प्रकार काब अथवा काव्य के रूप में प्रचलित तथा फकीरी (कवेरी) ब्राह्मणों द्वारा बूढ़ी दीवाली के अवसर पर गाया जाने वाला लोक काव्य अठारह कण्डियों (काण्डों) का महाकाव्य है । इसके ग्यारह काण्ड रात्रि के समय तथा शेष सात काण्ड अगले प्रातः गाये जाते हैं । इसके कुछ अंश इस तरह हैं :

एउ ता छेउर वाणी ।
पाण्डव केरे काव सुणे ।।
आए के रूपे गेउ सुणे ।
पाण्डव देखवे आए बराए ।। [7] इत्यादि

राजा रसालू की गाथा का संकलन आर0 सी0 टेम्पल ने अपनी पुस्तक 'लैजेण्डस ऑफ् पंजाब' में भी किया है । ऐंचली गाथाएं सृष्टि व मानव के सृजन व उत्पत्ति से सम्बन्धित हैं । एक गाथा के बोल इस प्रकार हैं :

जल थल धरती गुरुए न्यारे, नाज गुरु अवतारे ।
नहीं थी धरती, नहीं था कास, नहीं था मेरू कैलास ।[8]

अन्य लोक गाथाओं में मादेव-युकुन्तरस् (बर्फ का देवता), कुन्ती-नन्ती, सामा दौलतू, राजा जगता, गढ़ मलौण, गोरखा वैरी (वोइरिस) आदि प्रसिद्ध हैं । ग्राम देवताओं की भारथाएं उनके अवतरण तथा स्थान-विशेष पर आगमन के सम्बन्ध में तथा 'वरशोहा' उनके गूरों के माध्यम से की गई भविष्यवाणियां होती

हैं । भारथाओं की भाषा में प्रागैतिहासिक काल से वर्तमान समय तक विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि यह देव वाणी है । प्राचीन लोक गीतों की भाषा पहाड़ी भाषा के पुरातन इतिहास का संरक्षण करती है । 'शिव ब्याह' के कुछ अंश इस प्रकार हैं:

सासण खाणा ब्राह्मणा भाटी खाणी
कोल्हे खाणे रुजगार
तुसां जाणा ब्राह्मणा सैंयां री रैबारी
छै म्हीने औन्दे, छै म्हीने जांदे
हिमपत देसे गजपत राजा
उस रे घरे कन्या कुआरी,
उस घरे जाणा सैयां री रैबारी ।[9]

घुरैई गीत परम्परा से प्राचीन इतिहास के वाहक हैं । लोकनाट्यों में पहाड़ी भाषा के हास्य-व्यंग्य रूप का दर्शन होता है । देव मन्त्र व जादू टोने से सम्बन्धित अनुष्ठान-शब्दावली रोचक तथा भाषा-वैज्ञानिक महत्व से परिपूर्ण है ।

कुमारसेन क्षेत्र में प्रचलित 'बीमाओ व्रत' (विधिमाता का व्रत) पारम्परिक अनुष्ठान है । इसमें विधिमाता से सम्बन्धित अनेक कथाएं कही-सुनी जाती हैं। इन दिनों में प्रतिदिन एक मन्त्र का उच्चारण करके पूजा की जाती है । मन्त्र इस प्रकार है :

जैठो मीनो, तवार वार,
वामणे घरे आई वी मां,
चूड़दे नाके पिंज़रे कैशे आई,
वामण दोते नाहा धोआ,
वी अ पाटणो, नैउव धुआओ,
प्रात सनान करा, हाथे पैरे
मैंहदी सीरी गुन्दा,
चन्द्र सूरज वी वधात,
नरक सीड़ स्वर्ग सीड़,
धूप-दीप नैवेद्य,
दण्ड प्रणाम, प्रश्न केरा ।[10]

लोक साहित्य के संकलन से पहाड़ी भाषा के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । ईसाई मिश्नरियों ने इस दिशा में अच्छा कार्य किया है । सन् 1909 तथा 1911

में बुशहर रियासत के पंडित टीका राम जोशी ने 'ए डिक्शनरी ऑफ् दी पहाड़ी डायलेक्ट्स' तथा 'ए ग्रामर एण्ड डिक्शनरी ऑफ् कनावरी' शीर्षक से वृहदाकार लेख प्रकाशित करवाये ।[11] इस शब्दकोश में लगभग 9000 शब्द अर्थ सहित दिये गये हैं तथा परिशिष्ट में 'फोकलोर' शीर्षक के अन्तर्गत पहाड़ी भाषा के मन्त्र, लोक कथा, मुहावरे, बरलाज का गीत आदि सम्मिलित हैं । दूसरे भाग में किन्नौरी का शब्दकोश तथा व्याकरण दिया गया है । इन्हीं लेखक द्वारा एशियाटिक सोसायटी ऑफ् बंगाल[12] की पत्रिका के सितम्बर, 1911 के अंक में 'नोट्स ऑन दि एथनोग्राफी ऑफ् दि बुशहर स्टेट, शिमला हिल्ज़, पंजाब' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया गया । इसमें रामपुर बुशहर तथा किन्नौर क्षेत्रों के लोक साहित्य, भाषा और परम्पराओं पर सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया गया है । शाहपुरी कांगड़ी ग्लॉसरी पुस्तक की रचना ईसाई मिश्नरी जे0 विल्सन ने उन्नीसवीं शताब्दी में की। इसमें कांगड़ी उपभाषा के सम्बन्ध में स्व0 एडवर्ड ओ'ब्रीयन, उपायुक्त कांगड़ा, द्वारा तैयार किये गये आलेख को टी0 ग्राहम बैली द्वारा संशोधित रूप में संकलित किया गया है । इसमें कांगड़ी व्याकरण, लोक गीत, गद्दी बोली, गद्दी लोक गीत, व्याकरण, लोक जीवन, कांगड़ी शब्द भण्डार, कांगड़ा ज़िला की तितलियों के 257 प्रकार तथा पक्षियों की सूची (जिनका शिकार नहीं किया जाना चाहिए), वन्य जीवों की सूची तथा मुहावरे आदि दिये गये हैं ।[13] लुधियाना मिशन के ज्यूक, ओ'ब्रीयन तथा विल्सन के अतिरिक्त लाहुल, किन्नौर तथा कोटगढ़ के ईसाई मिश्नरियों ने भी भाषा व रीति-रिवाज़ आदि का विवरण संकलित करने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । वर्तमान हिमाचल के कुछ भाग पंजाब का अंग रहे हैं अतः पंजाब से सम्बन्धित सन्दर्भ ग्रन्थों में इन क्षेत्रों की जानकारी सम्मिलित है ।[14]

2. ऐतिहासिक तथा प्रशासनिक स्रोत

ऐतिहासिक तथा प्रशासनिक स्रोत टाकरी लिपि में विभिन्न राजाओं द्वारा लिखित दस्तावेज़ों, जनगणना रिपोर्टों, शिलालेखों तथा अन्य राजाज्ञा सम्बन्धी प्रकरणों से सम्बन्धित हैं । भाषा के विकास के लिए पर्याप्त समय, प्रश्रय तथा प्रयत्न की आवश्यकता रहती है । सन् 1867 में बीम्स ने अपनी पुस्तक 'ए कम्पैरेटिव ग्रामर, खण्ड 1,' पृ. 120-1 पर लिखा था कि यहां भाषा की समस्या नहीं हैं क्योंकि उर्दू सम्पूर्ण भारत में समझी जाने वाली भाषा है और पंजाब में यही भाषा प्रचलित है। उनके अनुसार पंजाबी का पंजाब में कोई भविष्य नहीं था क्योंकि वे तीन कारणों से इसे भाषा का स्थान प्राप्त करने के लिए सक्षम नहीं समझ रहे थे । इन कारणों

को उन्होंने इस प्रकार इंगित किया : प्रथम, यह स्थान स्थान पर भिन्नता लिए हुए है । दूसरे, यह मूलत: हिन्दी की बोली है। तृतीय, यह उर्दू-हिन्दी से केवल गुरुमुखी लिपि के कारण ही भिन्न है ।[15] परन्तु भारत के भाषा-सर्वेक्षण (खण्ड 9,भाग 1, पृ. 607-25) में डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन ने पंजाबी को स्वतन्त्र भाषा बताते हुए इसे हिन्दी से भिन्न तथा विचारों की सक्षम वाहिका बताया । उन्होंने पंजाबी के अन्तर्गत डोगरी को एक बोली के रूप में रखा (पृ. 609) । परन्तु अब दोनों भाषाएं स्वतन्त्र रूप में विकसित हो कर एक दूसरे के समकक्ष हैं । जॉर्ज ग्रियर्सन के भाषा सम्बन्धी निष्कर्ष अनन्तिम तथा परिचायत्मक हैं और उन्होंने इन्हें अनेक दृष्टियों, जिनमें समुदाय, पूर्ववर्ती विद्वानों की धारणाओं, प्रशासनिक तथा व्यक्तिगत आग्रहों का विशेष स्थान है, पर आधारित किया । उन्होंने पंजाबी के सम्बन्ध में पृ. 617 पर लिखा, ''किन्तु घरेलू होते हुए भी, यह न समझ लेना चाहिए कि यह साहित्य के अयोग्य अनगढ़ भाषा है । यह इतनी अनगढ़ नहीं है जितनी कवि वर्न्स की विस्तृत निम्न भूमि की स्कॉच भाषा थी । पंजाबी अपने ही शब्द-भण्डार के द्वारा किसी विचार को अभिव्यक्त करने में समर्थ है, एवं गद्य और पद्य दोनों के लिए सूपयुक्त है । यह सच है कि इसमें साहित्य कम है, किन्तु इसका कारण यह है कि यह अपनी निकट सम्बन्धिनी हिन्दुस्तानी द्वारा आच्छादित रही है और यह भी कि शताब्दियों तक पंजाब दिल्ली से शासित रहा है, किन्तु लोकगाथाओं से, जो सर्वत्र प्रचलित हैं, इसकी क्षमताओं का पता चल जाता है । वर्तमान काल में भी इसको हिन्दुस्तानी की एक बोली मात्र मान कर (यद्यपि यह ऐसी है नहीं), और स्वतन्त्र भाषा के रूप में इसकी सत्ता से इनकार करके, इसे तिरस्कृत करने की प्रवृति रही है। इसके दावे का प्रमुख आधार इसकी अपनी ध्वनि-शास्त्रीय पद्धति और हिन्दी में न पाया जाने वाला इसका अपना शब्द-भण्डार है और ये दोनों विशेषताएं इसकी प्राचीन लहंदा नींव के कारण से हैं। पंजाबी के कुछ सामान्य शब्द हिन्दुस्तानी में नहीं मिलते । जैसे पिउ-पिता, माऊँ-मां, आखणा-कहना, इक्क-एक, साह-सांस, तिह-तृषा, और सैकड़ों अन्य शब्द जो सभी बाहरी वृत्त की भाषाओं में पाए जाते हैं ।'' [16]

पंजाब के पर्वतीय क्षेत्रों में भाषा सम्बन्धी भिन्नता का उल्लेख डॉ. ग्रियर्सन ने उतनी मुखरता से नहीं किया । इसका कारण तत्कालीन परिस्थितियां, अध्ययन की कमी तथा प्रशासनिक दृष्टिकोण हो सकता है । पहाड़ी भाषा से सम्बन्धित सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची (पृ. 619-624) भारत के भाषा-सर्वेक्षण के आधार पर पाद-टिप्पणी के अनुसार निम्न प्रकार से हो सकती है [17] (देखिए सन्दर्भ ग्रन्थ सूची के क्रम 17 के अन्तर्गत सन्दर्भित 32 पुस्तकें)।

डोगरी को पंजाबी की उपभाषा बताते हुए डॉ. ग्रियर्सन का कथन है, ''पंजाबी की डोगरी बोली का नाम, जम्मू रियासत के तलहटी वाले भाग के डोगर या डुगर नाम से लिया गया है । .... जम्मू रियासत के उत्तर-पूर्व की पहाड़ियों में भद्रवाह पड़ता है, जिसकी भाषा भद्रवाही का एक रूप है। जम्मू के पूर्व में चम्बा की रियासत है । चम्बा की मुख्य भाषा चमेआली भी पहाड़ी का ही एक रूप है, किन्तु एक मिश्रित प्रकार की भाषा, जिसे भटियाली कहते हैं और जो डोगरी पर आधारित है , रियासत के पश्चिम में, जम्मू की सीमा के निकट बोली जाती है ।[18] उन्होंने स्वीकार किया कि, ''कण्डियाली की तरह, कांगड़ी बोली डोगरी और आदर्श पंजाबी का मिश्रित रूप है, जिसमें कुछ अपनी विशेषताएं भी हैं ।''[19] यह इस बात का संकेत है कि वे कांगड़ी के स्वरूप तथा सही वर्गीकरण के सम्बन्ध में पूर्णत: आश्वस्त नहीं थें । इस बात की पुष्टि उनके कांगड़ी बोली के विवेचन के समय की गई टिप्पणी से भी होती है । उन्होंने लिखा है: ''कांगड़ी बोली साधारण गुरुमुखी लिपि का व्यवहार नहीं करती, बल्कि टांकरी के उस रूप में लिखी जाती है जो चम्बा में प्रचलित है । -- यह पाण्डुलिपि कांगड़ा के निवासी द्वारा नहीं लिखी गई । -- उच्चारण में एक ह्रस्व सामान्य है, जैसे सेह-वह, टेहॅल-सेवा, बब्वे दा-पिता का । कभी-कभी, कश्मीरी की तरह, संज्ञाओं के अन्त्य-आ के स्थान पर दीर्घ ऊ लगता है । जैसे माहणू (लगभग शुद्ध कश्मीरी), मनुष्य, छेलू, मेमना।'' [20] यह सामान्य रूप से पहाड़ी बोलियों में भी मिलता है । स्पष्ट है कि कांगड़ी को डोगरी के अन्तर्गत रखने में भूल हुई है ।

गहराई से इस विषय का अध्ययन करने पर पता चलता है कि इस निष्कर्ष की नींव 1881 की जनगणना रिपोर्ट में डेन्ज़िल इबेट्सन[21] (अ़ध्याय 5, पृ. 165-71) ने डाली थी । इसके अनुसार चम्बा को कांगड़ा से अलग दर्शाया गया ।

कांगड़ा के सम्बन्ध में मिस्टर लॉयल की टिप्पणी अनेक दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे पता चलता है कि इस क्षेत्र की उपभाषा के वर्ग का निर्धारण करते समय उनकी रिपोर्ट को दृष्टिपथ में रखा गया था । इस निर्णय में कांगड़ा का इतिहास तथा तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था भी आधार रहे ।

इस उद्धरण से तीन बातें स्पष्ट होती हैं :

1. कांगड़ी को डोगरी के साथ सम्बद्ध करना ।
2. पहाड़ी भाषाओं को पूर्वी, मध्य तथा पश्चिमी वर्गों में विभाजित करने का आधार, तथा
3. विभिन्न जनपदों के नाम पर बोलियों का नामकरण ।

कहलूरी या बिलासपुरी उपभाषा के साथ तो इससे भी बड़ा अन्याय हुआ । भारत के भाषा-सर्वेक्षण में इस उपभाषा के सम्बन्ध में लिखा गया है, ''शिमला की पहाड़ी रियासतों की अधिकतर भाषाएं पश्चिमी पहाड़ी के नाना रूप हैं । दूर पश्चिम की रियासतें हैं - कहलूर , मांगल, नालागढ़ और मैलोग । अन्तिम दो रियासतों के पश्चिम में भाषा पोवाधी पंजाबी है और इसका वर्णन अलग शीर्षक दे कर किया जाएगा । इनके पूर्वी भागों की बोली हण्डूरी पहाड़ी है । कहलूर और मांगल की रियासतों की बोली को कहलूरी या (कहलूर का प्रमुख नगर बिलासपुर होने के कारण) बिलासपुरी कहते हैं । कहलूर होशियारपुर ज़िले के तुरन्त पूर्व में पड़ता है । उस ज़िले के संलग्न पहाड़ी भाग में एक बोली बोली जाती है, जिसका स्थानीय नाम मात्र 'पहाड़ी' है । यह कहलूरी ही है । (पाद टिप्पणी-होशियारपुर के उत्तर पूर्व की ओर, यह बोली कांगड़ी के कुछ-कुछ निकट पड़ती है, इस प्रकार इसमें कांगड़ी सम्प्रदान का परसर्ग 'जो' पाया जाता है)। कहलूरी को अभी तक पश्चिमी पहाड़ी का एक रूप कहा जाता रहा है, किन्तु नमूने का परीक्षण करने से लगता है कि ऐसा नहीं है । यह केवल अनगढ़ पंजाबी ही है, होशियारपुर में बोली जाने वाली भाषा के समान । बोलने वालों की अनुमानित संख्या नीचे दी जा रही है :

कहलूर रियासत	91,700
मांगल रियासत	1,081
होशियारपुर ज़िला	1,41,540
योग	2,04,321

इस बोली के पूरे नमूने देना अनावश्यक है ।''[22]

कहलूरी बोली का विवेचित नमूना मांगल राज्य, ज़िला शिमला से दिया गया, बिलासपुर से नहीं । जबकि सभी जानते हैं कि मांगल बिलासपुर से सुदूर और उस समय मात्र बारह सौ लोगों की रियासत थी । 'पंजाब हिल स्टेट्स' के गज़ेटियर (1910)[23] के अनुसार मांगल रियासत का कुल क्षेत्रफल 12 वर्ग मील तथा जनसंख्या मात्र 1227 बताई गई है ।

इसी ग्रन्थ में लिखा गया है कि, 'पंजाब हिलस्टेट्स' में बोलियों का अध्ययन टी. ग्राहम बैली[24] ने प्रस्तुत किया। परन्तु विवरण से पता चलता है कि उन्होंने मांगल की बोली को बिलासपुरी के अन्तर्गत नहीं रखा । उन्होंने बिलासपुर में प्रचलित बोलियों को छः भागों में बांटा जो मात्र 453 वर्ग मील के क्षेत्र के लिए असंगत प्रतीत होता है ।

अपव्ययी पुत्र (prodigal son) की कथा का जो रूप बिलासपुरी के सम्बन्ध में दिया गया है, वह मांगल रियासत में प्रचलित बोली के रूप में बताया गया है परन्तु वास्तव में वह अनगढ़ पंजाबी का सा रूप प्रतीत होता है । उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं :

कहलूरी बोली (मांगल राज्य, ज़िला शिमला)

''एकी मॉनू दे दो पुत्त थे । लौहके पुत्ते अपणे बुड्ढे नों गलाया, 'जो जादाद मेरे बणदे (वण्डे) आओं दी, सो मन्नो देई दे।' तिने सो जादाद अपणे दुइ पुत्तां नुं बण्डी दिती । जदे लौहके पुत्ते अपणा बण्डा लै - लीआ, तां दूर परदेसां नूं चली - गया'' (पृ. 106)

'एक मनुष्य के दो पुत्र थे । छोटे पुत्र ने अपने बूढ़े (बाप) से कहा, 'जो सम्पत्ति मेरे हिस्से में आती है, वह मुझे दे दे ।' उसने वह सम्पत्ति अपने दोनों पुत्रों को बांट दी । जब छोटे पुत्र ने अपना बंटवारा ले लिया, तो दूर परदेश को चला गया।' इत्यादि ।

यह कहना असंगत न होगा कि भाषा-सर्वेक्षण का वैज्ञानिक पक्ष प्रस्तुत करने की परम्परा बहुत पुरानी बात नहीं है । सन् 1881 की जनगणना से पूर्व विभिन्न जनपदों की भाषाओं का विधिवत् अध्ययन देखने में नहीं आता । भले ही भाषा-विज्ञानियों तथा साहित्यकारों ने विभिन्न भाषाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया हो, परन्तु इससे तुलनात्मक अध्ययन में बहुत अधिक मदद नहीं मिलती। टी. ग्राहम बैली, जिनके क्षेत्रीय अध्ययन को जनगणना तथा भारत के भाषा-सर्वेक्षण के लिए उद्धृत किया गया, ने 'शिमला हिल स्टेट्स' के गज़ेटियर की भूमिका में बाईस बोलियों का उल्लेख किया । इनमें से चार तिब्बती हिमालयी वर्ग से सम्बद्ध बताई गई हैं । उनके अनुसार आर्य-परिवार की बोलियों में बिलासपुर क्षेत्र की छः, नालागढ़ की दो,बघाटी की तीन, जुब्बल की दो तथा कोची (पश्चिमी बुशहर) की पांच बोलियां सम्मिलित हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि हिमालय क्षेत्र की जन-भाषाओं का व्यापक अध्ययन तब तक सम्भव नहीं हुआ था, यद्यपि परवर्ती सर्वेक्षणों में भी मुण्डा भाषा के प्रभाव के विषय में अधिक उत्सुकता विद्यमान रही।

सन् 1881 की जनगणना की पृ. 160 पर दी गई टिप्पणी[25] इस बात की पुष्टि करती है कि खण्डन-मण्डन तथा मत पुष्टि की परम्परा इस समय तक पर्याप्त प्रबल थी । सन् 1881 की जनगणना में पहाड़ी भाषा-भाषियों के प्रतिशत कुल आबादी के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार दिखाए गए हैं :

शिमला 48.69 प्रतिशत, कांगड़ा 84.90 प्रतिशत, पटियाला 2.68 प्रतिशत, बुशहर 78.92 प्रतिशत, 25 हिल स्टेट्स 91.26 प्रतिशत।

सन् 1931 की जनगणना में उल्लिखित है कि पश्चिमी पहाड़ी नाम डॉ. जॉर्ज इब्राहिम ग्रियर्सन का दिया हुआ है।[26]

सन् 1931 की जनगणना के अनुसार पहाड़ी भाषा-भाषियों की संख्या तथा प्रतिशत वर्तमान हिमाचल प्रदेश के गठन का मुख्य आधार हैं । इनके अनुसार प्रति 10000 जनसंख्या में से पहाड़ी भाषा-भाषियों की संख्या तथा प्रतिशत इस प्रकार है :

1. सिरमौरी	–	7,534/10000
2. शिमला	–	5,220/10000
3. शिमला हिलस्टेट्स	–	7,897/10000
4. बिलासपुर रियासत	–	8,928/10000
5. कांगड़ा	–	9,400/10000
6. मण्डी राज्य	–	9,675/10000
7. सुकेत राज्य	–	9,843/10000
8. चम्बा राज्य	–	9,539/10000

यह प्रतिशत कुल आबादी का लगभग 90 प्रतिशत है (पृ.28)।

पहाड़ी भाषा के ऐतिहासिक तथा प्रशासनिक दस्तावेज़ों में चम्बा रियासत के शिलालेखों, ताम्रपटों तथा सिक्कों आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । सन् 1908 में चम्बा में भूरी सिंह संग्रहालय की स्थापना से प्राचीन अभिलेखों के संरक्षण की दिशा में अद्भुत योगदान मिला । संग्रहालय के केटेलॉग तथा 'एण्टिक्विटीज़ आफ़ चम्बा' में 130 दुर्लभ शिलालेखों, ताम्रपत्रों, अभिलेखों तथा अन्य महत्वपूर्ण स्रोतों का उल्लेख है। इनमें से कुछ शिलालेख दसवीं शताब्दी के भी पूर्व के हैं । चम्बा में ताम्रपत्रों, पनघट शिलाओं आदि पर अभिलेख सुरक्षित रखने की परम्परा रही है तथा स्थानीय उपभाषा में अनेक अभिलेख जारी किए गए । इनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार है :

1. युगाकार वर्मन द्वारा 950 ई. में ब्रह्मपुर के नर सिंह मन्दिर को दिया गया भूमि सम्बन्धी ताम्रपट सब से पुराना संगृहीत अभिलेख है ।

2. सन् 1300 के आसपास के कतिपय अभिलेख इस क्षेत्र की धरोहर को अद्वितीय ढंग से सुरक्षित रखे हुए हैं । इनमें ब्रह्मपुर क्षेत्र के गरोली ग्राम के एक ब्राह्मण को दान में दी गई भूमि सम्बन्धी अभिलेख महत्वपूर्ण है । इस के जारी करने का वर्ष संभवतः 1330 ई. है ।

3. राजा बलभद्र(1589-1641) द्वारा ब्राह्मणों को दी गई भूमि से सम्बन्धित

लगभग 42 ताम्र पत्र पर्याप्त महत्व के हैं । इस राजा द्वारा शाही ब्राह्मण तथा रसोइए को भी नियुक्ति सम्बन्धी अभिलेख जारी किए गए और जागीरें दे कर सम्मानित किया गया । (पृ.7)[27]

4. राजा राज सिंह (1782)ने अपने वज़ीर ज़ोरावर को ढुण्ढी का परगना प्रदान किया ।

5. उषा-अनिरुद्ध चित्र-माला पर स्थानीय बोली में लिखे गए वाक्य पहाड़ी भाषा के प्राचीन इतिहास की पुष्टि करते हैं । इसी प्रकार कांगड़ा में भी सन् 1780 के आसपास गीत गोविन्द चित्र-माला के पृष्ट भाग पर पहाड़ी भाषा में लिखे गए अर्थ महत्वपूर्ण हैं ।

6. चम्बा तथा कुल्लू के बीच सन् 1778 में समझौता हुआ जिसे स्थानीय बोली में टॉकरी लिपि में लिखा गया ।

पहाड़ी भाषा में पनघट शिलालेख तथा राजाओं के बीच पत्र-व्यवहार के दस्तावेज़ असंख्य रूप में उपलब्ध हैं । उन में से सभी को पढ़ा जाना अभी तक सम्भव नहीं हुआ है । केटेलॉग के पृ. 75 पर लकड़ी पर उल्लिखित स्थानीय बोली के शब्द भी ऐतिहासिक महत्व के हैं । देवी-री-कोठी तथा लोह-टिकरी के अभिलेख भी पर्याप्त महत्वपूर्ण हैं । वैद्य तथा पुरोहितों ने अपनी पाण्डुलिपियों में स्थानीय भाषा का प्रयोग किया है और कुछ कथाओं को पुराण तथा अन्य ग्रन्थों से पहाड़ी में अनूदित किया गया है । ज़िला गज़ेटियर, सैटलमैट रिपोर्टों, आपसी समझौतों आदि के सन्दर्भों से स्थानीय भाषा के प्रचलन की परम्परा की पुष्टि होती है । बारहवीं शताब्दी के कांगड़ी उप-भाषा के कुछ वाक्यों का उल्लेख एक तिब्बती ग्रन्थ में हुआ । ज्वालामुखी में एक तिब्बती बौद्धभिक्षु को एक महिला ने अपनी बोली में कहा था,' एत्थी वैस, एत्थी डाक्या' अर्थात् 'यहां बैठिए, यहां डाकिनियां' हैं ।[28]

3. भाषा-साहित्य सम्बन्धी अध्ययन के स्रोतः

मन्दिरों में प्राचीन रिकार्ड स्थानीय भाषा में सुरक्षित रखने की परम्परा रही है । सांचा तन्त्र एवम् ज्योतिष ग्रन्थों में पाबुची, चन्दवाणी, पण्डवाणी तथा भट्टाक्षरी लिपियों में हज़ारों वर्ष पुराने अभिलेख पाण्डुलिपियों के रूप में सुरक्षित हैं । डॉ. ग्रियर्सन ने इन लिपियों में से कुछ का संकलन करके महत्वपूर्ण कार्य किया है परन्तु वे सांचा ग्रन्थों में प्रयुक्त होने वाली लिपियों तथा उनकी सामग्री के सम्बन्ध में कोई भी जानकारी नहीं दे पाए । इसके कारण उनका स्थानीय लिपियों तथा उनमें संरक्षित महत्वपूर्ण सामग्री का अध्ययन आंशिक ही रहा । फिर भी, उन्होंने अपने भाषा

सम्बन्धी सर्वेक्षण में जो सामग्री प्रस्तुत की, उससे तुलनात्मक लिपि-विज्ञान के अध्ययन के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ । पहाड़ी भाषा व साहित्य का गरोली ब्राह्मण को दी गई भूमि का पटा (ताम्र पत्र) सन् 1330 ई. का है । यह अभिलेख पहाड़ी भाषा के इतिहास को पर्याप्त पीछे ले जाता है ।

पहाड़ी भाषा के विकास के अनेक सोपान हैं । मातृ भाषा जीवन की सहज एवम् स्वाभाविक प्रक्रिया है । इसी के माध्यम से संस्कृति तथा इतिहास का प्रवाह आगे बढ़ता है । पहाड़ी भाषाओं के मूल वक्ताओं में डॉ. ग्रियर्सन ने खश तथा गूजरों को सम्मिलित किया है। उन्होंने 1891 तथा 1901 की जनगणनाओं का विवरण दे कर इन भाषाओं के बोलने वालों की संख्या क्रमशः 1,43,721 (पूर्वी पहाड़ी), 11,07,162 (मध्य पहाड़ी) तथा 8,16,181 (पश्चिमी पहाड़ी) बताई है ।[29] वे पहाड़ी भाषाओं का सभी समीपवर्ती क्षेत्रों की भाषाओं, यथा, पंजाबी, उत्तरी तथा पूर्वी हिन्दी और बिहारी से निकट सम्बन्ध नहीं मानते परन्तु राजपूताना की भाषाओं से इनका सीधा सम्बन्ध मानते हैं । उन्होंने अपने मत को इस तथ्य पर आधारित किया है कि प्राचीन काल में खश तथा गुर्जर कबीले हिमालय क्षेत्र में बसे और पहाड़ी भाषा के विभिन्न वर्गों की वर्तमान बोलियों को अपने साथ लाए ।[30] उनका यह कथन हिमालयी क्षेत्र की भाषाओं के सम्बन्ध में किसी सीमा तक ही सही माना जा सकता है क्योंकि इन क्षेत्रीय भाषाओं, विशेष रूप से पश्चिमी पहाड़ी में, इस प्रकार की शब्द-सम्पदा विद्यमान है जो केवल खश व गुर्जर भाषा वर्गों की ही सम्पत्ति नहीं मानी जा सकती बल्कि जिस पर तिब्बती बर्मी,दरद पैशाची, संस्कृत तथा अन्य भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है । पश्चिमी पहाड़ी तथा उसकी बोलियों और बोलने वालों की संख्या का विवरण उन्होंने इस प्रकार दिया (पृ. 374) है :

1.	जौनसारी	–	47,437
2.	सिरमौरी	–	1,24,562
3.	बघाटी	–	22,195
4.	क्योंथली	–	1,51,476
5.	सतलुज ग्रुप	–	38,893
6.	कुल्लुई	–	84,631
7.	मण्डयाली	–	2,12,184
8.	चमेआली	–	1,09,289
9.	भद्रवाही	–	25,517
	कुल		**8,16,181**

डॉ. ग्रियर्सन सतलुज ग्रुप को क्योंथली तथा कुल्लुई के बीच सेतु मानते हैं। क्योंथली-बघाटी तथा कुल्लुई को विशिष्ट (typical) पश्चिमी पहाड़ी बताने के पीछे उनका आशय खश-कनैत-गूजर सम्बन्धी धारणा से अधिक जुड़ा प्रतीत होता है । उन्होंने कांगड़ा, बिलासपुर, मांगल तथा शिवालिक क्षेत्रों के कुछ भागों को पश्चिमी पहाड़ी वर्ग में न गिना कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उनकी मान्यता पहाड़ी भाषा वर्ग को मात्र खश-कनैत-गूजर समूहों की मूल भाषा सिद्ध करने की ओर झुकी हुई थी । डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी के अनुसार लगभग 1000 ई. पू. मंगोल वर्ग के तिब्बती-वर्मी भाषियों ने भारत प्रवेश किया होगा और पूर्वी पंजाब के आर्य-भाषी लोगों से उनका सम्मिश्रण हुआ । उनके मतानुसार खश आर्य-भाषा भाषी थे और उन्होंने तथा बाद में गोरखों ने भारतीय मंगोल (Indo- Mongoloid) रक्त के मिश्रण की भूमिका निभाई[31]। कनैत कुणिन्दों के वंशज हैं । कुणिन्द-कनैत तथा खश-गुर्जर सम्बन्धी अवधारणाओं से पहाड़ी भाषा के उद्भव के सम्बन्ध में जानने में मदद तो मिलती है परन्तु पहाड़ी भाषा-परिवार में शब्दों तथा वाक्य रचना का अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता हे कि कुछ समय पूर्व तक इस भाषा की बनावट, भिन्नता तथा समानता पर वैज्ञानिक ढंग से कार्य नहीं हुआ । डॉ. ग्रियर्सन संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि सम्बन्धी प्रभाव पर सम्यक् विचार नहीं दे पाए । महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने किन्नर भाषा, जो मूलत: तिब्बती बर्मी भाषा परिवार के हिमालयी वर्ग से सम्बद्ध है, पर किराती का बहुत बड़ा प्रभाव माना है । उन्होंने अपनी पुस्तक 'किन्नर-देश' में ऐसे अनेक शब्दों को संकलित किया है जिनमें किराती तथा तिब्बती (भोट भाषा) का मिश्रण इस प्रकार हो गया है कि एक ही शब्द दिखवाई देने पर भी वे दो भाषाओं के संयुक्तिकरण से बने हैं । उनका कथन है कि, '' मैं पहले कह चुका हूं-किन्नर शब्द कोष में प्राय: 25 से 52 प्रतिशत हिन्दी, 14 प्रतिशत भोटिया और 16 से 59 प्रतिशत तक शुद्ध(किरात)भाषा के शब्द हैं (पृ. 322)''।

पहाड़ी भाषा की इतिहास-परम्परा से जुड़ा एक अन्य प्रश्न भी है । लाहुल में चनाली बोली में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य तथा कुल्लू की पार्वती घाटी में सुदूर क्षेत्र में बसे मलाणा गांव की बोली पर किन्नर-भाषा का प्रभाव यह सिद्ध करता है कि पहाड़ी भाषा के विकास के सम्बन्ध में अब तक की गई खोजों के पुनरावलोकन की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है । कोली समुदाय के लोग विष्णु की पूजा करते हैं तथा संस्कृत-बहुल भाषा बोलते हैं । उनकी बोली पर भी स्वतन्त्र अध्ययन की आवश्यकता है । कोली, कोल-कुल्लू-कुल्लूत-कनैत, कुलिन्द आदि शब्द आपस में सम्बन्धित प्रतीत होते हैं, इस पर भी विचार होना चाहिए और

इन वर्गों से सम्बन्धित प्राचीन साहित्य का अवलोकन अध्ययन भी किया जाना चाहिए ।

डॉ. बाबू राम सक्सेना ने[32] 'अपभ्रंश' के सम्बन्ध में कहा है कि उसका विकास सर्वसाधारण की बोली के रूप में हुआ । उन्हीं के शब्दों में, 'सर्वसाधारण अपनी बोली को बनाए रहे, उसी को वैयाकरणों ने अपभ्रंश की संज्ञा प्रदान की ।' शौरसेनी अपभ्रंश, जिसके साथ पहाड़ी भाषा का सम्बन्ध है, के प्राचीन साहित्य का अध्ययन तथा दरद पैशाची पर किए गए कार्य का अवलोकन सम्भवतः पहाड़ी भाषा के उद्भव व विकास पर नया प्रकाश डालने में समर्थ होगा । शौरसेनी अपभ्रंश में सातवीं से तेरहवीं शताब्दी तक साहित्य-रचना होती रही है परन्तु पहाड़ी बोलियों में प्रचलित शब्द-भण्डार से सम्बन्धित कितने शब्द उसमें प्रयुक्त हुए, यह स्वतन्त्र शोध का विषय है । दरद पैशाची भी साहित्यिक भाषा रही है । इसी प्रकार पहाड़ी भाषा साहित्य के लिए नई भाषा नहीं है । जनगणना रिपोर्ट 1931 के अनुसार वर्ष 1921 तथा 1931 की अवधि में मण्डियाली उपभाषा में 14 पुस्तकें प्रकाशित हुई । स्थानीय लिपियों में प्रचुर अप्रकाशित अभिलेख इस भाषा के इतिहास पर प्रकाश डालने के लिए महत्वपूर्ण सामग्री हैं । ये हमारे सांस्कृतिक इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं ।

यहां यह उल्लेखनीय है कि हिमाचल प्रदेश का क्षेत्र सप्त सिन्धु क्षेत्र का एक भाग रहा है । प्लिनी के अनुसार सिन्धु समूह में वर्तमान उन्नीस नदियों में सतलुज (Hesidrus) सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी । चन्द्रभागा ऋग्वेद की असिक्नी है । इरावती व विपाट् के अतिरिक्त सिरमौर ज़िला से निकलने वाली सरस्वती नदी का वैदिक साहित्य में प्रमुख स्थान है । मनु का विनशन-प्रदेश सिरमौर से लेकर राजपूताना तक फैला था । क्षुद्रक लोग विनशन प्रदेश की सीमा पर रहने वाले थे। इनके साथ सिकन्दर का अन्तिम युद्ध हुआ था।[33] देवासुर सभ्यता, अग्निपूजक लोगों की परम्पराएं, विभिन्न पौराणिक कबीलों, यथा, नाग, गन्धर्व, किन्नर, कौरव, पाण्डव, देव-परम्पराओं आदि के अध्ययन के दृष्टिगत ही पहाड़ी भाषा के इतिहास व मूल स्वरूप का पता चल सकता है । यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि पहाड़ी भाषा में साहित्य सृजन की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है । स्थानीय उपभाषाओं में सैकड़ों प्राचीन पाण्डुलिपियां लोगों के घरों में उपलब्ध हैं जिन्हें संकलित व प्रकाशित करने की आवश्यकता है । सांचा ग्रन्थों की संख्या तो हज़ारों में है । संवत् 1152 विक्रमी (सन् 1095 ई0) का लेख खड़कांह गांव में उपलब्ध एक सांचा ग्रन्थ में इस प्रकार सन्दर्भित है -

''लोय आणा मंगतु पुरोहित साथ लोय आणा राय भाट लोय आणा, विक्रमी

सम्वत् साल थी तोदी 1152 म्हीना माघ ।'' इसके पश्चात् के अनेक ऐतिहासिक आलेख इन पाण्डुलिपियों में सुरक्षित हैं । क्रमिक इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से यह सामग्री बहुत महत्वपूर्ण है । इन ग्रन्थों में स्थानीय उपभाषा में रामायण, महाभारत तथा पुराण साहित्य के अनुवाद ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। सांचा रामायण में चार काण्ड प्रमुख हैं जिनमें पाताल काण्ड, अयोध्या काण्ड, इन्द्र के साथ युद्ध तथा लंका काण्ड सम्मिलित हैं । इन ग्रन्थों में प्राचीन चौसठ कलाओं को आधार मान कर शुक्र के नीतिसार का विवेचन भी उपलब्ध है ।

सांचा की भाषा स्थानीय है । इसका एक नमूना इस प्रकार है– ''ये ही पुच्छणहारिया–जे तेरा कारज पूरा होवे । हे पृच्छका डंकणी दोष लगा है । बल पूज़ा करणी तत आनन्द होगा ।''

सांचा विद्या पर नाथ पंथ अथवा अवधूत पंथ का प्रभाव पड़ा । इस पंथ के मन्त्र पहाड़ी भाषा की विभिन्न उपभाषाओं में अब भी प्रदेश के विभिन्न जनपदों में प्रचलित हैं ।

पहाड़ी भाषा के विभिन्न स्रोतों के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में लोगों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा कर बस जाने का क्रम जारी रहा । इस के कारण इस क्षेत्र में विभिन्न भाषा–भाषी आ कर बसते रहे। दूसरे, अनेक रियासतें होने के कारण अनेक बोलियों को प्रश्रय मिलता रहा जिस के कारण एक समन्वित भाषा के उभरने में कठिनाइयां आई । इन स्थितियों का एक लाभ यह हुआ कि वर्तमान समय की पहाड़ी भाषा शब्द भण्डार की दृष्टि से एक सशक्त तथा सक्षम भाषा बन कर उजागर हुई । इस में साहित्य रचना की अद्भुत सम्भावनाएं विद्यमान हैं और अन्य भाषाओं की तरह इस का शब्द भण्डार सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता से सम्पन्न है। साहित्य सृजन की वर्तमान गति से सहज ही यह आशा की जा सकती है कि यह भाषा शीघ्र ही इस देश की समृद्ध भाषाओं में अपना स्थान बना लेगी ।

विषय पत्र पर चर्चा

प्रस्तुत पत्र पर परिचर्चा में डॉ. जे0 सी0 शर्मा ने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि डॉ. ग्रियर्सन ने भाषाओं का वर्गीकरण कुछ समान विशेषताओं के दृष्टिगत किया है । जब हम कांगड़ी और डोगरी की कतिपय समान विशेषताएं देखते हैं तो प्रतीत होता है कि किसी सीमा तक डॉ. ग्रियर्सन के कथन में सत्यता है । उसके पास कांगड़ी तथा बिलासपुरी का पर्याप्त विवरण नहीं था अतः निष्कर्ष सही न हो पाने

का यह मुख्य कारण है । उन्होंने मात्र उच्चारण पर ही आधारित करके निष्कर्ष निकाले । बिलासपुरी, कांगड़ी, पंजाबी तथा डोगरी में उच्चारण की कुछ समानताएं हैं जिनमें स्वराघात प्रमुख है अतः यह निर्णय इसी विशेषता पर आधारित लगता है ।

ग्रियर्सन ने कांगड़ी तथा पंजाबी और डोगरी को एक वर्ग के अन्तर्गत रखने के पश्चात् भी यह बताया है कि कांगड़ी की कुछ विशेषताएं उसे पहाड़ी के अन्तर्गत रखती हैं । अभी इस विषय में स्थिति को देखते हुए तथा भाषागत विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए हमें सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए परिश्रम करना पड़ेगा ।

डॉ. एच0 सी0 पट्याल ने इस वर्गीकरण की अद्यतन स्थिति की जानकारी की जिज्ञासा प्रकट की । डॉ. पीयूष गुलेरी, प्रो0 मृणाल मिरि, डॉ. शमी शर्मा, डॉ. अमिता शर्मा, एम0 आर0 ठाकुर तथा डॉ. ए0 आर0 चौहान ने भी चर्चा में भाग लिया । डॉ. चौहान का मत था कि क्योंकि कांगड़ी में पंजाबी की तरह स्वराघात का विस्तार नहीं हुआ अतः देखना यह है कि स्वराघात की परम्परा पंजाबी में कांगड़ी से गई अथवा कांगड़ी में पंजाबी से आई । एम0 आर0 ठाकुर का मत था कि स्वराघात की परम्परा पंजाबी में कांगड़ी से आई और कांगड़ी में यह तिब्बती-वर्मी के माध्यम से आई है । पंजाबी के पश्चात् राजस्थानी तथा वांगरू में इसका प्रभाव नहीं दिखाई देता । उनकी मान्यता थी कि मात्र स्वराघात के आधार पर ही कांगड़ी को पंजाबी की उपभाषा मानना सही नहीं है । स्वराघात तो भाषा की एक छोटी सी इकाई है ।

इस सत्र की अध्यक्षता प्रो0 मृणाल मिरि ने की ।

सन्दर्भ संकेत

1. Grierson, G. A. – 1968 Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part IV, Indo-Aryan Family, Central Group, Moti Lal Banarsi Dass, Delhi, , Pp. 1-2.
2. बालकराम भारद्वाज, 1988 गुग्गा गाथा (प्रथम खण्ड) – भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि0 प्र0, पृ0 2
3. (सं0) हज़ारी प्रसाद द्विवेदी(डॉ0), सं0 2035 वि0 सिद्धों की बानियां; नागरी प्रचारिणी सभा, ; श्री चरपट नाथ जी की सबदी, पृ0 13-18.
4. देखिए, वही, पृ0 4-6

5. देखिए, भरथरी की लोकगाथा, प्रकाशक : हिमाचल कला, संस्कृति एवम् भाषा अकादमी, शिमला।
6. निजी संग्रह से
7. निजी संग्रह से
8. (सं0) रामदयाल नीरज, 1973 - हिमाचल प्रदेश की लोकगाथाएं लोक सम्पर्क विभाग, हि0 प्र0, शिमला।
9. गद्‌दी गीत - निजी संग्रह से
10. श्री अमृत कुमार शर्मा कुमारसेन, ज़िला शिमला के सौजन्य से ।
11. Tika Ram Joshi देखिए, A Dictionary of Pahari Dialects and A Dictionary and Grammar of Kanawari – (Reprint) Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Shimla - 1989.
12. Pt. Tika Ram Joshi, Journal of Asiatic Society of Bengal Vol. VII, No. (N. S.) September, 1911; Pp. 525-603, Ethnography of Bashehr State.
13. देखिए, J. Wilson, Shahpuri Kangri Glossary, 1962, (Reprint) Punjab Language Department, Patiala,, Appendix, 1 to 82.
14. पंजाब भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित रिप्रिंट (पुनर्मुद्रण) इसके प्रमाण हैं ।
15. देखिए, Gopal Singh - Punjab Past, Present and Future, Ajanta Publications, P. Box 2192, Malka Ganj, Delhi - 110 007, P. 218.
16. देखिए, सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन, भारत का भाषा - सर्वेक्षण (भाग 9 - पंजाबी) संकलन कर्ता तथा सम्पादक, अनुवादक डॉ. हरदेव वाहरी, प्रयाग विश्व विद्यालय; प्रकाशक, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ; प्रथम संस्करण, 1970, पृ0 20 - 21.
17. सन्दर्भ ग्रन्थ :
    (1) सीरामपुर के ईसाई प्रचारक कैरे द्वारा लिखित तथा सन् 1812 ई0 में प्रकाशित व्याकरण जिसमें पंजाबी भाषा का उल्लेख है । (ए ग्रामर ऑफ़ दि पंजाबी लैंग्वेज, 1812)
    (2) जान बीम्स द्वारा रचित 'आउट लाइन्ज़ ऑफ़ इण्डियन फाइलालोजी ' (भारतीय भाषा - शास्त्र की रूप रेखा) कलकत्ता, 1867.
    (3) हार्नले, डॉ. ए0 एफ0 आर0 सी0 आई0 ई0 - एसेज़ इन एड ऑफ़ कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ़ दि गौडियन लैंग्वेजिज़ (गौड़ भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण के सहायतार्थ निबन्ध) जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, वर्ष 41 (1872), भाग 1, पृ0 120 इत्यादि ।
    (4) वही, ए ग्रामर ऑफ़ दि ईस्टर्न हिन्दी कम्पेयर्ड विद् दि अदर गौडियन

लैंग्वेजिज़ (अन्य गौड़ भाषाओं से तुलनाकृत पूर्वी हिन्दी का व्याकरण) लन्दन, 1880

(5) स्टील, मिसेज एफ0 ए0 - तथा टेम्पल, लैफ्टिनेंट (लेफ्टी0 कर्नल सर) रिचर्ड कार्नक-फोकलोर इन दि पंजाब । इण्डियन एण्टिक्वेरी, वर्ष 9 (1880), वर्ष 10 (1881), वर्ष 11 (1882), वर्ष 12 (1883)

(6) स्टील, मिसेज एफ0 ए0-टेल्ज़ ऑफ़ दि पंजाब टोल्ड बाई दि पीपल (पंजाब की कहानियां लोगों के मुख से), लन्दन, 1984.

(7) टेम्पल, लेफ्टीनेंट रिचर्ड कार्नक-आनरिफिक क्लास नेम्ज़ इन दि पंजाब (पंजाब में आदर सूचक जाति वाचक नाम) इण्डियन एण्टीक्वेरी, वर्ष 11 (1882), पृ0 117 इत्यादि ।

(8) सम हिन्दू फोकसांग्स फ्राम दि पंजाब, जर्नल ऑफ़ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, वर्ष 51 (1882), भाग 151 इत्यादि ।

(9) टेम्पल, वही; ए पंजाब लैजेण्ड, इण्डियन ऐण्टीक्वेरी वर्ष 11 (1882) ; सांग्स ऑफ़ दि पीपल, दि सिविल एण्ड मिलिट्री गज़ट, 1882, 1883.

(10) टेम्पल, वही; फोक सांग्स फ्रॉम नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता रिव्यू, वर्ष 77 (1884), पृ. 270 इत्यादि; फोक सांग्स फ्रॉम नार्दर्न इण्डिया, कलकत्ता रिव्यू, वर्ष 78 (1884), पृ0 273 इत्यादि; राजा रसालू, कलकत्ता रिव्यू, वर्ष 79 (1884), पृ0 379 इत्यादि; दि लैजेण्ड्स ऑफ़ दि पंजाब, बम्बई तथा लन्दन, भाग 1 (1884), भाग 2 (1885), भाग 3 (1900)

(11) इबेट्सन, (सर) डेनियल चार्ल्स जेल्फ-आउटलाईन्स ऑफ़ पंजाब ऐंथनाग्राफी (धर्म, भाषा और जाति से सम्बन्धित पंजाब की जनगणना रिपोर्ट), 1881 से उद्धरण । कलकत्ता, 1883 (पंचम अध्याय, लोकभाषाएं, पृ0 153) इत्यादि ।

(12) थार्नटन, टॉम्स एच0, सी0 एस0 आई0-दि वर्नेकुलर लिट्रेचर एण्ड फोकलोर ऑफ़ दि पंजाब (पंजाब का देशी साहित्य और लोकविद्या), जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी, वर्ष 17 (1885), पृ0 373

(13) मैक्लैगन, ई0 डी0-सैन्सस ऑफ़ इण्डिया, 1891 भाग 19, पंजाब और उसकी रियासतें, खण्ड 1 प्रतिवेदन, कलकत्ता, 1892 (अध्याय 9, लोगों की भाषाएं, पृ0 200, इत्यादि ।

(14) रोज़, एच0 ए0-सेन्सस ऑफ़ इण्डिया, 1901, भाग 17, पंजाब तथा उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त । खण्ड ।, प्रतिवेदन ।

(15) रोज़, एच0 ए0 लैजेण्ड्स फ्रॉम दि पंजाब; इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1906, 1908, 1910; ए ट्रिप्लेट ऑफ़ पंजाबी सांग्स, इण्डियन एण्टीक्वेरी, 1909, पृ0 33

(16) स्विनटर्न रेवरेण्ड चार्ल्स–रोमेण्टिक टेल्ज़ फ्राम दि पंजाब, लन्दन, 1903
(17) न्यूटन, रेवरेण्ड जे0, – ए ग्रामर ऑफ़ दि पंजाबी लैंग्वेज, लुधियाना, 1851; 1866; 1893
(18) न्यूटन, रेवरेण्ड जे0 तथा जेन्वीयर रेवरेण्ड एल0 – ए डिक्शनरी ऑफ़ दि पंजाबी लैंग्वेज, लुधियाना, 1894
(19) कनिंघम, सर अलैक्जेण्डर – लदाक फिज़िकल स्टैटिस्टिकल एण्ड हिस्टारिकल विद् नोटिसिज़ ऑफ़ दि सराउंडिंग कण्ट्रीज़, लंन्दन, 1894
(20) बिहारी लाल – पंजाबी ग्रामर, लाहौर, 1867; पंजाबी व्याकरण सार (पंजाबी), लुधियाना, 1869, लाहौर, 1895
(21) लॉयल (सर) जेम्स वाडवुड, – रिपोर्ट ऑफ़ दि लैण्ड रेवेन्यु सेटलमेण्ट ऑफ़ दी कांगड़ा डिस्ट्रिक्ट, पंजाब, 1865–72, लाहौर, 1874 । परिशिष्ट 4, शब्द संग्रह, परिशिष्ट 5, लोकोक्तियां ।
(22) ड्रीड, फ्रेडरिक,–दि जम्मू ऐण्ड काश्मीर टेरिटरीज़ । भौगोलिक वृतान्त, लन्दन, 1875; डोगरी का इतिवृत्त, पृ0 463 इत्यादि; डोगरी लिपि वर्णित, पृ0 471, परिशिष्ट (पृ0 503 इत्यादि) में डोगरी व्याकरण।
(23) मुहम्मद अब्दुल गफूर – ए कम्पलीट डिक्शनरी ऑफ़ दि टर्म्स यूज़्ड बाई दि क्रिमिनल ट्राइब्ज़ लाहौर, 1879
(24) लिटनर, जी0 डब्ल्यू0, – ए डिटेल्ड अनैलिसिज़ ऑफ़ अब्दुल गफूर'ज़ डिक्शनरी ऑफ़ दि टर्म्स यूज़्ड बाई क्रिमिनल ट्राइब्ज़ इन दि पंजाब, लाहौर, 1890
(25) विल्सन, जे0, – फाइनल रिपोर्ट ऑन दि रिवीज़न ऑफ़ सैटलमेण्ट ऑफ़ सिरसा डिस्ट्रिक्ट इन दि पंजाब, कलकत्ता, 1884
(26) टिस्डल, रेवरेण्ड विलियम सेन्ट क्लेयर–ए सिम्पलिफाइड ग्रामर एण्ड रीडिंग बुक ऑफ़ दि पंजाबी लैंग्वेज, लन्दन, 1889
(27) मैकोनैकी, आर0,– सिलैक्टिड एग्रिकलचरल प्राबर्ब्ज़ (पंजाब के), दिल्ली, 1890
(28) ओ' ब्राइन, ई0, – कांगड़ा गज़ेटियर में पिछले संस्करण के परिशिष्ट में कांगड़ा वादी की बोली पर टिप्पणियां, साथ में कांगड़ा ज़िले के विशिष्ट शब्दों का संग्रह ।
(29) ग्राहम बैली, – पंजाबी ग्रामर, लाहौर, 1904; सप्लीमैण्ट टू दि पंजाबी डिक्शनरी (सं0), जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल भाग 5, न0 स0 (1909), पृ0 479; ए पंजाबी फोनेटिक रीडर, लन्दन, 1914
(30) ग्रियर्सन, जी0 ए0, – ऑन दि माडर्न इण्डो–आर्यन एल्फाबेट्स ऑफ़ नार्थ वैस्टर्न इण्डिया; जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1904, पृ0 67

इत्यादि ।

(31) रोज़ एच0 ए0, - सम कान्ट्रिब्यूशन्स टुवर्डज़ ए ग्लॉसरी ऑफ़ रिलिजियस टर्मस यूज़्ड इन दि पंजाब; इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, वर्ष 33 (1904), पृ0 118 (इन्हीं के लेख 'ऑन एडमिनिस्ट्रेटिव टर्म्स एण्ड टाइटल्स यूज़्ड इन दि पंजाब; इण्डियन एण्टिक्वेरी ', वर्ष 36 (1907) पृ0 348, वर्ष 37 (1908) पृ0 75, तथा काण्ट्रिब्यूशन टु पंजाबी लैक्सिकोग्राफी, प्रथम माला, इण्डियन एण्टिक्वेरी, वर्ष 37 (1908), पृ0 36; वर्ष 38 (1909); पृ0 17, 74, 98; द्वितीय माला, वही, पृ0 221, 265, 282, 382, वर्ष 39 (1910), पृ0 29; तृतीय माला (1911), (1912), पृ0 41, 92, 150, 176, 212, 242 तथा 267 को भी देखें।

(32)कमिंग्ज़ रेवरेण्ड टी0 एफ0, एवम् ग्राहम बैली, रेवरेण्ड टी0, - पंजाबी मैनुअल एण्ड ग्रामर, कलकत्ता, 1912

18. भारत का भाषा-सर्वेक्षण (भाग 9-पंजाबी) अनुवादक, डॉ. हरदेव बाहरी, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ; 1970, पृ0 61-62

19. भारत का भाषा-सर्वेक्षण (भाग 9-पंजाबी), अनुवादक डॉ. हरदेव बाहरी हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ; 1970, पृ0 61-62; तथा L. S. I. Vol. IX, Part I, Page 637.

20. वही, पृ0 190 तथा L. S. I., Vol. IX, Part I, Page 776.

21. Census Report 1881, Chapter 5, Pp. 165-171 which reads:
The eastern group of hill languages is shown in our tables as Pahari, and would appear to be practically the same as the Garhwali of the Philologists. Its Western boundary is the eastern watershed of the Ravi which separates Chamba from Kangra; (Footnote: Mr. Lyall, however, who probably knows more than anybody else of the people of the Punjab Hills, thinks that the people of Kangra proper, as distinct from Kullu, approach both in race and language nearer to the Western or Dogra, than to the eastern or Pahari group) to the north it is separated from the Tibetan group of tongues by the mid- Himalayas, to the South it extends as far as the foot of the mountains, but not to the low hills at their base. While it stretches away eastward through Garhwal and Kumaon to meet the Nepalese, it is an Indicia-Language, more akin to Hindi than to Punjabi, and is included with Nepalese by Hornle in his northern Gaudian group, But here, as in all mountain tracts, dialectic variations are numerous, each considerable mountain

range separating two forms of speech which differ in greater or less degree. Thus the Mandi people call their dialect Mandiali, the Kullu people Kuluki, Gaddi is spoken by the inhabitants of the range which divide Kangra from Chamba, and Hinduri by the people of the lower Hill States." (P. 164).

22. (अनुवादक) डॉ0 हरदेव बाहरी, भारत का भाषा – सर्वेक्षण, यथोपरि, पृ0 105 तथा L. S. I. Vol. IX, Part I, Page 677-678.

23. " Mangal lies on the left bank of the Sutlej between 310 18' and 310 22' N. and 760 55' and 770 1' E. It is bounded on the North by the river and on the south by Bilaspur and Baghal. It measures some 12 square miles and has a population of 1227. Mangal is almost the most inaccessible of the hill states. Originally a tributary of Bilaspur,it was declared independent at the end of the Gurkh war. Beyond this the state has practically no history." (state No. 16).

24. "Bilaspur has six dialects :(1) North - East Bilaspuri (North -east of Kungar Hati) practically identical with Mandeali which is spoken through out the greater part of Mandi and Suket . (2) North Bilaspur (North of Kungar Hati),Very like Mandeali, (3) West Bilaspuri with resemblances to Panjabi, (4) Central Bilaspuri (Bilaspur town and surrounding district), some what like Panjabi, (5) South-West Bilaspuri (S.W. of Bilaspur town) and (6) Dami (E. and S.E. of Bilaspur town) both resembling Mandeali and Kangri but more like the former than the letter. West Bilaspuri has a most remarkable future tense, i .g. Karangra or Karang (Central Bilaspuri, Karangra) - "I shall do" practically identical with the secret future of the Criminal Sensis. The Bilaspuri dialects do not show much likeness to kunthali" (p. 6)

25. "No record of language was made available at Census of 1868 and consequently there are no previous statistics, a comparison with which might indicate the progress made by the several languages. But there is little doubt that the Urdu type of Hindi is gradually spreading over the province and superseding the indigenous languages."

26. "Western Pahari is the name given by George Grierson to the groups of dialects spoken by one and a half million people in Shimla, the

Shimla Hill States , a portion of the Kangra Hills and Kashmir. At his request, special arrangements were made to secure a correct record of the dialects and sub- dialects of this language and the statistics are in consequence far more complete and reliable than those of previous enumerations." (P. 331).

27. देखिए Catalogue of the Bhuri Singh Museum at Chamba, Chamba State Punjab-by J.Ph.Vogel, Ph.D., Superintendent Archaeological Survey, Northern Circle, 1909, and Antiquities of Chamba by J.Ph.Vogel,1910.
28. rGyal - ba rgod - tshang - pa'i rnam -thar bzhugs, f. fob as quoted by Tobdan in 'History and Religions of Lahul', Books Today, New Delhi, 1984, (P.20.)
29. देखिए L. S. I ., Vol . IX, Part IV, Pp.1-2.
"It is a remarkable fact that, although Pahari has little connection with the Punjabi, Western and Eastern Hindi ,and Bihari spoken immediately to its south, it shows manifold traces of intimate relationship with the languagues of Rajputana. In order to explain this fact, it is necessary to consider at some length, the question of population that speaks it. This naturally leads to the history of the khasas and the Gurjaras of Sanskrit literature . We shall see that the Kanets themselves are closely connected with the Khasas, and that one of their two sub-divisions bears that name. The other (the Rao) sub-division, as we shall see below, I believe to be of Gurjara descent."
30. अपने मत की पुष्टि के लिए उन्होंने कनैत तथा खश वर्गों के सम्बन्ध में अनेक अधिकारी विद्वानों की पुस्तकों के सन्दर्भ दिए हैं । इनमें सर अलैक्ज़ैण्डर कनिंघम, इबेट्सन, ई० टी० एट-किन्सन, स्टीन, बी० एच० हागसन, सिलवेन लेवी तथा पुराण साहित्य सम्मिलित हैं । विवरण के लिए देखिए, लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया, नवम् खण्ड, चतुर्थ भाग, पृ० 2-16
31. Chatterji, Suniti Kumar, Kirata-Jana-Krti (The Indo-Mongoloids), Royal Asiatic Society of Bengal, Calcutta-16, 1951, pp. 25-26.
32. (डॉ.) बाबू राम सक्सेना, भाषा-विज्ञान, पृ० 250
33. (डॉ.) प्रभुदयाल अग्निहोत्री, 1963, पतंजलि कालीन भारत, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, पृ० 97-100

हिमाचल प्रदेश की लोक भाषा – पहाड़ी

डॉ. हरिराम जसटा

संगीत, नृत्य, धर्म और सामाजिक जीवन की तरह बोलचाल और गीत भी मानव जीवन के मूल रूपहले धागे हैं, जिनसे सामाजिक जीवन में रंग और रस भर जाता है, जिसके कारण मानव संस्कृति में लयात्मकता आती है । वैसे भी भाषा सामाजिक आभास है, जो प्रत्येक समूह के द्वारा अपना संचालन करता है। मानव समूह के विकास के साथ ही विश्व की प्रत्येक भाषा जन्म लेती है तथा प्रगति करती है । जब भाषा बोलने और लिखने वाला समूह नहीं रहता अथवा उस पर अपनी भाषा को भुलाने पर ज़ोर पड़ता है तो भाषा मृतप्राय: हो जाती है ।

प्रत्येक भाषा चाहे उसे कोई समूह बोलता है या लिखता है, भले ही वह किसी भी स्थिति में हो, उसका कोई भी स्थान हो, आदर की हकदार है । भाषा के व्यवहार की दृष्टि से प्रत्येक बोली जाने वाली भाषा की पवित्रता और शुद्धता की रक्षा करना, उसे प्रोत्साहन देना मानवता के लिए महत्वपूर्ण तथा आवश्यक है ।

ऐसे आलोचकों की कमी नहीं जो इस विचार से चिपके रहते हैं कि सभी भाषाओं के समान आदर से मान्यता प्राप्त भारतीय भाषाओं का ह्रास हो जायेगा । उनका दृष्टिकोण अनुचित और असन्तुलित है क्योंकि यह भाषा के स्वभाव के विपरीत है । भाषा तो इस सिद्धान्त पर चलती है कि इसका विकास अपरिहार्य और स्वाभाविक रूप से सम्भव है । उसमें भिन्नता को आत्मसात् करने की क्षमता रहती है ।

लोकतन्त्र में शासक और साधारण जनता के बीच जो सम्प्रेषण-अन्तराल आ जाता है उसकी प्रतिपूर्ति जनता की सभी भाषाओं के सूझ-बूझ युक्त और सदभावपूर्ण विकास से सम्भव है । एक भाषा द्वारा दूसरी भाषा पर आधिपत्य का प्रयत्न अत्यन्त अव्यवस्था और विघटन की ओर ले जाता है ।

पहाड़ी हिमाचल वासियों की मातृभाषा है, जो सभी घरों में बोलचाल की भी भाषा है । इस भाषा की मौखिक परम्परा की बहुत पुरानी धरोहर है । इसका व्यवस्थित लिखित रूप इसे विशिष्ट स्थान प्रदान करने की क्षमता रखता है । इससे हिन्दी को भी बहुत लाभ होगा । वास्तव में हिन्दी और पहाड़ी, हिमाचल प्रदेश में

एक-दूसरे की समृद्धि में अनुपूरक भाषाएं होंगी ।

लिखित सूत्रों के आधार पर कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ी शासन काल में पहला भाषायी सर्वेक्षण 1881 में हुआ था, जिसके अनुसार सिरमौर से लेकर भरमौर तक इस क्षेत्र में पहाड़ी ही बोलचाल की भाषा रही है । इस पहाड़ी को बाद में डॉ0 ग्रियर्सन ने पश्चिमी पहाड़ी का नाम दिया । डॉ0 ग्रियर्सन द्वारा भद्रवाह से लेकर जौनसार बाबर की पहाड़ियों तक बोली जाने वाली भाषा को यही नाम दिया गया ।

15 अप्रैल, 1948 के बाद हिमाचल प्रदेश की स्थापना के बाद प्रदेश के सभी जनपदों को एक सूत्र में बाँधने की आवश्यकता आज पहले से कहीं अधिक है । इसलिए सभी जनपदों में बोले जाने वाले पहाड़ी भाषा के विभिन्न रूपों को समान रूप से पनपने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए । डॉ0 यशवन्त सिंह परमार के कुशल नेतृत्व में पहाड़ी क्षेत्र की संस्कृति और पहाड़ी भाषा को विचार की भाषा बनने का पूरा अवसर मिला । पहाड़ी भाषा की सभी बोलियां उन प्रज्वलित दीपकों के समान हैं, जो बड़े भवन के अन्धेरे कोनों को प्रकाशित कर देते हैं । इसलिए सभी उप भाषाओं को विकसित करने के लिए पूरे अवसर प्रदान करने चाहिएं ।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए, पहाड़ी भाषा को मान्यता प्रदान करना और उसका विकास करना हिमाचल प्रदेश को राष्ट्रीय सन्दर्भ में व्यक्तित्व और पहचान प्रदान करना है ।

पहाड़ी (हिमाचली) के ऐसे भी आलोचक हैं, जो पहाड़ी के अस्तित्व को ही नहीं मानते और दूसरे ऐसे भी आलोचकों की कमी नहीं, जो यह कहते हैं कि पहाड़ी भाषा नहीं, बोली है या बोलियों का समूह है । इसे वे उपभाषा भी मानने को तैयार नहीं हैं । वे इस तथ्य को भूल जाते है कि उच्चकोटि की भाषाएं भी अनेक बोलियों का समूह होती हैं । प्रत्येक भाषा का पहला काम बोलचाल में दक्षता प्राप्त करना है । लिखाई-पढ़ाई बाद में आती है । कहलूरी, कांगड़ी, चम्बयाली, मंडियाली, कुल्वी, सिरमौरी, महासुवी (बघाटी एवं क्योंथली) आदि इसकी भौगोलिक इकाइयां हैं । ये उपभाषाएं व्याकरणीय बनावट की दृष्टि में एक जैसी हैं । पहले 31 रियासतों में जनता अलग-थलग पड़ी थी, इसलिए परस्पर आदान-प्रदान कम था । परन्तु हिमाचल प्रदेश के अस्तित्व में आने के बाद काफी परस्पर परसंसेचन (cross fertilization) के फलस्वरूप पहाड़ी में एकरूपता के लक्षण उभर रहे हैं । पहाड़ी (हिमाचली) में, विशेषकर कांगड़ी जनपद में, बहुत लिखित साहित्य प्रकाशित हो रहा है । इस प्रकार पहाड़ी को सातवें दशक से बहुत महत्व मिल रहा है । यह भी एक सच्चाई है कि अब पहाड़ी टॉकरी लिपि की अपेक्षा देवनागरी लिपि में लिखी जा रहा है ।

अनेक बोलियों का समूह होने के बावजूद मानक पहाड़ी भाषा के विकसित होने में अब कोई बाधा नहीं दिखती । धीरे-धीरे पहाड़ी का शब्द भण्डार बढ़ रहा है । हिमाचल प्रदेश की विभिन्न भौगोलिक इकाइयों में भाषिक बोलचाल का जो अन्तराल रहा, वह अब राजनीतिक एकता और शिक्षा प्रसार से धीरे-धीरे कम होता जा रहा है । विभिन्न बोलियों में अलगाववाद पनप रहा था, अब वह हटता जा रहा है और पहाड़ी एक भाषा का रूप धारण करती जा रही है ।

भारतीय भाषा परिवार में साहित्यिक भाषा के रूप में, पहाड़ी अपेक्षाकृत नई जागरूक, जीवन्त तथा गतिशील भाषा है। पहाड़ी भाषा के विकास में अनेक उतार-चढ़ाव आये, जैसा कि डॉ0 परमार ने भी कहा है ।

डॉ0 ग्रियर्सन ने पहाड़ी की नौ बोलियों का विवेचन किया है । उन्होंने जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, क्योंथली, सतलुज समूह, कुल्वी, मंडियाली, चम्बयाली और भद्रवाह समूह का ज़िक्र किया है । किन्हीं विद्वानों के अनुसार यह 30 छोटी बोलियों का समूह है तथा कुछ अन्य इन समूहों को इससे भी अधिक छोटे उपवर्गों में विभाजित करते रहे । ये विभाजन भाषा-वैज्ञानिक आधार पर न होकर मात्र अवैज्ञानिकता पर आधारित रहे। इस प्रकार सरकारी आंकड़ों में व्यवहृत पहाड़ी कभी मातृ भाषा का रूप धाारण करती रही और कभी बोलियों का ।

एक बात हमारे सामने उभर कर आई कि ग्रियर्सन ने लगभग 40 बोलियों को पहाड़ी के अन्तर्गत माना और ग्राहम् बेली ने भी इतनी ही बोलियों का ज़िक्र किया है । वे विभिन्न रियासतों के नाम के साथ बोली का नाम जोड़ते रहे परन्तु उनकी विशेषताओं पर कोई प्रकाश नहीं डाला । इसलिए उनके कथन का आधार न ही वैज्ञानिक था और न ही साहित्यिक । इसका प्रमाण डॉ0 परमार का अपनी पुस्तक 'पहाड़ी भाषा और क्षेत्र' में यह स्पष्ट वक्तव्य है : कभी पहाड़ी भाषा को बोलने वालों की संख्या बढ़ जाती थी कभी घट जाती थी । कभी उसे मातृ भाषा, तो कभी उसे बोली का नाम देकर उसके टुकड़े किये जाते रहे । यह सारा कार्य वास्तविकता से दूर था । साधारण जनता को इसके परिणाम भुगतने पड़े, राजनीतिक रूप से भी और सामाजिक रूप से भी ।

इस उलट-पलट के कारण भी पहाड़ी का विकास नहीं हो सका । सरकारी प्रेरणा और प्रोत्साहन के अभाव में भी पहाड़ी लोकगीतों, गाथा गीतों, लोक नाटकों, कहावतों, लोक कथाओं इत्यादि के रूप में आगे बढ़ती रही । उसका स्वाभाविक और प्राकृतिक विकास रुका नहीं । यह अपनी समृद्ध एवं प्राचीन मौखिक परम्परा के आधार पर, किसी एक जाति या समूह के सहारे नहीं बल्कि जनता जनार्दन की थाती के रूप में जीवित रही । अब यह प्रदेश की साधारण

जनता की सांस्कृतिक निधि है ।

लोग आज भी दैनिक बोलचाल में, रसोईघर में, खेतों बगीचों में, मेलों ठेलों में, त्यौहारों में इस भाषा का प्रयोग करते हैं । साहित्यकार पहाड़ी संस्कृति का वाहन मानकर इसे व्यवस्थित रूप, गरिमा और सौन्दर्य से अलंकृत करने में जुटे हैं । यद्यपि यह सच है कि अभी तक हम पहाड़ी की मानक शब्दावली और बर्तनी को एक स्वरूप प्रदान नहीं कर सके परन्तु यह स्थिति अन्य मानक भाषाओं की भी तो है । प्रश्न है कि कहीं हम मानक पहाड़ी की बात चला कर जनता की बोलचाल की भाषा को किसी सीमा में बाँधकर निर्जीव बनाने का प्रयास तो नहीं कर रहे । पहाड़ी के विकास में भी उन्हीं समस्याओं से जूझना पड़ रहा है, जिनसे अन्य कई विकसित भाषाएं जूझ रही हैं ।

राज्य की सरकारी नीति का एक भाग बनने से पहले, पहाड़ी टॉकरी में लिखी जाती थी । इसी लिपि में, हिमाचल प्रदेश का शासक वर्ग अपने कार्य का रिकार्ड रखता था । इसी लिपि का प्रयोग फरमान जारी करने, विशिष्टता के लिए उपाधि प्रदान करने अथवा सहायता प्रदान करने के लिए किया जाता था । उन दिनों ईसाई मिशनरी भी टॉकरी लिपि में ईसाई धर्म की पुस्तकें अनूदित करते थे । ऐसा समझा जाता है कि टॉकरी शारदा लिपि का संशोधित रूप है । यही शिवालिक पहाड़ियों में अधिक लोकप्रिय रही । प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान बूहलर टॉकरी को प्रवाही (घसीटा) शारदा का आधुनिक रूप मानते थे । वैसे भी टॉकरी लिपि में पढ़ने की बहुत कठिनाई रहती थी क्योंकि इसमें स्वर (vowel) का विशेष प्रयोग होता था । आज भी बनिया लोग अपने बही-खातों में इसी लिपि का प्रयोग करते हैं । टॉकरी में सभी ध्वनियों का उच्चारण सम्भव नहीं था । इसीलिए अब पहाड़ी प्राय: देवनागरी लिपि में ही लिखी जाने लगी है ।

पहाड़ी भाषा के विकास में काल और निहित स्वार्थो द्वारा गतिरोध पैदा करने का भरसक प्रयत्न किया गया परन्तु इस भाषा की गतिशीलता निरन्तर प्रगति के पथ पर है। पहाड़ी भाषा की पुरानी लिखित साहित्यिक परम्परा-धरोहर वर्तमान पीढ़ी को अभी तक समग्र रूप प्राप्त नहीं हुई । इसकी समृद्ध और रंगबिरंगी लोक परम्परा लोक गीतों, लोक कथाओं और लाकवार्ता के रूप में उपलब्ध है ।

प्राचीन पहाड़ी में कोई विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं है । फिर भी हम यह नहीं कह सकते कि इस भाषा में किसी प्रकार का साहित्य लिखा ही नहीं गया । पहाड़ी साहित्य के लिखित रूप प्राचीन सरकारी आदेशों और अन्य उपयोगी सामग्री के रूप में आज भी हिमाचल प्रदेश के पुराने राजघरानों, ज्योतिषियों, मन्त्रियों तथा राजकवियों के घरों में उपलब्ध हो सकते हैं।

पहाड़ी की प्राचीनता स्थानीय पुराण कथाओं, गाथा गीतों और लोक परम्परा के रूप में सुरक्षित है । मेले, उत्सव और लोक वार्ता ऐसे प्राचीन स्रोतों की जानकारी देते हैं । गूगा गाथा, भारथाएं, बूढ़ी दिवाली का काब (काव्य) तथा बरलाज गीत इसी वर्ग में आते हैं।

सबसे प्राचीन अभिलेख घनियारा तथा पठियार (धर्मशाला) में ब्रह्मी और खरोष्टी लिपि लिखित हैं । इसी प्रकार ताम्बे के सांचे (चौपाल, शिमला), मेरू वर्मन का अभिलेख (सातवीं शताब्दी), बैजनाथ अभिलेख (804 ई0), युगाकार वर्मन की ताम्बा की प्लेट, भरमौर के नारसिंह मन्दिर के नाम अधिकार विलेख (10वीं शताब्दी), हाटकोटी और ब्रजेश्वरी अभिलेख (14 वीं व 15 वीं शताब्दी), राजा भोट वर्मन के चार पट्टे 14 वीं शताब्दी) जो टॉकरी लिपि में हैं, से पहाड़ी लेख और रूप की कुछ झलक उपलब्ध होती है ।

चम्बा के राजा राजसिंह और भद्रवाह के राजा फतहपाल के मध्य जो समझौता (1764 - 94 ई0) हुआ था, वह भी टॉकरी लिपि में उपलब्ध है । ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि पहाड़ी प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र की लोक भाषा रही है । इसके अतिरिक्त निजी तथा सरकारी पत्र-व्यवहार में भी पहाड़ी का प्रयोग होता था । राजा राजसिंह (चम्बा) ने धुन्दी का परगना अपने वज़ीर ज़ोरावर सिंह को टॉकरी लिपि में अभिलेख लिखकर प्रदान किया । 1801 ई0 में कुल्लू में राजा प्रीतम सिंह ने चम्बा के राजा जीतसिंह को सहायता का पत्र टॉकरी लिपि में लिखा । राजा संसार चन्द(काँगड़ा) और राजा जीतसिंह (चम्बा) के बीच समझौता भी टॉकरी लिपि में लिखा गया ।

डॉ0 वेदप्रकाश अग्नि के अनुसार रुद्रयामल (1827 वि0) और 'शिवपूजा' (1831 वि0) सम्भवत: पहाड़ी गद्य में लिखी गई आरम्भिक गद्य रचनाओं में से हैं ।

एच0 ए0 रोज़, आई0 सी0 एस0, ने 1883 में पंजाब का जनसंख्या विवरण प्रकाशित किया । उसमें पहाड़ी गद्य एवं पद्य के अनेक उदहारण उपलब्ध हैं । ऐसे ही बहु संख्यक उदाहरण पहाड़ी राजाओं के समझौतों तथा निजी पत्र व्यवहार के अभिलेखों और पनघट शिलाओं आदि में उपलब्ध हैं । आज तक पहाड़ी देवताओं के पूजा मन्त्र पहाड़ी में बोले जाते हैं । उन्हें ग्राम देवताओं के पुजारियों से रिकार्ड किया जा सकता है । इनसे 300-500 वर्ष पूर्व पहाड़ी बोली के ठोस उदहारण मिल सकते हैं । देव गाथाओं को भारथा भी कहा जाता है । इनकी भाषा अत्यन्त प्राचीन एवं परम्परागत है । गणेश सिंह बेदी, रुद्रदत्त, बाबा कांशीराम, डा0 एम0 एस0 रन्धावा, देवेन्द्र सत्यार्थी, राहुल सांकृत्यायन, ग्राहम बैली, टीकाराम जोशी सरीखे विद्वानों ने पहाड़ी के संरक्षण और विकास के लिए उस समय कार्य किया

जब इसकी उपेक्षा होती रही ।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष सरदार हुकम सिंह की अध्यक्षता में मार्च, 1966 में प्रकाशित हुई । इसमें अन्य बातों के अलावा यह स्पष्ट किया गया है कि पंजाब के पहाड़ी क्षेत्रों में भाषा पहाड़ी है जो न हिन्दी और न पंजाबी है । इन क्षेत्रों के लोगों की बोलचाल की भाषा पहाड़ी है और मैदानी लोगों की अपेक्षा उनके आपस में गहरे सम्बन्ध हैं । इसके परिणाम स्वरूप तत्कालीन पंजाब के पहाड़ी क्षेत्र प्रथम नवम्बर, 1966 के दिन हिमाचल प्रदेश में मिला दिये गये ।

नवगठित हिमाचल प्रदेश में मार्च, 1968 में राज्य भाषा संस्थान की स्थापना की गई, जो अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के साथ–साथ पहाड़ी भाषा के विकास की ओर भी ध्यान देता था । 1971 ई0 में हिमाचल प्रदेश विधान सभा ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित किया कि पहाड़ी भाषा के विकास के लिए हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी की स्थापना की जाये । हिमाचल प्रदेश के प्रथम मुख्यमन्त्री डॉ0 यशवन्त सिंह परमार ने 2 अक्तूबर, 1972 को इस अकादमी का विधिवत् उद्घाटन किया, इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य पहाड़ी संस्कृति, कला और भाषा का विकास है ।

अकादमी ने गत वर्षो में पहाड़ी के विकास के लिए बहुत कार्य किया । अकादमी पहाड़ी साहित्य के लिए 'हिम भारती' तथा संस्कृति, साहित्य और कला के विकास के लिए 'सोमसी' पत्रिकाएं प्रकाशित कर रही है । इसके फलस्वरूप अनेक पहाड़ी लेखकों, कवियों एवं कलाकारों को प्रोत्साहन मिला है । पहाड़ी भाषा में 100 से अधिक पुस्तकें गत वर्षो में प्रकाशित हो चुकी हैं । वर्ष 1989 में पहाड़ी–हिन्दी शब्दकोश का प्रकाशन पहाड़ी भाषा के विकास के सन्दर्भ में एक मील पत्थर है ।

पहाड़ी भाषा व लोक संस्कृति पर अनुसंधान के लिए डॉ0 पद्मचन्द कश्यप (कुल्लूई लोक साहित्य), डॉ0 बंशीराम शर्मा (किन्नर लोक साहित्य), डॉ0 नरेन्द्र नाथ उक्खल (सिराजी), डॉ0 गौतम व्यथित (काँगड़ी), डॉ0 कांशीराम (मंडियाली), डॉ0 खुशीराम गौतम (सिरमौरी) को शोध के लिए पी0एच0डी0 की डिग्रियां प्राप्त हो चुकी हैं । इसी तरह अन्य अनेक विद्वान पहाड़ी भाषा और लोक साहित्य पर अनुसंधान कर रहे हैं ।

ग्रियर्सन के समय से ही काँगड़ी, भटियाली, सिरमौरी, बघाटी, क्योंथली, कुल्लूई, मंडियाली, चम्बियाली, कहलूरी, गूजरी आदि बोलियों के नाम उभरे हैं । पहाड़ी के विकास पर किये जा रहे कार्यो के कारण हिन्दी के विकास पर कोई

बाधा नहीं आई है । हिन्दी का विकास कार्य भी साथ- साथ चल रहा है ।

वर्तमान समय में पहाड़ी के वर्तमान लेखकों और कवियों में लालचन्द प्रार्थी, भीमदत्त काले, डॉ० पीयूष गुलेरी, डॉ० प्रत्यूष गुलेरी, पं० भवानीदत्त शास्त्री, खेमराज गुप्त, रत्न सिंह हिमेश, डॉ० अनिल राकेशी, रामदयाल नीरज, मनसाराम अरुण, नरेन्द्र अरूण, डॉ० गौतम व्यथित, जयदेव किरण, काहन सिंह जमाल, सी०आर०बी० ललित, जगदीश शर्मा, भगतराम मुसाफिर, विद्यानन्द सरैक, हरदयाल सिंह चौहान, अश्विनी गर्ग, ओंकार लाल भारद्वाज, संसार चन्द प्रभाकर, देसराज डोगरा, एम०आर० ठाकुर एवं टी०डी०एस० आलोक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं ।

पहाड़ी के विकास का यह संक्षिप्त विवरण किसी भी तरह पूरा नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस भाषा के विकास में अनेक नये आयाम जुड़ रहे हैं । पहाड़ी के विकास को दिशा-निर्देशन देने के लिए कुछ विनम्र सुझाव इस प्रकार हैं :

(क) सारे क्षेत्रों की पहाड़ी बोली के विकास के लिए समान अवसर प्रदान किये जायें ताकि पहाड़ी का विकास सद्भावना के वातावरण में हो सके ।

(ख) पहाड़ी भाषा के विकास के लिए सुनियोजित कार्यक्रम बनाया जाये ।

पहाड़ी का भविष्य गुणात्मक विकास एवं दूरदर्शी नीतियों पर निर्भर करता है । इसके विकास से शासक एवं शासित के बीच की दूरी कम होगी और पारस्परिक सद्भावना में वृद्धि होगी ।

परिचर्चा

श्री देसराज डोगरा का मत था कि पहाड़ी भाषा के संतुलित विकास के लिए प्रत्येक जनपद के साहित्यकारों को अधिक से अधिक साहित्य-सृजन करना चाहिए । डॉ० कृष्ण कुमार गोस्वामी का कथन था कि लेखक ने कुछ जनगणना रिपोर्टों की ओर संकेत किया है परन्तु सामग्री के विवेचन की अधिक आवश्यकता अनुभव हो रही है । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा विभाग ने निर्णय लिया है कि प्रारम्भिक कक्षाओं में स्थानीय बोलियों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने से भाव-सम्प्रेषण की कठिनाई दूर हो जायेगी । परन्तु इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से कार्य करने की आवश्यकता है ।

पहाड़ी के विकास से हिन्दी समृद्ध होगी और जिस प्रकार ब्रज, अवधी, राजस्थानी, डोगरी, पंजाबी, हरियाणवी आदि भाषाओं ने अपने क्षेत्रों में विकसित होकर हिन्दी को आघात नहीं पहुंचाया है, वही स्थिति पहाड़ी की भी होगी ।

प्राचीन पहाड़ी गद्य साहित्य

डा. प्रत्यूष गुलेरी

हिमाचल प्रदेश में व्यवहृत पहाड़ी को आर्य भाषा परिवार की पश्चिमी पहाड़ी उपशाखा के रूप में जाना जाता रहा है । डॉ. ग्रियर्सन द्वारा भारतीय भाषाओं का वर्गीकरण करते हुए 'पहाड़ी' नाम किसी भाषा विशेष के लिए न देकर भाषा समूह को दिया गया प्रतीत होता है । उन्होंने पहाड़ी को आगे चल कर पूर्वी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी नाम से अभिहित किया है । पूर्वी पहाड़ी नेपाली के रूप में तथा मध्य पहाड़ी गढ़वाली और कुमाऊनी के रूप में प्रसिद्ध हो निकली हैं जबकि लोग पश्चिमी पहाड़ी को हिमाचली अथवा सिर्फ पहाड़ी के नाम से बोलने और जानने लगे हैं । हमारा अभिप्राय यहां पहाड़ी भाषा के स्वरूप निर्धारण को विचारने का नहीं है अपितु पहाड़ी के प्राचीन उपलब्ध गद्य साहित्य के रूपों का परिचय देना है ।

यह सुखद आश्चर्य है कि पहाड़ी भाषा के पुराने पद्य रूपों के मुकाबले में गद्य का व्यवहार बहुत पहले हो चुका था । पहाड़ी भाषा के भीतरी भू भाग और बाहरी भाग में गद्य बोलचाल में खूब प्रयोग होता रहा है । जहां तक लिखित रूप का सम्बन्ध है, यह राजाओं के ज़माने में वही-खातों, हिसाब-किताब, लेन-देन, बिरादरी के फैसलों, दान, ज़मीन के पुराने पट्टों, पत्र व्यवहार, वैद्यक ग्रन्थों, ब्रजभाषा और संस्कृत की पुस्तकों के गद्य अनुवाद के रूप में प्रचलित रहा है । पहाड़ी भाषा के प्राचीन पहाड़ी गद्य रूपों पर डॉ. बंशीराम शर्मा, डॉ. पीयूष गुलेरी, डॉ. शमी शर्मा, डॉ. रीता शर्मा, डॉ. श्याम लाल डोगरा, डॉ. वेद प्रकाश अग्नि और सुदर्शन वशिष्ठ ने भी इससे पूर्व संक्षेप में संकेत दिए हैं । इस लेख के लेखक ने अकादमी द्वारा प्रकाशित पहाड़ी पत्रिका 'हिमभारती' के मार्च, 1975 के अंक में 'कांगड़िया दे पुराणे पद्य कनैं गद्य रूप' लेख लिख कर इस ओर अधिक खोज करने की आवश्यकता पर बल दिया था । इन पंक्तियों के लेखक ने पिछले 25 वर्षों की अवधि के खोजबीन के परिणाम स्वरूप 18 वीं शताब्दी के तीन कवि कांशीराम, रुद्रदत्त और भ्यानी दास के कवित्त और सवैया छन्द पुराने हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों में खोज निकाले हैं जिनका उल्लेख समय-समय पर प्रकाशित लेखों में हो

चुका है । इनमें दो कवि कांगड़ा के थे जबकि भ्यानी दास के छन्द मुझे भूरिसिंह संग्रहालय चम्बा में सुरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थों से उपलब्ध हुए हैं । डॉ. शमी शर्मा ने भी इससे पहले कांगड़ी के पुराने गद्य रूपों को 'हिमभारती' के माध्यम से पाठकों को सुलभ कराया है ।

जिस तरह से 'कांगड़ा कलम' की जन्म दातृ गुलेर रियासत रही है वैसे ही पहाड़ी भाषा के गद्य और पद्य रूपों को प्राचीन काल से प्रयोग में लाने का श्रेय भी इसे दिया जाना अनुपयुक्त नहीं है । पहाड़ी रियासतों में और भी विद्वान् खोज करें तो यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस सम्बन्ध में कुछ नया सामने आ सकेगा । यही सामग्री पहाड़ी भाषा के इतिहास लेखन का अंग बन सकती है ।

पहाड़ी का तत्कालीन विशुद्ध रूप हमें सम्वत् 1635 वि. में गुलेर के राजा रूपचंद के ज़मीन के मुआफी पट्टा में उपलब्ध हुआ है । रैणा दामोदर के वंशजों के घर से प्राप्त पट्टे में प्रयुक्त पहाड़ी का गद्य रूप इस प्रकार है : *''सम्वत् 1635 वि. श्री राजे रूपचंद दामोदर की दीती जमीन जमूले 181 कुह्मा तहसील जेल वलासपुर, सोथल गुलेर पुराणे ।''* इसी तरह का एक पट्टा 1815 वि. का इस तरह का है: *''जसोल राजा श्री जगरूप सिंह नैं रैणे क्रीश्ने की सम्वत् 1815 जमीं माफी 15 कुह्मा धरणीधर माफ़ वृजभूषण ठेका ।''* जमीन के पट्टों की भांति ही संकल्प उगाही के पन्नों में पहाड़ी गद्य के अनेक उदाहरण उपलब्ध होते हैं । देवनागरी लिपि के साथ-साथ टॉकरी में भी पहाड़ी लिखी गई है । सम्वत् 1890 वि. के उगाही वचन पत्र की पहाड़ी गद्य शब्दावली का रूप भी द्रष्टव्य है: *''सम्वत 1890 भाद्रपद प्रविष्टे 14 भाद्रपद शुद्धि लिखित प्रोहित छजूराम पहाडू भटे दी वारसी सरकारा लिषि तिस मापक प्रोहिते छजुए दि उगाहि सहि शुभं ।''* इस वचन पत्र में दो नमूने और भी पठनीय हैं, *'उगाहि मिश्र चंद्र उपरले लिखे मापक: उगाहि पाधा जुअहर उपरले लिखे मापक पहाड़ सिहें जोगी बालक नाथ बसाया था अपणी तिसा जगा सणे माल की राय होंस राय दी इसदा - कोई झगड़ा करे से सरकारा पंचां दा झूठा जाय शीक्षा रहि-दषणु दी सही संवत् 90 भादरू प्र. 25 लिषतं पटवारी भोज की भीख्म चौधरी हरलाल दी जुवानी लिषि दित्ता देहल कने विरत भटेहोसे की सेहरे भोसों विच सभना कने ललुए वसुतीरामे- बैठे रजावंदी सभना दी विशनु प्रीत लिषि दिता इस लिषे दा सभना धर्म पालना शुभ उगाही श्री जालपा जी ।'* यह तो रूप था वचन पत्रों का । इसी तरह से यह भी निर्विवाद है कि पहाड़ी चिट्ठी पत्री की भाषा भी रही है । अंग्रेज़ों के आने के बाद पहाड़ी गद्य को धक्का पहुंचा परन्तु स्वतंत्रता से पूर्व कुछ प्रयत्न इस दिशा में हुए । पत्र व्यवहार में व्यवहृत पहाड़ी का विशुद्ध रूप विकसित एवं परिनिष्ठित है । सम्वत् 1800 वि. में

महाकवि वृजराज के दादा भीषा राय को लिखे पहाड़ी के पत्र को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा । इसके कुछ अंश इस प्रकार हैं:- *''श्री राम जी श्री महा श्री सर्वोपमा योग्य राए साहवे भीषे भी तथा नंदुए हसे ज्योति जयदेव रूद्रे जी तथा हीर जातके सभ नीं श्रीदेव- से चाकरे साहवे जी देव सदि से कुंदो तथा नागरे होर जातकें सभं नी पैरे पौणा सुम्हालेआ वहीत करी उप्रांत इत्थे साहवे जी दे धर्म करी सभ सुष हे तुसें जी की श्री लक्ष्मी नारायण जी ददा सलामती बड़े आनंदे विच रखो । होर जी आदमी साहवे दा पुजा कल वा वीचार मलूम होआ तां जी इत्थे असें पंडत अपणे पुच्छे हन से गलांदे जे इथे वशारवे जेठे दे विवाह असाड़िए पत्रीए लगां नहीं लाईआं- इथी विवाह नहिं वैशारव जेठ महिनें मुर्वादित्ये है वैशारव प्र. 21 वृहस्पति दा अस्त हे उत गलाइ इथे साड़ी पत्री नहिं जुड़दा होर जी जातकें दी कुंभ रास हे धनिष्ट नक्षत्रै दे तृतीय दा जन्म है -*

संवत् 3 विक्रमे 1884 शके 1749 फगुण प्र. 5 धनिष्टा तृतीय चर्ण एह् जातके दा जन्म हे - तांजी कनें जन्मे दा शनि रहुंदा हे सो विवाहे की ठाकरा कने उन वर्ष है अगें साहबां दी मरजी- होर सहवां पंडत अपणा वि पुच्छणा पुच्छ करी जे चंगी सिष्य होए से भी कि लिखणी अहुं चाकर हां असाड़े ठाकदे हे - एहें विवाह नहिं गलांदे होर अरजां आदमी जवानी गलांग- अहु तुसे थोआ वी मता ताटला हां होआ दा पर जी शास्त्रे दे अधीन हे चैत्र प्र. 23 लिखेआ शुभंभू । होर जी सहावे की फकत उसे लिखेया से प्रोहित वसार गेआ था । असें मघेर दी 14 कनैं 25 दी एह् लगां लिखि भेजी एथी से काकल साहवे की पूजा नहिं तां जी हुण से पंडित अपणा पुच्छी करी जे सीष्य होए से लिखणी अहुं बाहरा नहिं होर गलां जवानी गलांग ।''

एक अन्य पत्र का विवरण भी प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा । यह पत्र भी गुलेर के बृजभाषी कवि श्री भीखा राम को लिखा गया है । इसकी लिखावट और विषय एकदम स्पष्ट और सुथरा गद्य रूप देखते बनता है । पत्र इस तरह से लिखा गया है, *''उों श्री महासुन्दरें देव सदीसें भीषे असीरवचन सुह्भालेंया तुध की श्री जगतंवा जी बड़े अनंदे विच रषी अगें कागद तेरा पुजा हकीकत मलूम होई अगें जी भीआले नन्दपुर पण देणा गुहराई करी असां उपर मेंहजर कीता उसे घर बैठे थे से भाटी रेगणे कनै चौधरिए कुछ थे तीन्हे झूठे कीते भाटीया बषा से तुसें हुण घर ओआ तां गल अछी हे जी असें वी घर बैठे हां से तुसें घर पुजा तां अछी हे जी- होर सजणा मीतरां पैरी पौणा- असीर वचन गलाणा भादरू प्र. 11 लीख्या शुभ । शुभ ।। ''* एक और पत्र भीखम राय- भीखा को पहाड़ी में लिखा उपलब्ध हुआ है । इन पत्रों की पहाड़ी भाषा के गद्य का प्रचलित पुराना स्वरूप निःसन्देह स्तुत्य

है । वर्तमान में इसके कुछ शब्द मिटते प्रतीत हो रहे हैं । 18 वीं शताब्दी में ये पहाड़ी शब्द लिखित रूप में खूब प्रचलित रहे हैं । पुराने कागज़ पर लिखी चिट्ठी सुधी विद्वानों की जानकारी के लिए उपलब्ध है, *''श्री रामः श्री महाराए भिषमा होरी जि देवस्या प्रो. मिंगी ए पौएं पओणा तुहगलायां- उप्रांत वटित एह् जे आसें श्री ईशवरादि कीया ते आनंद हे साहेवा की श्री ईश्वर जी आनन्द रष जी सनमेना संतोष होए उप्रांत अरज एह जे आषाढ़ प्र. 14 स्वाति दशवोष सुध डी मेष राशि जो विशेष ही जी हमारे देषणे मंझ एहो ही आगे साहवां वि एथि पुछी लाए-लहज विशेष जुड़े भर खरी पर हमारी नजरी तां होर कोए आआदि नहीं जी तिसते अरज एही जसे मेरी तसीर साहेवा जो सभ मलूम ही जी तिसते भारा त्वारने रे कम हे जीहां जाणना तिहां हमारे सीरा रा बोझ त्वारणे लहाणा-होर व्याहा री गल अही पर लग्न मात्र लयणे आसे ओर ते हेत करन ऐह अरज गंगा रामा री चरना ते ही जी वहोत क्या लिखणा साहवे जाणकार आं मुहे जी. सं. 20 रे ज्येष्टे प्र. 29 लीख्या शुभ श्री रामः श्री । ''*

इस पत्र के लिखने का स्थान मालूम नहीं, परन्तु भाषा की रूप रचना से इसका मंडी से लिखा होना प्रतीत होता है । गुलेर के भीखा राय के सुपुत्र हिन्दी के महाकवि बृजराज का एक विवाह मंडी में हुआ बताते हैं । संभवतः यह पत्र उसी संदर्भ में उनके पिता भीखाराय को लिखा गया है । मंडी में 'रा', 'रे', 'री' और 'मंझ' आदि शब्दों का प्रयोग अधिकांशतः किया जाता है । इससे एक बात स्पष्ट है कि इन रियासतों में पत्र व्यवहार की भाषा पहाड़ी थी । यह पहाड़ी टॉकरी में न होकर देवनागरी लिपि में थी । इन पत्रों से एक और विश्वास भी दृढ़ होता है कि ज्योतिष विद्या पर लोगों की अटूट आस्था थी । *जी देव, पैरी पौणा* और *मत्था टेकणा* जैसे सम्बोधनों का भी प्रचलन था ।

अब उस लिखित का उल्लेख भी उपयुक्त होगा जिसमें गुलेर की ब्राह्मण बिरादरी ने रामदयाल को पहले बिरादरी से वहिष्कृत कर दिया और बाद में पंच फैसले के मुताबिक उसे फिर से अपने साथ शामिल कर लिया । इस फैसले पर पंचों के दस्तखत तो हैं ही, इसके साथ गुलेर के तत्कालीन राजा रघुनाथ सिंह ने अंग्रेज़ी में हस्ताक्षरों से इसे सत्यापित अथवा इसकी पुष्टि भी की है । इस पर लेखक के दादा रामलाल के हस्ताक्षर भी हैं । राजा रघुनाथ सिंह और राजपुरोहित रामलाल समकालीन थे । फैसले का लिखित रूप इस प्रकार से है, *''श्री Raghu Nath Singh श्री महां श्री महाराजे श्री राजा धिराजे श्री परम भट्टार्के श्री राजा साहिबे रघुनाथ सिंह बचने श्री प्रोते रामलाल तथा मोतिरामे तथा स्वदेश स्थित महाराज सुत श्री चन्द्रधर जी गोवर्धन सुदामें गुरभेज आत्मा राम सांई दित्ते नोलुए*

परमानन्दे वदरिए आ. मेघुए तथा लषुए डोगरे साहे मईए तथा नन्दरामे मुनसीए य. त. नंहुए तथा सोहणुए विधुर दीया ब्राहमण दिसें पैरे पौणा सहभालया अगें जी वरादरिया फेंसला कीता तिस मुज़व असां भी फेंसला करी के रलाई है चौधरी राम दयाल तथा चारी धनैया–हुण खरी गल होई गई असां बड़े राजी होए इस गला होणे ते बषेड़े मुकी जाणे ते रामदयाल नैं यथापूर्व वर्तण करणा चाहि और घनैह की जाति नैं आचारी आपणे मैं कोई ईर्व्य नहि है ना करणा मुनासव है – असां वरादरिया दी आज्ञा मनजूर और वरादरिया कन्नै हां सम्वत् 1960 ज्येष्ठ प्र. 13. साड़यां वर्षा सभी तहां से माफी दित्ती गई है विना मुरूंआं दीया टोलीया ते वोह संढ है । शुभंभू'' Raghu Nath Singh । इस फैसले में गुलेर रियासत के राज पुरोहित श्री रामलाल और उनके चचेरे भाई हिन्दी के कथाकार श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का ज़िक भी है । भले ही गुलेरी जयपुर अथवा काशी में रहते रहे परन्तु बिरादरी के फैसलों में उनका उल्लेख बराबर होता रहा । इसका मतलब यही हुआ कि गुलेरी जी गांव के साथ पूरी तरह जुड़े हुए थे । वे गांव की हर खबर से भी परिचित रहते थे ।

गुलेर राज दरबार के हिन्दी के महाकवि बृजराज को भी जान पहचान के लोगों के पहाड़ी में कई पत्र लिखे उपलब्ध हुए हैं । सम्वत् 1962 वि. की लिखी चिट्ठी का गद्य रूप इस तरह से है, *''उों श्री महां श्री माईए राए वृजलाले जी की पाधे सरेध तथा लंवरे घौंडलुए नमस्कार सहभालणी अगें जी वेलु बड़ा कसरी है हौल काल्ही ताड़ता ताप भुष नही सर षड़ोटा नहीं इस करी के साभा पास आदमी भेज्या हे साभा जरूर करी ईसकी दोषी जा कनें कोई नुकसा करी जा दसी जा जरूर करी वोहती अरज नहीं लीषी । शुभ 1962 क. प्र. 4''* बृजराज राजवैद्य भी थे, इसीलिए कुछ पत्र उन्हें वैद्यक सम्बन्धी लिखे उपलब्ध हुए हैं । सम्वत् 1903–1976 वि. तक बृजराज का समय है । उस समयावधि के दो और पहाड़ी में लिखे पत्रों का गद्य रूप भी देखने और पढ़ने योग्य है – *''ओम् स्वस्ति श्री सर्वोपमायोग्य सकल गुण निधान विराजमानेषु श्री वृजलालेषु मन्मिश्र अच्छर रामस्य न तयस्संत्वतित राम् ।। अत्र शमस्ति तत्र शं वांछामि ।। अग्गे जी वृतान्त एह् है वरखुदार गोकल चन्द का विवाह है मार्ग शिर 27 प्रविष्टे को है । भाजी भेजी दातारपुर के राह । जुवाहर को पैरी पौना कहना और गोकल के वास्तु दुशाला लई आना जरूर । मेहरदास अच्छर दास । विलासपुर ।।''* एक पत्र हरिपुर (कांगड़ा) के धर्नीधर रैणे का लिखा इस प्रकार से है : *''स्वस्ति श्री पर्म सेवकोदार बृजलाल जी जोग्य धर्नीध रें असीसा सुहमाली अगें जी तुसां पत्रवाची निदानौषधी लई पुजणा सतावी जुवानी श्री 3 मियां होरी अर्ज़ कर्घो जी बहुनाल वे. प्र. । शुभ''* महाकवि बृजराज जहां राज

कवि राजवैद्य थे वहीं साथ–साथ वे राज ज्योतिषी भी प्रसिद्ध थे । कई पत्रों में उन से प्रश्न लगाने का भी अनुरोध है । एक पत्र देखें – *''श्री महांश्री 4 भाई बृजलाल जी मेरा धीआन साभां दे चर्णावीच हे जी मैने आपूं ई औणा था में वोहोत मांदगी पाई ऊब अछा जरा होया हां में जातक भेजे ऊहे इस कनें उतर परसन देई भेजा । ''*एक कार्ड पालमपुर से पोस्ट किया गया है जिस पर 31 दिसम्बर, सन् 1893 ई0 की मुहर लगी है । इसमें कुछ बातें टॉकरी में लिखी गई हैं । पांच पंक्तियां देवनागरी पहाड़ी में लिखी इस तरह से हैं –

''खाजाने होआल दारे जी योग्य कांठु दि जैदेव वाचणी सहभालणी होर आपणा राजी खुसिदा भी लीषी भेजणा और जीस वाकत चीठि पौचे आवे उसी वक्त मेनो लीखि भेजणा इस वाकत छुटी तां नई आयेआ जे जनेऊ फौगणे जुड़ी जावै कनैं टिपडा एणी गेया हो तें भेजी देणा जेठे वडके देणा ।'' उपर्युक्त पत्र से लगता है कि लिखने वाला बाहर कहीं नौकरी करता है । इसका आशय यह हुआ कि फौज आदि में भर्ती लोग पत्र व्यवहार में पहाड़ी का ही प्रयोग करते रहे हैं ।

सम्वत् 1951 वि. में गुलेर के राजा रघुनाथ सिंह का विवाह रायपुर में हुआ । जगह–जगह से आए भट्टों को जो वख्शीशें दी गई उनका विवरण पहाड़ी में दर्ज है । इस शादी के अवसर पर गुलेर, परागपुर, रायपुर, सिरमौर, डालूगढ़ी, चार गाऊ और हंगोली के भट्ट कवियों के आने का ज़िक्र है । इस लिखित में पहाड़ी का सुधरा रूप सामने आया है । विवरण इस तरह से है, *''कागद रंजां बंडां दा – स्वस्ति श्री गणेशाय नमः ।। शुभ सम्वत् 1951 आषाढ़ प्रवि. 29 राजा धिराजे श्री महाराजे श्री रघुनाथ सिंहे जी दे व्याहें की राणी राएपुरी भट्टां की रंज रूपइया टो स् बगसेया व्योरा रोक 40/– घोड़ा सब्जा । मूल 80/– दुशाला । मूल 40/– साल 20/– चोगा । मूल 15/– थान खासे दे दो मूल 4/– पग्गां दो मूल 1/– जोड़ सब 200/– ''* इस में दो सौ रूपये का विवरण भी दिया है । इसमें गुलेर के राजकवि बृजराज को रोक रूपये 13/– दुशाला । थान आधा पग्गां दिखाई गई हैं । दुशाला बृजराज को ही दिया गया है । जन्म कुंडलियों, वर्षफलों में भी पहाड़ी ही प्रयुक्त होती रही है । बृजराज के एक वर्षफल का विवरण भी द्रष्टव्य है – *''दान जन्मे दिने की कर्णा गढ़ी 9 भोजन, दुधि भत मिठा भत विरंज, मखीर बड़े मंथा दाले दाल छोले, आढ़ी सेर हल्दी खंड । वसंती कपड़ा गज–2 प्रति सुवर्ण दी रतियां 2 तुलादान गोदान ।''* यह नमूना है सम्वत् 1940 वि. का जब बृजराज 38 वें वर्ष में प्रवेश किए थे । साहुकारों की बहियों–खातों और अष्टामों में भी पहाड़ी का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । सम्वत् 1984–88 के बीच

के कुछ ऐसे कागज़ों में प्रयोग हरसर में किया में किया गया है । एक उदाहरण देखें, *''सम्वत् 1988 जेठ प्र. 29 खात लीखिया परमाण धनक नाम वरामण नानकुसहुकार उधार नेक नाम लुहार चौधरी तथा जगता बेटे हीरे दे वासी हरसर टीका घाड़ा विच बसदे सेही हुटार रोक रूपीया चार सौ आखर रूपीया 400/- कोतियां टु पर लीखीण हसांवे पीशले वेहिया टुबुऐ दा बटली लीखीया रेणा रूपेया दा वीया - ज दर डेड रूपीया सैंकड़े परती कीता वीया ज महीनीयां छीयां परती परती कीता पुरा करी लैणा बरामणें नानकुऐं गीणी लैण चौधरीऐ जगतैं वेऐ उजर भरी देणा जो आकत दी गेऐ तीसदीं रसीद लैगे ।''* इस गद्य लेख का स्वरूप इतना अच्छा तो नहीं है परन्तु इससे यह पता चलता है कि पहाड़ी का प्रयोग दैनिक लेन देन में किस तरह प्रचलित था ।

कुछ वैद्यक ग्रंथ पहाड़ी में लिखे गए हैं । बृजराज कवि के संग्रहालय से प्राप्त एक वैद्यक ग्रंथ के कुछ पृष्ठ उपलब्ध हुए हैं इनमें पहाड़ी गद्य का सुदृढ़ प्रयोग देखने को मिला है । कुछेक नमूने देखें - *''अथ नव ज्वर का रसः जस्त भस्म करि सि. 9, लोहे दिया कड़छिया विच पाई गो का मषण सिः 9 पाई अगी उप्र रखणा से मषण जले तां होर पाणां इते विधि पुठ 21 देणे भीमा रति 2 मिश्रीआ कनें देवे सर्व ज्वर नस्यति ।'' ''अथ सन्नपात सीतांग को अनंद भैरव रसः संगर्फ सि. 9, गंधक 9 तामे ज्वर 9, सोहागा । त्रिकुटा 3, विष । धुतूरे दे विज । महीन करि विजया दे रसे विच बरल पे केरे गोली चणे प्रमाण दिने विच दो वगत बाणीआं ।। ''* इसी ग्रंथ के द्वितीय पृष्ठ के अनुमान भी पढ़ने योग्य हैं - *''वारीं गुत्रे दहीये अके दे दुध विच पुठ देई भी नक छिकाणी पाओ 9 पिडी विच रूपेगा रषी लेष करी गज पुठ आगा देई मात्रा चाउल भर अनोपान यथायोग देणा बल करे ।''* वैद्यक ग्रन्थों में पहाड़ी के प्रयोग के अलावा यंत्रावलियों में भी पहाड़ी भाषा के प्रयोग किए जाने के ठोस प्रमाण उपलब्ध हुए हैं । ये यंत्रावलियां गोरखनाथ के समय की हैं । इन्हें देखने पर प्रतीत होता है कि गद्य गोरखनाथ के समय में भी प्रचलित था। यंत्रावलियों में यंत्रों के साथ संस्कृत और फिर उसका अनुवाद पहाड़ी में किया गया है । यहां दो पृष्ठों का ही उल्लेख किया जा रहा है । एक दुर्गा यंत्र, उच्चाटन, मोहन, आकर्षण, स्तम्भन, मारण और वस्य यंत्रों का उल्लेख किया जा रहा है । मूल पृष्ठ लेख के अंत में जिज्ञासुओं की जानकारी के लिए उपलब्ध कर दिए गए हैं । नवदुर्गा यंत्र के नीचे संस्कृत में लिखा है, *'' इदं यंत्र अर्क पत्रों परिवि लिख्यतैते निक्षितेत् तस्करैण हृतं वस्तुल भेक्षी घ्रंन संसयः ।।''* इसके साथ देवदत्त यंत्र इस तरह है

8	48	6
12	24 36	
42	देवदत्त 30	

या वासित 1, याजवरेल 2, याताहिर 3, या इसमाइल 4, या सलाम 5, या मिमायल 6, या इस राफील 7, या लुकुम 8, इदंलंधिपायं यंत्र येहे अठ यंत्र के उपा लिषणे । ऐहे यंत्र नदी के टुमेले रूक्के 21 इक्कि प्रत्यह बहाणे कणका दे आदे दे पोलुए गुन्ही करी लपेटी करी वहाहे । इसी तरह उच्चाटन आकर्षण, हुष्ट दुष स्तम्भ यंत्र के नीचे पहाड़ी गद्य का रूप इस तरह है *''ऐह यंत्र हरताल धतुरे दा रस मशाणकर इकि ठाहरी इटा दे टुकड़ें उपर लिषणा लिषि करी जिमी उपर विच दवणा उपर लतां दी वाहणी, सिधी उपर ।''*

अब मैं उस किताब का ज़िक्र करना चाहता हूं जिसका पहाड़ी गद्य में अनुवाद बृजराज कवि के पिता श्री रुद्रदत्त के हाथों से हुआ है । रुद्रदत्त कवि के लिखे दो पहाड़ी सवैए पहले उपलब्ध हो चुके थे । कवि रुद्रदत्त ने रीतिकाल के कवि केशव की रसिक प्रिया का पहाड़ी अनुवाद किया है । इसके कुछेक पृष्ठ ही उपलब्ध हुए हैं परन्तु मज़े की बात यह है कि इसका अनुवाद पहाड़ी कविता में न होकर पहाड़ी गद्य में है । पहले केशव की रसिक प्रिया का छन्द है और उसके नीचे पहाड़ी अर्थ । इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि सम्वत् 1931 वि. के पहले भी पहाड़ी में हिन्दी ग्रन्थों के पहाड़ी अर्थ और अनुवाद की आवश्यकता समझी गई थी । पहला पृष्ठ इस प्रकार है :

मू.   श्री वृषभान कुमारि हेतु श्रींगार रूप भय ।
वास हास रस हरें मततु बंधन करूण मय ।।
केशी प्रति अति रौद्र वीरू मान्यो वत्सासुर ।
भय दावानल दान पियो वीयतसब की उर ।।
अति अद्‌भुत वंचि विरंचि मति शांत संतत सोविचित ।
कहि केसब से वह रसिक जन नवरस मय बृजराज नित ।।

अ.   श्री वृषभान कुमारि जे अहे राधिका तिस दे निमित नवजे शृंगार अहे न तिवन्हा रूपा कि धारदा अहे ।। गोपियां दे जे रूप दे हरे से करूणामय रूप होआ।

माता जे अहे जसोधा तिस वाला अपणा आप वन्हावए भी करूणा रस होंआ । केशी नामो दैत्य घोड़ दा नू दैत्य मारि अप एह वीररस होआ । वन विषे जे दावानल एह वीयत रस होआ । विरंचि जे ब्रहमा अहे तिनि वछूह हेरे थे तां श्री कृश्से होर तिदे हे वछ्डु की तक करि ब्रहमा वुध हरि । एह् अद्भुत रस होआ । केशव कवि अर्षटा अहे जे बहुत रसिक जन इत्न्हा नव रस विषें श्री कृष्णा सदा रेहंदा अहे ।

एक दोहा छन्द और देखें :-

अपने – अपने धरम तहां, सवे सदा सुषकारी ।
जासों देश विदेशा के, सब हरे नृप हारी ।।

अर्थ :

जिस नगरे विषैं अपणे अपणे धर्मे कि सेवदे से धरम तित्न्हां की सुरवदाई होंदा अहे । जिस देसे दे राजे देश विदेशां दे हारी रेहे अहे न ।

एक सवैया छन्द का अनुवाद भी देखने योग्य है :

मू. केशव बूढि रहयो तुमही सों कीधों भय कहू के भीत भयोहे ।
वेच्यो हे कान्ह के हाथ की नाव कीधों तुम कान्ह साथ दयो हे ।।
मेरी सों मो सहंमानहु बेगहि इहां मनु नाहि कहां पठायो हे ।
साचि वाहो हरि हायो हे कान्ह सों काहु हन्यो किहि रायो गयो है ।

अर्थ

केशव कवि प्रछन्न वियोगे की वरदना अहे श्री कृष्णा रूणी रेह: अहे राधिका पासा की कुसे कुछ हरि करी छपि बैठा अहे कि कुसे बैठा अहे कि कुसे दे हथे वेच्चा अहे कि कुसे कनें साथा भेज्या अहे राधिका ने सहेलि ऊषदी अहे मेरे सोह होन उताउली मेह कने मन तेरा मन रूप जे श्री कृष्णा अहे से इथे नहिं कुथे भेज्य अहे . . . सच गला कुसे कुछ श्री कृष्णा हान्या अहे केंह कि कुने हरी नीता ऊहे की तुध में लकाई करी गेया अहे ।

इसी तरह से केशव की कवि प्रिया का भी पहाड़ी में अनुवाद प्राप्त होना स्वयं में एक उपलब्धि है । यद्यपि इसका रूप उस स्तर तक ही शुद्ध है जितना रसिक प्रिया में देखने को मिला है । कवि प्रिया के हस्तलिखित ग्रन्थ के पृष्ठ 121 पर इस तरह की पहाड़ी का रूप दर्ज है :

''हे कान्ह एह नायका तारयो साथ तारा सी ही लक्षित होंदी हे और चन्द्रकला सी हे केशी नाही चंद्रमे दी कलां । . . . चित का केशव केह दा हे परमानन्द की जु आनंद शक्ति सोई हे धरणी बीच । इहि विधवे समस्त जो हे कवि अंग अंग जु हे जिसकी निवटु जो छवि तिस को वरनहुं । केशव ने भी यथामति वरनि कही प्रशंग पाई के । इति श्री कवि प्रिया पंचदश प्रकरणं ।।15।। हे सजनी तू सज क्या इलाजकर एह मोर जो हे मयूर सो सभनि रदनि निरषि हरषि क्या हर्ष युक्त होए । चित हमारा था सो भी इतन क्या इहां न रेहया भर्ता रे प्रतिज्ञा ओर एह बात कसो भी यथा पीउ पीउ उही रटत हे इसते ए भी पिउ की ओर ही देषत है। '' 135 पृष्ठ पर लिखा भी इस तरह का है - *नायका दी उक्ति नाथके कनें हे मीत तुम्हें सवै जाम जगे सो सब तुसा रा मत मेयमया क्या समझया* । प्रथम पृष्ठ का रूप देखें । इसमें पहले अनुवाद दे रखा है । उसके बाद मूल पाठ उद्धृत है :

उों श्री गणेशाय नमः ।।

गज मुष जेहे गणेशे से आपणे उपर जे सन्मुष क्या प्रशन्न होए तां विघं जे हे से विमुख क्या जे पराउं मुख होई जान । क्यों ज्यों प्रयाग मग प्रति कीसी काजे पाव से चले तिस के पाप पहार जे हे नसे विलारू क्या विलीन होन त्यौं ।

मू. गज मुख सनमुख होत ही विघन विमुख है जात ।
ज्यौं पग परत प्रयागमग पाप पहार वि लात ।।

इस तरह से उपर्युक्त संदर्भो से स्पष्ट है कि दो सौ साल पहले चिट्ठी पत्रों, खाते-बेहियों, कोर्ट कचहरी के अष्टाम पत्रों, जन्म कुंडलियों, वर्षफलों, विरादरी के फैसलों तथा जंत्र मंत्र विद्या में पहाड़ी गद्य का पर्याप्त प्रयोग होता रहा है । यह अलग बात है कि अंग्रेज़ी राज के आने से इसके प्रचलन और प्रयोग को धक्का पहुंचा । प्रदेश के सभी कोनों में अगर खोज कार्य किया जाए तो पहाड़ी का विपुल साहित्य (पद्य और गद्य दोनों में) प्रकाश में आने की पूरी सम्भावना है । आरम्भ में टॉकरी में पहाड़ी भाषा-लेखन के प्रचलन की प्रामाणिक सामग्री प्राचीन पाण्डु लिपियों में सुरक्षित है । इसका अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होगा । इन महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियों तथा अन्य सामग्री का संरक्षण किया जाना चाहिए ।

परिचर्चा :

पत्र पर परिचर्चा में श्री देसराज डोगरा ने कहा कि पहाड़ी का साहित्य 18वीं-19वीं

शताब्दी से पहले भी लिखा जाता रहा है परन्तु पत्र में इस अवधि से पूर्व का उल्लेख नहीं किया गया । उनका मत था कि पहाड़ी को भाषा के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि इस भाषा में पर्याप्त प्राचीन काल से रचनाएं सृजित हुई हैं । पट्टों को साहित्य के इतिहास में गिना जा सकता है परन्तु वे साहित्य की विधा नहीं हैं । इस प्रकार की कृतियां समग्र प्रदेश में बिखरी पड़ी हैं। उनका प्रयोग पहाड़ी भाषा के इतिहास को स्पष्ट करने के लिए किया जाना चाहिए । डॉ. बंशीराम शर्मा का सुझाव था कि पहाड़ी भाषा के इतिहास का क्रमिक अध्ययन होना चाहिए और काल-विभाजन करके रचनाओं का उल्लेख किया जाना चाहिए । । डॉ. हरिराम जसटा का सुझाव था कि पत्र में कांगड़ी के अतिरिक्त अन्य उदाहरण नहीं हैं, अत: पत्र का शीर्षक 'कांगड़ी के सन्दर्भ में' होना चाहिए था । पहाड़ी भाषा के विभिन्न रूपों में एकता सन्दर्भित करने के लिए हमें प्राचीन अभिलेखों का निष्पक्ष अध्ययन करना चाहिए । डॉ. खेलचन्द आनन्द का विचार था कि पहाड़ी में गद्य रचना पहले हुई और पद्य बाद में लिखा गया, यह बहुत ही सुखद संयोग है । चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का उल्लेख पत्र में किया गया, शायद उनके सम्बन्धों को मुखरित करने के उद्देश्य से ऐसा किया गया । डॉ. जे. सी. शर्मा का सुझाव था कि कांगड़ी के विवेचित स्वरूपों का वर्तमान प्रचलित स्वरूप के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाता तो भाषा सम्बन्धी अध्ययन भी सम्मिलित रहता । डॉ. डी. पी. पटनायक ने सुझाव दिया कि पहाड़ी भाषा के प्राचीन लिखित रूपों में 'भ व 'ध' को 'प' व 'त' पढ़ा गया तथा 'ष' 'ख' के रूप में प्रयुक्त होने लगा, इस प्रकार के परिवर्तन तथा विकास के सम्बन्ध में भी विचार होना चाहिए । इससे पहाड़ी भाषा की ध्वनियों तथा उच्चारण सम्बन्धी परिवर्तनों पर सोदाहरण विवेचन सम्भव हो सकेगा ।

पहाड़ी चित्रकला : पहाड़ी भाषा के संदर्भ में

डा. विश्वचन्द्र ओहरी

उत्तर पश्चिमी हिमालय के आँचल में बसी कई पहाड़ी रियासतों में सतरहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य एक प्रकार की लघु चित्र शैली पनपी जो अपनी विशिष्टताओं के कारण विश्व भर में प्रसिद्ध है । ये रियासतें प्राय: दुर्गम क्षेत्रों में अवस्थित थीं और इनके संसाधन कम थे । इन कारणों से यह क्षेत्र विदेशी आक्रमणकारियों के लिए आकर्षक न थे । फिर भी उन छोटी-छोटी रियासतों में सतरहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी में रहे राजाओं के नाम संसार भर में कलाविदों को भली भांति ज्ञात हैं क्योंकि इन शासकों ने पहाड़ी चित्रकला के संरक्षण और संवर्धन हेतु चित्रकारों को प्रोत्साहन दिया । भारत में आज़ादी के समय छह सौ से अधिक रियासतें थीं । इनमें से बहुत-सी रियासतों और उनके शासकों के नाम कुछ ही दशकों में भुलाए जा चुके हैं जबकि इस पहाड़ी क्षेत्र की छोटी रियासतों के शासकों के नाम चित्रकारों के उत्कृष्ट कार्य के कारण याद किये जाते रहेंगे । यह सच है कि कला के पनपने के लिए राजाश्रय या किसी भी अन्य रूप में संरक्षण आवश्यक है परन्तु इससे भी अधिक सत्य यह है कि कुछ और महत्वपूर्ण बातों की कला के विकास के लिए आवश्यकता होती है । कलाकार में उत्कट धर्म परायणता और भाषा का सीधा संवाद चित्रकार से स्थापित होने के कारण ही अनुपम चित्रों का सृजन हो सकता है । इस पहाड़ी क्षेत्र के चित्रकार अनपढ़ थे और चित्रों के विषय की जानकारी इन्हें केवल सरल मातृ भाषा में ही दी जा सकती थी अत: पहाड़ी भाषा का पहाड़ी चित्रकला के सृजन में विशेष योगदान रहा।

यदि हम उत्तर मध्यकालीन अभिलेखों का अध्ययन करें तो प्रतीत होता है कि विद्वता का स्तर बहुत ही निम्न था । इस प्रकार के विचार डॉ. फोगल ने चम्बा के प्राचीन अभिलेखों के अध्ययन पर प्रकट किए थे । ये विचार तत्कालीन भाषा के लिए इस वास्ते प्रकट किए गए क्योंकि इन अभिलेखों की भाषा का मूल्यांकन संस्कृत के मापदण्ड के आधार पर किया जाता रहा । यह ठीक प्रतीत होता है कि उस समय भाषा संस्कृत के मुकाबले में साहित्यिक स्तर पर फीकी दिखाई देती है ।

लोक कला और भाषा का स्तर ऊँचा न होने पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि पहाड़ी चित्रकला ने ऊँचा स्थान कैसे प्राप्त किया ।

गुप्तकाल में कला उत्कृष्ट थी यह सारनाथ और मथुरा की बौद्ध प्रतिमाओं, देवगढ़ की प्रतिमाओं और अजन्ता की गुफाओं में भित्ति चित्र एवं मूर्तियो को देखने से पता चलता है। गुप्तकाल में संस्कृत भाषा का स्तर ऊँचा था और यह भाषा तत्कालीन समाज में लोकप्रिय भी थी । तभी उस समय के कलाकारों को विषय को समझने की कठिनाई न थी । भाषा के स्तर का ह्रास होने के साथ ही कलाओं का स्तर भी गिरने लगा । कुछ विद्वानों ने गुप्तकाल के चार पांच शताब्दी बाद में भाषा और कला दोनों को अपभ्रंश का नाम दिया है । यद्यपि संस्कृत के अतिरिक्त लोक व्यवहार के लिए प्राकृत, पालि आदि भाषाओं का प्रचलन प्राचीन काल से रहा परन्तु साहित्यिक भाषा संस्कृत ही थी और इसे भी लोग अच्छी तरह समझ सकते थे।

धार्मिक साहित्य में बारहवीं शताब्दी में जयदेव ने गीत गोविन्द काव्य की रचना संस्कृत में की । इसे संस्कृत साहित्य का आखिरी श्रेष्ठ काव्य माना जाता है। जयदेव के पश्चात् मिथिला की भूमि में महाकवि विद्यापति ने मैथिली भाषा में कृष्ण भक्ति काव्य में ललित कवितावली की रचना की । इस समय से संस्कृत कार्यो का अनुवाद अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में होने का प्रचलन आरम्भ हुआ । जैसे कि जयदेव के गीत गोविन्द व भानुदत्त की रसमंजरी इत्यादि के अनुवाद शीघ्र ही कई सन्तों ने लोक भाषा में किये और भक्ति काव्य की अन्य कई रचनाएं प्रस्तुत की गईं । लोक भाषा में ये रचनाएं जन साधारण में इतनी लोकप्रिय हुईं कि उन्होंने उत्तरी भारत में लोगों के जीवन को बहुत प्रभावित किया । भक्ति के अलावा और विषयों पर भी लोक भाषाओं में लिखा गया ।

हिमाचल की पहाड़ी रियासतों के शासक और लोग कई प्रकार की रचनाओं से परिचित हुए और उनके चिन्तन तथा कला पर उनका प्रभाव पड़ा । इसका प्रमाण हमें कई स्रोतों से प्राप्त होता है । इस विषय की और व्याख्या करने से पहले कुछ और तथ्यों के बारे में कहना आवश्यक होगा । इस पहाड़ी क्षेत्र में जो प्राचीन अभिलेख मिले हैं उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि तेरहवीं शताब्दी के सभी लेख संस्कृत में हैं तथा उनमें से जो अधिक प्राचीन अभिलेख हैं उनमें संस्कृत भाषा का स्तर ऊँचा है । तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के लेखों में, जो कि भूदान आदि से सम्बन्धित हैं, का कुछ भाग तो संस्कृत में है और कुछ भाग स्थानीय भाषा में । अनुदान की गई भूमि का वितरण स्थानीय भाषा में अधिक है जो किसी भी प्रकार से वाद-विवाद से बचाव की दृष्टि से आवश्यक था । सतरहवीं शताब्दी

में संस्कृत का उपयोग ऐसे अभिलेखों में और भी कम हो गया और इसके कुछ ही दशकों के अन्दर केवल पहाड़ी भाषा का उपयोग होने लगा । यही समय पहाड़ी चित्रकला के आरम्भ का भी है ।

पहाड़ी रियासतों के शासकों ने ब्रज भाषा के कई कवियों को अपने राज्यों में बसने के लिए प्रवृत्त किया । ये तथ्य हमें भली भांति विदित हैं । इस संबंध में बहुत सी खोज इस क्षेत्र में कई विद्वानों ने की है । इसके अतिरिक्त 1750 ई0 के आसपास का एक पहाड़ी गुलेर शैली का चित्र उपलब्ध है जिसमें ग्वालियर के कवि सुन्दर दास को मुगल सम्राट् शाहजहां द्वारा सन् 1631 ई0 में सम्मानित करते हुए दर्शाया गया है । उनके परिवार के किसी वंशज ने इस चित्र का सर्जन गुलेर के किसी कलाकार द्वारा करवाया होगा । इस चित्र के पीछे निम्नलिखित लेख अंकित है :

श्री वातसाहे हुक्म दीत्ता जे तु सुन्दर सृंगार वणा
श्री वातसाहे दा हुक्म लई के होर श्री विष्नु दा
होर सरस्वती दा हुक्म लई के अपणे घरे की बीदा होया जी ।।

यह लेख इस तथ्य की पुष्टि करता है कि इस चित्र का सृजन कांगड़ा मण्डल में हुआ है । सुन्दर के शृंगार काव्य की सचित्र पाण्डुलिपि कुल्लू व मण्डी क्षेत्र से भी प्राप्त हुई है । ब्रज भाषा में कई कविताओं के दोहे पहाड़ी शैली के चित्रों में अंकित मिलते हैं। ब्रजभाषा के कवियों की उपस्थिति से स्थानीय लोग भी अपनी भाषा में लिखने के लिए प्रेरित हुए । ऐसे कुछ चित्र पहाड़ी लोक गीतों पर आधारित हैं। इनमें से एक उत्कृष्ट चित्र का वर्णन ज़रूरी होगा । यह चित्र इस समय रीट्ज़वर्ग संग्रहालय ज़्यूरिक (योरोप) के संग्रह में है । इस चित्र के पीछे यह लोक गीत टॉकरी लिपि में अंकित है :

नैन कटोरियां जुल्फां काले डंग
इत साढे बाग में कोई तोता बोले रंग
कुंज कुरलाईयां कोई नागे छोड़ी कंज
किनी वो मुसाफरे कोई चुपी सुटेया अंब
भाईया वो ललारिया कोई गूढ़ा करेयां रंग
सूही मेरी चोलड़ी सबज़ लहरिया बंद

लोगों का जीवन लोकगीतों से पूरी तरह जुड़ा होता है इसलिए इस चित्र में सभी दृष्यों, जिनका इस संक्षिप्त लोकगीत में वर्णन है, को बड़े कलात्मक ढंग से दर्शाया

गया है । पहाड़ी चित्रकला की महानता की आधार-शृंखला में सर्जित कई ऐसे उत्कृष्ट चित्र हैं, जिनसे यह चित्रकला विश्व विख्यात हुई । उदाहरणत:

1. रस मंजरी (नायिका भेद)
2. रागमाला
3. देवी महात्म्य
4. भागवत पुराण (विशेषत: कृष्ण जीवनी सम्बन्धी दशम् स्कन्ध)
5. रामायण
6. गीत गोविन्द
7. नल दमयन्ती
8. उषा अनिरुद्ध
9. रसिक प्रिया (बारह मासा, नायिका भेद)
10. बिहारी सतसई, इत्यादि ।

इन चित्रों का विभाजन दो या तीन वर्गों में किया जा सकता है। एक, वे चित्र जिनमें आकृतियाँ बहुत कम दर्शायी गई हैं और जिनका आधार विशेष ध्यान यानि दो या सिर्फ एक प्रसंग है। दूसरे, ऐसे प्रकार के चित्र जो विवरणात्मक हैं और जिनका संबंध पौराणिक एवं अन्य कथाओं से है । इस दूसरे वर्ग के चित्रों को भी दो भागों में बांटा जा सकता है । रामायण व कृष्ण जीवनी संबंधी चित्र जिनका ज्ञान प्राय: उस समय देश भर में सर्व विदित था और चित्रकार भी इस प्रकार के ध्यान से संबंधित सभी प्रसंगों से भली भांति परिचित थे । इस प्रकार के और ध्यान पर आधारित चित्रों पर केवल सांकेतिक नामों का उल्लेख मिलता है । अन्य चित्र जिनमें गीत गोविन्द, नल दमयन्ती आदि के से विषयों का उल्लेख मिलता है, उषा अनिरुद्ध, रसिक प्रिया, बिहारी सतसई इत्यादि हैं । इन पर संस्कृत या हिन्दी के लेखों के अलावा पहाड़ी भाषा में विस्तृत विवरण मिलता है । चूँकि इन विषयों के सम्बन्ध में कलाकारों को मुख्य विषय की तो जानकारी थी परन्तु उनका विस्तृत ज्ञान न था और चित्रों में प्रसंग के अनुरूप रस की अभिव्यक्ति के लिए सभी पात्रों के सही भावों का ज्ञान आवश्यक होता है, अत: यह आवश्यक था कि उनकी अपनी भाषा में उन्हें चित्र बनाने से पूर्व जानकारी दी जाए ।

भूरिसिंह संग्रहालय चम्बा में उषा अनिरुद्ध शृंखला के चित्र हैं। इन्हें रियासत के वक्त केवल राजा की आज्ञा से ही दिखवाया जाता था । इन सभी चित्रों के पीछे पहाड़ी भाषा में विषय का वर्णन उपलब्ध है। ये वर्णन परिशिष्ट ''क'' में दिखवाए गए हैं । नल दमयन्ती के चित्र, जो इस समय कर्णसिंह लाईब्रेरी जम्मू में हैं, पर पहाड़ी भाषा में लेख मिलते हैं, जैसे कि :-

क) नल बागे बिच जाई बाग दिखदा
केतकी दा फुल तोड़ी हथे लेया ।
ख) नारदे दा कन्ने इन्द्रा दा सिंहासन इको करना ।
ग) बाग बिच अनारे दा बूटा फलदा करदा
कने हेठ धूप धुखदा करदा ।

''ख'' व ''ग'' के लेखा प्रारूपक रेखाकृति पर अंकित हैं जो प्रत्यक्षत: चित्रकार को सम्बोधित हैं । गीत गोविन्द शृंखला के चित्र गुलेर कांगड़ा के कलाकारों की एक विशिष्ट एवं प्रमुख उपलब्धि हैं । इस शृंखला के अनेक चित्र राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में परिरक्षित हैं । इन चित्रों पर पहाड़ी भाषा में प्रसंग की व्याख्या लिखी गई है । इस शृंखला की केवल एक ही प्रारूपक रेखाकृति नोटिस में आई है, जिस पर पहाड़ी भाषा में प्रसंग लिखा गया है । इससे प्रतीत होता है कि गीत गोविन्द के संस्कृत श्लोकों का पहाड़ी भाषा में अनुवाद कलाकार की जानकारी के लिए किया जाता था, तभी कलाकार अपने कार्यों को ऊँचाई पर ले जाने में सफल हुये । पहाड़ी भाषा के गीत गोविन्द से सम्बन्धित लेखों के कुछ उदाहरण परिशिष्ट ''ख'' में दिए गए हैं ।

परिशिष्ट ''क''

उषा चरित्रे दीया कथा रिखिवर वैसंपायन राजे जनमेजे कने गलादा
श्री सदाशिवै दा पुत्र स्वामी कार्तिक कैलाश पर्वत उपर बैठा होया दैंतां दे राजै वाणासुरै दिषेया ।
भिरी दिषी करी एह मनै आई जै मैं भी श्री सदा शिवै दा पुत्र होआं ।
इथूं उपद्रव होए ध्वजा ढही पई दिने सूरज पलेस पए सिवां वोली ।।
मंजार वोले रूख पटोई पए निमलै रूंधा दी गर्जन होई ।
कुहाड़े अरज की जे एह उपद्रव बुरे होए ।
राजा वाणासुर अनेका स्त्रियां की लई करी भिरी जनाने विच मदरापान करदा ।
वजीर कुहाड़ वाहर फिकरै विच बैठा जे एह उपद्रव बुरे होए ।
उषा उठीया होईया सौंदया दिषी चित्रलेखा समाधान करदी
जे तूह गलाह जे तुंध की कुण सुपनै विच आया है तिस हो लई ओआं ।
उषा की चित्रलेखा त्रिहलोका दा चित्रकारी दसेया ।
अनिरूधे उषा कने गंधरवी करी एकांत होई क्रीड़ा करणा लगे ।
वाणासुरै दै दुतैं वाणासुरे कने षवर दीती जै उषा दे अंदर कोई पुरूस है ।

वाणासुरै नै एह षवर सुणी करी अपणीया सैना की
हुकम कीता जे औस की पकड़ी आणा ।
अनिरूधे जे दैंतां दी सेना मारी थी से कीछ पाताले की गए कीछ आकासे की गए ।
वाणासुरे दी सैना मगन होई करी कुहाड़े की गलाया जे मेरे रथे की लइआ ।
वाणासुरे वरछी छडी करी अनीरूधे पकड़ने भीरी परती करी
अनिरूधे वाणासुरे की छड़ी वाणारवर को मुरछा की प्राप्त कीता
भीरी कुहाड़े गलाय जे माय कर ।
नारद द्वारक आई पुजा करी कृष्ने पाद पूजा कीती भीरी
नारदे अनिरूधे दी षवर दीती ।
श्रीकिष्न बलभद्रे प्रदमुने अगनी कने जुध करणा
गरडे दस हजार सर करी आकास गंगा दा जल करी अगन बुझाई ।
ब्रह्मे दा पुत्र अगन श्री कृष्ने जुद्ध कीता अग्ने त्रसूल
छडेया भीरी से त्रसूल श्रीकृष्न कटेआ भीरी वाण छड़ेया
अग्न मुरछत होई प्रीथीआ उपर पई गेआ भीरी अग्न स्वर्गे की लई गए ।
बलाभद्रे हले मुसले भीरी करी गगन
(?) कीते भीरी द ज्वरे घुड़ी . . . . . ठली ।

कीखे दाहजुरे कने जुधु लगा भीरी छातीया कने लाया भीरी प्रीथीया पर सुटेआ जुर छातीया विच प्रवेस कीता फिर भीरी कृष्ने की मुरछा होई भीरी समाधान होई करी कृस्ने अपणा जुर कढेआ करी सीवे दा जुर कृस्ने अपणे जुर करी वाहर कढेआ भीरी कृस्ने दी इछा होई जे इंस दा से वड कराए ता आकाशवाणी होई जे इस की मत मारे श्रीकृस्ने गलाया जे मेरे तेरे जुधे जे कोई सुध तास की ते पीड़ा नहीं करणी वाणासुर अपु जुधो की आई करी बड़ी गरजना कीतीभीरी श्रीकृस्ने की गलाया जे तुथ को अज जींदे जाण नहीं दींदा तां श्रीकृस्न गलाया जे जुध करी तुथ की हो मार्धा की तुमे की मार करी जुध करणा लागे । वाणासुरे अपणी माया करि अंधकार करी दीता । वाणासुर सुरक्षागत ।।

कीता घोड़े रथ मारी दीते करी श्रीकृस्ने सुदरसन चक्र उठाया तां महादेवे मने वीच वीचारों जे चक्र छुटग तां वाणासुर वचदा नहीं करी लंबा नामी देवी श्रीकृस्ने कछ नगन करी भेजी तां श्रीकृस्ने मुंह बदली लया तां देवी बोल्या जे मेरे वरे भंग मत करो तां कृस्ने बोल्या जे मारदा नहीं वां ही कटघा ।

परिशिष्ट "ख"

हुण अपणे कामे की गलांदी है । नहीं दीघी होंदा जे निका गुछा फुलां दा जिसदा इदे ही जे अशोक वृक्षे दी नोई लता तिस दा जे विकाशः से भी मेकी पीड़ा करदा है । होर सरोवर दे समीपे दे बाग दा बात भी मेकी पीड़ा करदा है । होर इस पर्वत बिछे भ्रमित होंदी गुंजार करदी जे भ्रमरी तिनी करी सुन्दर जे उषा अम्बा दीया नूतन कलियां भी मेकी नहीं सुख दींदीयां । ईहां करी नंदे दी आज्ञा वला प्रस्थित जे राधा कृष्ण तीन्हा दी क्रीड़ा यमुना तटे दा जे मार्ग वीच जे अनेक कुंज तीन्हा वीषे जये की प्राप्त होन एह पुस्तकें

दे आदि मंगल भी आशीर्वचन एह श्लोकर्थ : ।

हे सखि हे राधे श्रीकृष्ण जी सरस से वसंत तिस विषें विहार करदा है । और स्त्रीयों के साथ नृत्य करदा है । सुन्दर जे लवंगलता तिन्हा दा संबंधि कोमल हे मलयाचले दा वात जिस विषे । भिरी कदे भ्रमर समूले कने मिलिवये कोकिला दा शब्द तिनी करी शब्दायमान हे कुंज ही अल्प कुटि जिस विरी कदेहा हे । विरही जे जन तिन्हा की दारूणा है । कोई जे गोपवधू हे से पीन कुचादा ये भार भर तिनी करी सराग ही श्री कृष्ण जो कि आलिंगित करी पश्चात उदंक्षित ये पंचम राग तिसकी गायन करदी है । भिरी कदेहा हे श्रीकृष्ण । गोप समूहे दी या प्रधान जो स्त्रीयां तिन्हां दा जे मुख चुंबन तिस विषे प्राप्त होया है लोभ जिसदी । दुपहरीए दी न्याई सुंदर जे अधर पल्लव तिनी करी उल्लसीत हास्य शोभा जिसदी मेरा जे मन है से भिरीभि कृष्ण विषे अभिलाषे की करदा है । कदेहा हे श्री कृष्ण । होरना स्त्रीयां विषे हे अभिलाष जिसदा । भिरी कदेहा हे श्री कृष्ण में (?) विना विहार करदा हे । कदेहा हे मेरा मन विरूद्ध हे । हों क्या करां । मेरा मन सापराध जे श्री कृष्ण तिसदे गुण समूहे की गणदा है । भ्रमे ते विस्मरण नहीं होंदा ।

परितोषे ही धारदा हे । दूरे वाला दोष की छड़ता है ।

प्रथम समागमे करी है लज्जा जिसा की मतयाणे की समर्थ जेषु सास दी ए दे हे सैकडे वचन तिन्हे करा मनाणे वाला । कोतल हुर मधुर जे ईष हास्य हुर वचन जिसा दे इने ही जे हे तिनां । श्लथकीता हे जघन विषे स्थित यह वस्त्र जिनी ।

भ्रमरां दे समूहे शब्द करदे सवे श्रवण की भी ढकी लेंदा है । मन विषे विरहे आए संते रात्रि रात्रि विषे कष्टे की प्राप्त होंदा है ।

श्री महाराजे श्री समसेर सैने श्री मीएं टक्याले श्री सूरा सैने श्री राजे श्री राज सींघे की धरम लीखी दीता है धरम एह जे मकड़ासे हेठ जे भंगाले दी जीमी है तीधी कने

हंगामा त्रीहनी टोले करणा जे हंगामा बीचा भंगाले दी जीमी छुटे सै अपणे-अपणे बने कने लगदी जीमी त्रीहनी टोंला बरोबर बंडी लैणी इक हेसा कटोचा लैणा इस हेसा मंडयाल लैणा इक हेसा चंबयाला लैणा गढ़ थड़ा जे है से छूट ता ढाई देणा इक इक गढ़ त्रैहनी टोंले अपणे हेसे उप्र पाणा इधी बीच तफाउत नही करणी जे कोई तफाउत करे से श्री ठाकोरे दा झूठा त्रीहनी टोले लीखे माफक धरम रखणा जे कोई तफाउत करे हंगामे दा कौले जवाब सवाल करण ता त्रीहनी टोले इकीठे जवाब सवाल मीलाणे हंगामे दा कारणा एह धरम श्री राजे राज सींघे की लीखी दीता आगे जे गदी भेड़ां बण चारणे आणद ता जीहां होरी श्री राजा मंझा राह रसम दसतूर लेंदे तीहां मंडयाले भी लैणा दी खेचल नहीं करनी सं. 53 माघ प्र. 17 लीख्या

त जी लीखे माफक तरीही टोला इहां ही
धरम पालना जे इस बीच तफाउत
करे से श्री ठाकोर जी दा झूठा तीहा धरम
जे लीख्या से . . . . सही जी

हस्तछाप

श्री राम जी

ओं श्री महा श्री महाराजे श्री प्रीतमे सींघे श्री राजे राज सींघे की धरम लीखी दीता धरम एह जे जीहां की कदीम चंबे मकड़ासे सूत्र बरतणा तीस माफक चंबे मकड़ासे दी सरम धरम नेक बद इक करी जाणनी जे कोई चंबे उप्र सेई करणा फौज सरदार भेजे करणे जीथी मकड़ासे दा सूत्र होए तीथी चंबे भी सूत्र रखणा इस धरमा बीच तफाउत कुसे नहीं करणी श्री रघुनाथ जी दरम्यान होर मकड़ासे बीच जे गदी रहंदे तीन्हां ते जे चंबे दा हसाब है से मकड़ासे दुआंणा मकड़ा (से) छडी चंबे होर सूत्र चाल बरते ता इस धरमे ते असे उरन होए चंबे श्री राजे श्री राज सींघे भाम चंद बता पकड़ी चंबे नीता ता धरम सुगीर . . . संवत 55 रे चैत प्र. 25 लीखा रतनगीरी टीका होर भंगाहला उप्र अंवल जीते लगे तीहां छडाई देणा जीतणा एह काम होआ ता पठारा दा साथ पूरणा एह धरम श्री राजे राज सींघा वाघा वजीरे जोराबरे भाग चंदे जे धरम ठहरा तीस धरम लेई मीयां नीधान सींघ आया धरम पा भी अंदा ते मकड़ासे थे भी धरम पटा दीता वजीरे भाग चंदे हथे चंबे दीता जे इस धरमा थे झूठा करे से श्री रघुनाथ जी श्री लछमीनाथ जी रा झूठा जे ऐह धरम संवते 55 रे चैत्र प्र. 25 लीख्या ।। सुभ ।। सुभ ।। सुभ ।।

परिचर्चा :

डा. बंशीराम शर्मा ने इस पत्र पर अपने विचार व्यक्त करते हुए जानना चाहा कि गीत गोविन्द के जिन चित्रों का निर्माण सन् 1780 में हुआ और जिन्हें डॉ. एम. एस. रन्धावा ने अपनी पुस्तक में विवेचित किया है, में भी पहाड़ी भाषा का संकेत मिलता है । क्या पहाड़ी चित्रकला का नाम 'पहाड़ी' इस क्षेत्र की बोलियों के कारण रखा गया या इसके पीछे कोई अन्य कारण भी रहा होगा । डॉ. ओहरी ने बताया कि भारतीय चित्र कला की एक महत्वपूर्ण लहर (wave) पश्चिमी हिमालय में 17वीं, 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में रही । उन्होंने कहा कि डॉ. कुमार स्वामी ने पहाड़ी चित्र कला नाम पहाड़ी बोलियों के कारण दिया होगा, ऐसा मैं नहीं समझता । अब तो यह नाम मूर्तिकला के साथ भी जुड़ गया है तथा अन्य कलाओं के साथ भी इसका संबंध हो गया है अत: भाषा के कारण यह नामकरण हुआ हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता । परन्तु दोनों विधाओं में जुड़ा होने के कारण 'पहाड़ी' शब्द महत्वपूर्ण है । टॉकरी व देवनागरी लिपि में लिखे ये कुछ पंक्तियों के अभिलेख पहाड़ी भाषा के मूल्यवान प्रमाण हैं । डॉ. गौतम व्यथित की शंका थी कि पहाड़ी भाषा को हिमाचली कहा जाए अथवा पहाड़ी । इस बात पर भी निर्णय होना चाहिए। जैसे हरयाणा में हरयाणवी, पंजाब में पंजाबी तथा राजस्थान में राजस्थानी है वैसे ही हिमाचल प्रदेश की भाषा हिमाचली हो सकती है । डॉ. ओहरी का कथन था कि चित्र कला के लिए चित्रों के पीछे जो वाक्य पहाड़ी भाषा में लिखे गये हैं वे कलाकारों द्वारा नहीं लिखे गए हैं बल्कि वे पण्डितों द्वारा लिखे गए हैं । इनके आधार पर चित्रकारों ने चित्रों का अंकन किया । पहाड़ी मूर्तिकला सम्भवत: दशम् शताब्दी में प्रचलित हुई जबकि पहाड़ी भाषा का नामकरण सम्भवत: उसके बाद की बात है । श्री एम. आर. ठाकुर ने कहा कि चित्रों के भाव तथा महत्ता के संबंध में यहां चर्चा करना पहाड़ी भाषा से सम्बद्ध नहीं है परन्तु कुल्लू में एक छोटा सा चित्र उपलब्ध है जिसमें गद्दी भेड़ें चरा रहा है, उसके पीछे एक गद्दन तथा तीन-चार लड़के खड़े हैं । उन्होंने बकरियों व भेड़ों के बच्चे (छेलू) उठा रखे हैं। पीछे खड़ी औरत, ऐसा प्रतीत होता है कि, भेड़ों की बजाय गद्दी को हाथ दे रही है । एक व्याख्याकार ने बताया कि-

भेड़ां जिना री जो, भाभी जिना री जो,
तिन सात जिना रे पुतर, तिना री न कुशल हो ।

अर्थात् जो भेड़ें चराते हैं, जिनकी भाभी विधवा हो उसका विवाह छोटे या बड़े

भाई से करने पर वह घर की मालकिन ही रहती है क्योंकि उसने सम्पत्ति जो ले ली है । जिसके पांच-सात पुत्र हों, उसके जीवन की कुशलता नहीं समझनी चाहिए । डॉ. ओहरी ने इस बात का समर्थन किया कि चित्रों के माध्यम से सम्प्रेषण परमावश्यक है । उन्होंने कहा कि पहाड़ी के चित्रकार प्राय: अर्द्धशिक्षित अथवा अशिक्षित थे । उन्होंने संकेतों के आधार पर चित्र बनाए । मैंने उनका विभिन्न विषयों के आधार पर वर्गीकरण किया है । सभी चित्रों के पीछे संकेत नहीं लिखे गए हैं परन्तु यह निश्चित है कि पहाड़ी चित्रकारों ने अभूतपूर्व परिश्रम किया है और इस कला को ऊँचाई के शिखर पर पहुंचाने में कोई कसर नहीं उठा रखी ।

डॉ. पीयूष गुलेरी ने चित्रों के निर्माण काल के संबंध में जिज्ञासा जताई तथा बताया कि यह सही है कि पहाड़ी क्षेत्र के शासकों ने अनेक ब्रज कवियों को अपने दरबार में बुला कर सम्मान दिया । गुलेर के राजा बलदेव सिंह के दरबार में स्थानीय कवि ही दरबारी कवि थे । ये स्थानीय कवि भी ब्रज भाषा में कविता करते थे । ब्रजभाषा की कुछ रचनाएं हमें सम्वत् 1762 की उपलब्ध हुई हैं । यदि सम्वत्,सन् आदि का पता चले तो पहाड़ी भाषा के इतिहास की जानकारी में वृद्धि होगी । डॉ. ओहरी ने कहा कि सुन्दर कवि के सम्मान का चित्र यह सिद्ध करता है कि बाहर से आ कर कुछ कवि अथवा उनके वंशज इस क्षेत्र में बसे । ब्रजभाषा के कवि का सम्मान किया गया अथवा उसके वंशज यहां आ कर बसे, ये दोनों बातें सम्भव हो सकती हैं । ब्रजभाषा में रचना करने वाले कवियों के नामों की भिन्नता भी इस बात की पुष्टि करती है कि बाहर से भी कवि इस क्षेत्र में आए । डॉ. बंशीराम शर्मा ने भी इस बात की पुष्टि की कि स्थानीय कवि भी ब्रजभाषा में रचना करते थे । उन्होंने गुलेर के कवियों तथा बिलासपुर रियासत के कवि गणेश सिंह बेदी का उल्लेख किया जो मात्र ब्रजभाषा में ही रचना करते थे । डॉ. ए. आर. चौहान ने इस बात का समर्थन करते हुए बताया कि कांगड़ा के कई साहित्यकार पंजाबी में बहुत अच्छा साहित्य लिखते रहे हैं । डॉ. पट्याल ने विवाह के अवसर पर बनाए जाने वाले देहरा चित्रों के सम्बन्ध में जानना चाहा कि क्या वे भी पहाड़ी चित्रकला के अन्तर्गत आते हैं या नहीं । इस संबंध में डॉ. ओहरी का विचार था कि विवाह के अवसर पर बनाए जाने वाले चित्र अन्य प्रकार के होते हैं । कई बार पहाड़ी चित्रकारों ने इस प्रकार के चित्र बनाए हैं परन्तु वे पहाड़ी चित्रकला विधा में नहीं आते । डॉ. अमिता शर्मा ने जानना चाहा कि कुछ राजाओं को देवताओं के रूप में चित्रित किया गया है, उसके संबंध में इस प्रकार की भ्रांति है कि पहाड़ी तथा अन्य चित्रकारों ने शासकों की चाटुकारिता की है । क्या इन चित्रों को पहाड़ी चित्रों की विधा में रखा जाना चाहिए ? डॉ. ओहरी ने विचार व्यक्त किया कि मण्डी,

सुजानपुर टीहरा तथा अन्य कुछ रियासतों में इस प्रकार के उदाहरण हैं परन्तु चित्र देखकर ही उनके वर्गीकरण पर निर्णय सम्भव होगा । उन्होंने डॉ. अमिता शर्मा से इस बात पर सहमति व्यक्त की कि महाराज रणजीत सिंह तथा अन्य शासकों के सम्मान में बने ऐसे चित्र तत्कालीन व्यवस्था के संबंध में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं । उनके अनुसार उन्नीसवीं शताब्दी की चित्रकला को कम्पनी तथा पहाड़ी वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है । डॉ. गौतम व्यथित का मत था कि भाषाविदों को इन चित्रों पर लिखे गए वाक्यों का अनुसन्धानात्मक अध्ययन करना चाहिए। उनके अनुसार पहाड़ी भाषा का संबंध प्राचीन लौकिक भाषा तथा अपभ्रंश से रहा है । इस दृष्टि से चित्रों के संबंध में सांकेतिक वाक्य सोदाहरण सामग्री है । डॉ. ओहरी ने कहा कि तेरहवीं शताब्दी से भूमि सम्बन्धी रिकार्ड के लिए पहाड़ी भाषा का प्रयोग आरम्भ हो गया था अत: जनता की प्रयुक्त भाषा स्थानीय ही थी । सत्र के अध्यक्ष प्रो. मृणाल मिरि ने इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त की कि विषय पत्रों पर अच्छी चर्चा हुई । उन्होंने इस बात पर खेद व्यक्त किया कि समय की अपेक्षाकृत कमी के कारण अधिक प्रतिभागियों को अपनी बात रखने का समय नहीं दिया जा सका । उन्होंने प्रतिभागियों का धन्यवाद व्यक्त किया ।

पहाड़ी कविता की विकास यात्रा

डॉ० पीयूष गुलेरी

जब हम पहाड़ी-कविता की विकास यात्रा की जाँच-पड़ताल और परख-पहचान करने का प्रयास करते हैं, तो हमें संसार की अन्य भाषाओं के काव्योद्भव के इतिहास के समान, पहाड़ी भाषा का साहित्यिक रूप सर्वप्रथम काव्य के माध्यम से प्रस्फुटित हुआ दीखता है । अस्तु, पहाड़ी कविता का बीज इस भाषा के लोक-कवियों के गीतो में ही अनुप्राणित हुआ प्रतीत होता है । जब हम पहाड़ी कविता के शिष्ट पद्य की बात करते हैं तो हमें यह सर्वथा विस्मृत नहीं करना है कि आधुनिक कवि लोक-साहित्य के अक्षुण्ण भण्डार से स्वयं को समृद्ध पाता है ।

हमारा अभिप्राय है कि पहाड़ी-कविता का उद्गम-स्रोत लोक-काव्य है । जितना पुराना पहाड़ी जन-समाज है उतना ही पुरातन इसका लोक काव्य । इसलिए जन समाज और लोक-काव्य के इसी पुरातन केन्द्र बिन्दु से आधुनिक पहाड़ी- कविता की विकास यात्रा की शुरुआत मानी जानी चाहिए । हमारा तो यह मानना है कि पहाड़ी कविता के आधुनिक रूप का प्रारम्भ इसके लोक गीतों की अनाम और सनाम काव्य-धारा के कवियों से होता है । यों भी जब भाषा के शिष्ट साहित्य का स्रोत सूखने लगता है तो उसे लोक साहित्य की संजीवनी से जीवन प्राप्त करना होता है ।

लोक काव्य अथवा लोकगीत, जैसे कि स्पष्ट है , जन समाज की सहज उपज हैं जिनमें रचनाकार अपना नाम नहीं देते । इसके विपरीत, समय-समय पर परिस्थिति विशेष एवं संदर्भ-विशेष के परिप्रेक्ष्य में उन मूल गीतों में कुछ कड़ियां जुड़ती रहती हैं , तो कभी कुछ पंक्तियां खिर भी जाती हैं । इस प्रकार लोकगीतों के विकास एवं ह्रास की अपनी एक रोचक गाथा है । पहाड़ी-कविता की विकास यात्रा के इस रोचक उद्भव के संदर्भ में कहा जा सकता है कि लोकगीतों में जहां कहीं हमें रचनाकार का नाम उपलब्ध हो जाए वहीं से आधुनिक पहाड़ी-कविता का आरम्भ माना जाना चाहिए । सनाम कवियों की यह धारा स्वयं को अनाम कवियों अर्थात् लोक कवियों से अलग करती है ।

यही बिन्दु पहाड़ी की लोक कविता और शिष्ट कविता की विभाजक रेखा भी हो सकता है । इस दृष्टि से हमारी जानकारी के अनुसार गुलेर राज्य के नृपति स्वर्गीय बलदेव सिंह की हस्त लिपि में उपलब्ध गीतियां तब तक पहाड़ी कविता की विकास यात्रा का मील पत्थर मानी जाएंगी जब तक कोई अन्य अनुसंधित्सु इनसे भी पुरातन प्रामाणिक गीत–गीतियां उपलब्ध नहीं करवाता ।

राजा बलदेव सिंह के अनुसार इन गीतियों की रचना विक्रम सिंह नरेश की रानी ने की थी । श्रीमती का नाम उपलब्ध नहीं है । हां, विक्रम सिंह का शासन काल सन् 1662 – 1675 ईसवी की कालावधि में ठहरता है । उन गीतियों में से कतिपय के उदाहरण देना संगत प्रतीत होता है । कल्याण देवी के पुत्र तथा अपने पति विक्रम नरेश के शौर्य का वर्णन रानी ने एक गीत में किया है :

कल्याण देयी दा जाया
जो चंद देहया तिज्जो वर मिल्लेया
तेज बड़ा तलवारी / चतुर कन्हैया
आप चम्बे दी डाल सिफत तुम्हारी

इस संदर्भ में रानी दुर्गा देवी से संबंधित एक अन्य गीति की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

धन–धन राणी दुर्गा देइये
तैं गोबिन्द सो चित लाया

गुलेर राज्य के कवि बृजराज पर शोध कार्य करते समय उनकी रचना सामग्री के पुलिन्दों में श्रीकांत प्रत्यूष को एक अन्य कवि कांशीराम की ब्रजभाषा रचनाओं में कतिपय पहाड़ी काव्य रचनाएं खण्डित रूप में प्राप्त हुई । इससे पहाड़ी कविता की विकास यात्रा में कविवर कांशी राम का नाम भी आ जुड़ता है । कवि मूलत: हिन्दी रचनाकार है । इनका रचना काल सन् 1743 – 1836 ई0 के मध्य है । शोध कर्ता को कवि द्वारा रचित 'राम गीता' महाकाव्य तथा अन्य लगभग दो सौ फुटकर छन्द मिले हैं ,जो हिन्दी में रचित हैं । एक सुखद आश्चर्य है कि उन्हीं फुटकर छन्दों में संख्या 16 छन्द कवि द्वारा पहाड़ी मे प्रणीत है । इस छन्द की पंक्तियों के कुछ अंश खण्डित हो गए हैं । पहाड़ी कविता यात्रा की दृष्टि से इस छन्द की उपलब्धि इतनी महत्वपूर्ण नहीं जितना कि इस प्रकार की पहाड़ी रचनाओं की सम्भावना का संदर्भ है । हिमाचल–प्रदेश की तत्कालीन रियासतों में इस प्रकार की पहाड़ी काव्य–रचना प्रचुर मात्रा मे हुई होगी । किन्तु प्रश्न तब तक अनुत्तरित

ही रहेगा जब तक स्थूल रूप में खोजियों को कोई उपलब्धि नहीं हो जाती। पाठकों की रुचि एवं ज्ञानार्थ हम कांशी राम विरचित उस छन्द को ज्यों का त्यों उद्‌धृत कर रहे हैं:

मोतियां दी लड़ी जे विधातें आप घड़ी ।
सिर देई, तेरैं घड़ी,घड़ी लाई कुनी घलनी ।।
देव है हिरानगी बड़ी ऐ एह मेरे मन .... ।
जिसा माउ जिसा दिषी लगे झूल.... ।।
....ही कली जे रलाई नहीं रली सोनें ।
....बेल बातें.... हलनी ।
हे नी अलबेली .... नी ।
झेलिए कुभेलिया दे लक जन निझक किहां चलनी ।

उक्त छन्द में कवि की छन्द योजना, परिकल्पना शैली, रचना-कला और बिम्ब-विधान पहाड़ी कविता के सौष्ठव को रेखांकित करते हैं। इससे भी बड़ी बात जो हमारे मंतव्य से सम्बन्धित है ,वह यह है कि आज से पौने दो सौ वर्ष पूर्व पहाड़ी साहित्य में काव्य की प्रौढ़ रचना-प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। किन्तु हस्तलिखित होने के कारण अधिकतर सामग्री या तो नष्ट हो गई या अनुपलब्ध है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि ऐसी दुर्लभ सामग्री के हाथ लगने से पहाड़ी कविता की विकास- यात्रा को स्थिर करने में बड़ी सहायता मिल सकती है।

गुलेर से ही सम्बन्धित एक अन्य राज्याश्रित कवि रुद्रदत्त था। यह राजा शमशेर सिंह के समकालीन कवि थे। इन द्वारा पहाड़ी में रचित दो छन्द इनके अन्य 250 हिन्दी फुटकर छन्दों में प्राप्त हुए हैं। राजा शमशेर का राज्य काल सन् 1828-1870 तक रहा होगा। कवि का रचना समय इसी मध्य रहा होगा अथवा इसे दस बीस वर्ष पूर्व तक भी स्थिर किया जा सकता है। रुद्रदत्त प्रणीत इन दोनों छन्दों में विप्रलंभ शृंगार, मनोदशाओं का चित्रण, यथा, मिलन की आतुर तड़प, विरह का तीव्र उद्वेग, भावोत्पीड़न, साजन के रूठने और विरोधाभासी परिस्थितिजन्य आवेग तथा दर्शन लालसा आदि भावदशाओं का सहज स्वाभाविक एवं चित्ताकर्षक वर्णन हुआ है। नायिका का भावावेश देरवते बनता है:

अज्ज सौंपणा घर गुआंडणी की, अतै अप्पू की छैल़ सिंगार बनाणा ।
उन्हैं होए मते दिन आयां देयां, मनदर जाई के रोस चुकाणा ।।

नैई जाणदी अहौं कुत गल्ला रुठे,गले लाई के सज्जन अप्पू मनाणा ।
तुस दोऐ सहेलियां साथ चल्लो, असां अपणे प्यारे की दिक्खणा जाणा ।।

एक अन्य छन्द में मानिनी नायिका की अनेक भावदशाओं का सजीव और मनोवैज्ञानिक चित्र उपमा, तुलना, प्रतीक और विरोधाभास अलंकारों के माध्यम से मूर्तिमान हो उठता है । मानिनी नायिका का नायक द्वारा मनाने के बाबजूद मान न तोड़ना, बाद में प्रिय वियोग से दुखित होना,विरह की तड़प और पश्चाताप की विरहाग्नि में झुलसती हुई अपनी सहेली पर व्यंग्य करती हुई पार्श्व नायिका का यह व्यंजनापूर्ण कथन कितना सुंदर और मर्मस्पर्शी है:

अड़िए छोड़ सुपारसे झुठिए की, नौई रुस्सणे दी तुक्की वाण लग्गी ।।
पई पैरैं प्यारा करी खड़ा रेहा, उस्स दिक्खी के अहौ बी मनाणा लग्गी ।।
उत बेलै मती करी अकड़ी तू, उठी गेया तां भाखवां सुणाणा लग्गी ।।

इसमें शब्द विधान की दृष्टि से छन्द, लय ,बिम्ब, मुहावरे, उक्तियां ,कथन और प्रतीक आदि जहां सुष्ठु अन्विति के साथ प्रयुक्त हुए हैं, वहां अर्थ-विधान की संप्रेषणीयता व्यंजनापूर्ण होने से स्वयं मुखर हो उठी है । कहना न होगा कि शब्द और अर्थ का यह तारतम्य और सामरस्य रचना की श्रेष्ठता तथा उत्तमता को सिद्ध करता है ।

कालक्रमानुसार रुद्रदत्त के पश्चात् पहाड़ी कविता की विकास यात्रा को आगे बढ़ाने में डाडासीबा (कांगड़ा) निवासी बाबा कांशी राम जी,जो पहाड़ी गांधी के उपनाम से ख्यात हैं,का नामोल्लेख उचित और न्यायसंगत प्रतीत होता है । वे कवि, स्वतन्त्रता सेनानी एवं अथक समाज सेवी थे और स्वदेश गौरव और स्वभाषा प्रेम से भाव मण्डित थे । पर्वतीय क्षेत्र में स्वतन्त्रता आन्दोलन को गतिमान करने और पहाड़ी समाज को अंधविश्वासों, पिछड़ेपन, अशिक्षा, निर्धनता आदि सामाजिक बुराइयों तथा कुरीतियों के गर्त से निकलने के लिए उन्होंने पहाड़ी-कविता को हथियार के रूप में इस्तेमाल ही नहीं किया बल्कि उसे कांशीरामीय प्रखर स्वर भी दिया । ।। जुलाई सन् ।882 को जन्मे इस कवि की जीवन लीला ।5 अक्तूबर, ।943 ई0 को समाप्त हुई।

समय के इस अन्तराल में उन्होंने लगभग 200 से अधिक फुटकर छोटी-बड़ी रचनाएं कीं जिन में से 63 उनके सुपुत्र स्वर्गीय स्वाया राम वैद्य द्वारा सम्पादित व संकलित हो कर सरगम शीर्षक से पुस्तकाकार ले चुकी हैं ।

विषय वस्तु की दृष्टि से इनका रचना संसार वैविध्य पूर्ण है । इन्होंने मुख्यत:

श्रृंगार ,वीर, करुणा, वीभत्स, भयंकर, भक्ति आदि रसों को रचनाओं का आधार बनाया है। समग्र राष्ट्र इनका फलक है । राष्ट्रीयता को अनुप्राणित करके स्वाधीनता और स्वराज्य का उद्देश्य कवि के सामने है । इस उद्देश्य की पूर्ति तभी सम्भव है जब अनपढ़ता और अन्धविश्वासों की केंचुली उतरे । दुख और संघर्ष इनके शाना बशाना थे ।

जुझारु प्रकृति के इस कवि ने साधारण जन भाषा और लोक मुहावरों का प्रयोग किया । कला की दृष्टि से इनकी कविताएं उत्तम कोटि की रचनाएं हैं। इनमें तुकांत, पिंगलधर्मा और स्वच्छन्द आदि सभी प्रकार की रचनाएं मिलती हैं। 'गलांदा जान्दी बारी जेल' शीर्षक रचना का यह अंश दर्शनीय है :

जग जींदेया दे मेले ।
असां रे मुकणे नी झमेले। सांजो ता जेला सद्देआ ।
धमकियां मार मुकाया । तुसां रसो तां बसो ।
कनै रोओ कनै हसो।
इह्ना गोरेयां दा मुंह काला । कांशी दा बोल बाला ।
गलांदा जांदी बारी जेल । काहलू हुंगा मेल ।
पलटा खांगा समा जाहलू ताहलू तुसां भी मिली जांगे ।
कैद करी लेया असां जो कांशी दुनियां औंदी रैंहगी ।
जाहलू तक नी सुराज पांगे असां ।

भाव एवं शिल्प की दृष्टि से कांशी राम की कविताएं स्तरीय हैं । पहाड़ी गांधी के समकालीन सुजानपुर टीहरा निवासी हरनाम दास की रचनाएं पहाड़ी कविता-यात्रा के विकास में उल्लेखनीय हैं । उन्होंने अशिक्षा, अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध समाज को सजग किया । उनकी कविताएं यथार्थतावादी हैं और उन में लोक- भाषा के स्वर एवं मुहावरों की पुट देखे बनती है । एक उदाहरण प्रस्तुत है :

माए मैं तां मुन्नुए दा पातर पाणा ।
देरे लाड़िया पर जादू खलाणा ।
अड़ेसियां पड़ेसियां छाड छड़ासी,जोगिये दातरा बजाणा ।
चेले,जोग्गी,ओपरा दस्सदे,साधणी साध बुलाणा ।
चाचिये लाया ,ताइये खुआया,सौकणी जो दसदे खुआणा ।
दुद्धे देइ इसे बिच धागा दित्ता , जापिके मंतर चलाणा ।

कपड़े भाण्डे जोगिए नीं छड्डे ,चेलेयां खाणे जो दाणा ।
हरनाम दास इक ज्ञाने बाझी,मुन्नुए दा रोग नी जाणा ।।

पहाड़ी भाषा की उसी पीढ़ी के कवियों में दातारपुर के हरलाल डोगरा का भी एक प्रमुख नाम है । उन्होंने अनेक कविताएं लिखीं । बानगी के तौर पर देखिए:

जी के कर तू तरक्की, नीं ता बैठा पींगगा चक्की ।
मैं तां केहि केहि के अक्की, इसा उमरा च तू पढ़ि जाए ।।
होइ बड़ा बड्डा, सुख पाए, अप्पू पढ़ै लोक्कां जो पढ़ाए ।।

सन् 1937 ई0 के आस पास सुजानपुर टिहरा के रुद्रदत्त दीक्षित की पहाड़ी कविताएं देखने को मिलती हैं । एक उदाहरण :

कलजुगे दा बरतारा, धर्म किह्यां गुआया ।
कोट छोटे कुर्ते लम्बे, चोटी कट्टी दुम्बे लम्बे ।
मुच्छां दा कित्ता सफाया, ह्यां गुआया ।

सन् 1903 ई0 में जन्म लेने वाले मेजर बृजलाल की रचनाएं खिचड़ी पहाड़ी का उदाहरण हैं :

यथा : अचम्भा दिखिये, आश्चर्य वाली बात ।
सूरज चांद तारे चमके, गई धराते रात ।
अक्खां वाल़े खान भुलेक्खे, अन्ने दस्सन वाट ।
अक्खां वाल़े लुट्टे जादें, अन्हें रैहन मुस्कात ।

मेजर बृजलाल ही की पीढ़ी के सोम नाथ सिंह सोम भी हैं। इन्होंने 'सोम तरंग'(1959 ई0) नामक अपने काव्य संग्रह में कुछेक पहाड़ी रचनाओं को भी सम्मिलित कर दिया है । एक लोक प्रिय गीत की पंक्तियां हैं:

देश अजाद हूई गेया लोको ,सुखे दिया निंदरा सेई जाणा ।

पहाड़ी काव्य की इस विकास यात्रा को प्रवहमान किये रखने में राम चन्द्र कुशल, सावित्री देवी तथा पंडित तुलाराम प्रभृति का सराहनीय योगदान है ।
सन् 1943 से 1966 की समयावधि में अनेक गीतकारों ने अनाम सनाम दोनों प्रकार की रचनाएं कीं । इन का नामोल्लेख पहाड़ी कविता की विकास यात्रा में किया जाना अनिवार्य होगा । ऐसे अनेक गीतकारों में प्रताप चन्द शर्मा, चम्बा के

खेम राज गुप्त 'सागर' और (स्व0) यशपाल के नाम प्रमुख हैं । इन द्वारा रचित अनेक गीत लोकमानस में ऐसे घुलमिल गए हैं कि बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि इनके रचनाकार कौन हैं ।

खेमराज गुप्त सागर का -***'साएं-साएं मत कर राविये, मिंजो तेरा डर लगदा'*** तथा प्रताप चंद शर्मा विरचित ***फुलदे चीलां दे डालू कि जीणा कांगड़े दा,*** और ***'सुण कांगड़े देया लोका'*** तथा ***'दो नारां वे लोको लसकदियां तलवारां'*** आदि अनेक रचनाएं आज भी अत्यंत लोकप्रिय हैं ।

पहाड़ी कविता का यह एकांत स्वरूप लोक कविता और कविता का ताफ़ता (धूप-छाया) रंग है ।

सन् 1966 ईसवी में कुछ पर्वतीय क्षेत्रों के हिमाचल-प्रदेश में विलय के पश्चात् पहाड़ी काव्य-सृजन की जो लहर चली उसका श्री गणेश सन् 1958 के आस पास हो चुका था। इस समय कांगड़ा में ओमप्रकाश प्रेमी के संयोजन में ' तरुण परिषद्' का गठन हुआ । इस दिशा में गौतम व्यथित, श्रीकांत प्रत्यूष, शमी शर्मा, पद्म नाभ त्रिवेदी, देसराज डोगरा, सागर पालमपुरी, सुदर्शन नूरपुरी, शेष अवस्थी, अश्विनी अवस्थी, रतनलाल मिश्र, डॉ शालिग्राम और पीयूष गुलेरी प्रभृति का प्रशंसनीय योगदान है। इसी मध्य एम. एस. रंधावा के प्रयत्नों से आकाशवाणी जालंधर से 'पर्वत की गूंजं' नामक एक नवीन कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ । इस कार्यक्रम में अनेक कवियों की प्रस्तुतियां पहाड़ी कविता की विकास यात्रा में अहम भूमिका का निर्वाह करती हैं । सच तो यह है कि सन् 1966 ईसवी के बाद ही आधुनिक पहाड़ी कविता की विविधत् रचना का आविर्भाव हुआ ।

इसी समय त्रिगर्त हिन्दी साहित्य संगम की स्थापना हुई । इसके संयोजन में अनेक कवि-सम्मेलन, साहित्य समारोह तथा गोष्ठियां आयोजित हुई । हिन्दी के साथ-साथ पहाड़ी लोक साहित्य का संरक्षण, नवलेखन और प्रोत्साहन संस्था के आधार-भूत सिद्धांत थे ।

इस दिशा में प्रिंसिपल रतनलाल मिश्र, डॉ0 शालिग्राम , पंडित पद्म नाभ त्रिवेदी, ओम प्रकाश प्रेमी, कुलदीप सचदेव, राम प्रसाद गुप्त, गौतम व्यथित, बलदेव पुन्नी, चुन्नीलाल प्रेम, संतोष आचार्य, शमी शर्मा, शांता कुमार, देसराज डोगरा, श्रीकांत प्रत्यूष, नन्द किशोर परिमल, गिरिधर योगेश्वर, हरबंस गर्ग तथा प्रो0 चन्द्रवर्कर आदि का योगदान स्मरणीय है ।

यही वह समय है जब संस्था का श्रीयुत (स्व0) लाल चन्द प्रार्थी 'चांद कुलुवी' के साथ सम्पर्क हुआ । उनके मन में पहाड़ी को अन्य भाषाओं के समान स्थान दिलाने की तीव्र ललक थी । संस्था द्वारा सन् 1967 ई0 में साहित्य समारोह

आयोजित किया गया । समारोह में अन्य कार्यक्रमों के साथ चर्चा का विषय था – 'पहाड़ी भाषा का प्रचार और प्रसार' । इस में कहानीकार यशपाल, पद्मसिंह शर्मा कमलेश, चन्द्रशेखर, प्रो0 सुरेश, शांता कुमार के अतिरिक्त हिमाचल प्रदेश, जम्मू काश्मीर, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के अनेक साहित्यकारों ने भाग लिया । इसके मुख्य अतिथि तत्कालीन मंत्री श्री लाल चन्द प्रार्थी थे । पहाड़ी भाषा को सरकारी मान्यता दिलाने और पहाड़ी के शिष्ट–साहित्य को समृद्ध करने की दिशा में इस अवसर पर अनेक निणर्य लिए गए । पहाड़ी कविता यात्रा के पुष्टिकरण की दृष्टि से इस समारोह की भूमिका अविस्मरणीय रहेगी । तदोपरांत प्रार्थी जी की अध्यक्षता में राज्य भाषा संस्थान की स्थापना भी हुई ।

इससे एक सार्वभौम वातावरण का निर्माण हुआ और अनेक कवि पहाड़ी कविता की शिष्ट साहित्य संरचना में संबद्ध हुए ।

पहाड़ी की इस कविता विकास यात्रा में पीयूष गुलेरी रचित 'मेरा देश म्हाचल' पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित प्रथम मौलिक काव्य पुस्तक है । इस संकलन में विविध विषयों को छूने वाली 74 रचनाएं हैं । पीयूष के 'छौंटे' तथा 'मेरियां गज़लां तेरे गीत' (1975 और 1989 ई0 में) प्रकाशित हुए जो कवि की रचना–ध र्मिता और पहाड़ी कविता की विकास यात्रा को रेखांकित करते हैं । इस दिशा में नवम्बर,1969 में गौतम व्यथित विरचित 'चेते' का नामोल्लेख किये बनता है । कवि ने गेय, स्वच्छन्द, कवित्त, कुण्डलिया, चौपरे, गीत और टप्पे, आठ शीर्षकों में अपनी अठावन रचनाओं को संगृहीत किया है । सन् 1974 ईसवी में कवि ने 'पुंगरासां' शीर्षकांतर्गत अपनी छियासठ रचनाओं को झरोखे, रितां, नौएं मोड़ तथा पुंगरासां उपशीर्षकों में विभाजित करके प्रकाशित किया है । व्यथित का 'गास्सैं हथ पुजाणे किआं' सन् 1985 ईसवी में प्रकाशित तृतीय काव्य संकलन है । कवि की भावाभिव्यंजना लोक कविता की सुदृढ़ आधार भूमि पर अवस्थित है । परिणाम स्वरूप लोक काव्य की सहजात अस्मिता और अर्थ– संप्रेषण का कुशल शिल्प कवि की विशेषता के रूप में उभर कर सामने आए हैं।

पहाड़ी कविता की इस विकास यात्रा में श्रीकांत प्रत्यूष लिखित 'गीतां री सीर' इस प्रकाशन शृंखला में तृतीय प्रकाशित काव्य पुस्तक है । इसमें कवि की बासठ रचनाएं संगृहीत हैं जबकि उन द्वारा सन् 1987 में प्रकाशित 'वगते दी गल्ल' में उनतालीस कविताएं संकलित हैं। प्रत्यूष की कविता में उद्वेलन, तरंगायन और लोच है । उसकी अधिकतर रचनाओं में विद्रोह ,आक्रोश, बदलाव की छटपटाहट और व्यंग्य मुखरित हुए हैं । कवि अन्तर्विरोधों ओर विसंगतियों को इस प्रकार चित्रित करता है :

के होंगा किछ गौर करा/जित्थू माहणू झट बदलोआ दा
अज इत पास्सैं कलं उत पास्सैं, बिसोआस फह्रुलियां रोआ दा ।।

सन् 1970 ईसवी में रूप शर्मा का काव्य -संग्रह 'मेरा हिमाचल मेरा घर' प्रकाशित हुआ । पुस्तक के 74 पृष्ठीय कलेवर में कवि की कुल 30 कविताएं संकलित हैं । सन् 1975 ईसवी में श्री सी0आर0बी0 ललित का काव्य संग्रह 'जुएणौ रे आशू' में सैंतीस कविताएं सम्मिलित हैं । एक कविता के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

पीपलौ मुळै , बावड़ी घाटे ।
आसा रा प्यारा पलदा लागा ।
आसा रा प्यारा पलदा लागा ।।

कर्मचन्द श्रमिक कृत ' मनोरंजन भेंट' (1970 ई0) हिन्दी-पहाड़ी मिश्रित काव्य संग्रह है। 1975 में मित्र - साहित्य परिषद् घुमारवीं की ओर से जयदेव शर्मा रचित 'फुल कनै पत्ते' प्रकाश में आया । 1976 ई0 में विद्यानन्द सरैक ने 'चिट्टी चादर' में धर्म , संस्कृति , प्रकृति , शृंगार , करुण , व्यंग्य और देश प्रेम सम्बन्ध ी इक्यावन रचनाएं एकत्र की हैं । सरैक लोक तत्वों के सामंजस्य का कवि है । उदाहरणार्थ :

डाळी- डाळी रा बसेरा / पंछिया मुश्कल तेरा
एक फुलडू चुणें रो म्हाइये / लाणा जीवटा पोरा
हाण्डी हाण्डी रे ओलणो चारवदे रो / जाने रवे न घोरा ।

पहाड़ी कविता की विकास यात्रा की कड़ी में गौतम व्यथित द्वारा सम्पादित 'मिंजरां ' संकलन एक साथ अनेक कवियों को माला में पिरो कर सामने लाता है । यह पुस्तक कांगड़ा लोक साहित्य परिषद के तत्वावधान में प्रकाशित हुई । पुस्तक में परमानन्द शर्मा, प्रेम भारद्वाज, कर्मचन्द श्रमिक, हंसराज उपाध्याय, गिरिधर योगेश्वर, शेष अवस्थी, शमी शर्मा, मुलख राज शांतलवी, रामगोपाल शर्मा, रक्षा कुमारी, ओमप्रकाश प्रेमी, शिव उपाध्याय, ओमप्रकाश सारस्वत, पवनेन्द्र पवन, रशम मधुप, कुलदीप डोहरु, श्रीकान्त प्रत्यूष, सन्तोष स्नेही, गौतम व्यथित, कृष्ण दत्त शर्मा, लक्ष्मण दास मस्ताना, शक्ति राजपूत, देवराज, सन्तोरव सिंह वेदी, अशोक भारती, पीयूष गुलेरी और ठाकुरदास मज़लूम कुल सताईस कवियों की वैविध्यपूर्ण रचनाओं का सुन्दर गुलदस्ता है । पहाड़ी काव्य सौष्ठव का लेखा-जोरवा

लेने और प्रवृत्ति-निर्धारण में यह एक अनुपम संग्रह है । संकलन की एक गज़ल के शेरों की बानगी देखिए :

नाग्गा साहीं चार चुफेरे, मिंजो डसदे काले़ न्हेरे ।।
लबडुआं पर खिड़-खिड़ हास्सा, मनां च बसदे न्हेरे ।।

मिंजरां का संपादन एक संस्थागत प्रयास है जबकि श्रीकांत प्रत्यूष के संपादकत्व में सन् 1979 में 'मने दी भड़ास' शीर्षक प्रकाशित संकलन निजी और व्यक्तिगत पहल है । इस पुस्तक में दस कवियों की सतहत्तर कविताएं हैं , जो कविता की विकास यात्रा के संदर्भ में अपना पृथक स्थान निर्धारित करती हैं । संकलन के कवि गिरिधर योगेश्वर (सात), विश्वम्भर शर्मा नवीन (दस), कंवर कर्तार हमीरपुरी (आठ), शंकर दास सन्याल (सात), हरिचंद कौण्डल पुष्कर (दस), पूर्णचंद पद्म बजूरा (दस), युगल किशोर डोगरा (पांच), चांदीमल कौडिन्य (पांच), देसराज डोगरा दर्द (पांच) तथा स्वयं सम्पादक श्रीकांत प्रत्यूष (दस) आदि हैं । कहना न होगा कि 'मने दी भड़ास' में जो कवि जुड़े हैं उन में कतिपय सशक्त हस्ताक्षर बन कर उभरे हैं । तार-सप्तक की भांति 'मने दी भड़ास' पहाड़ी की विकासात्मक प्रवृत्तियों एवं शिल्प की दृष्टि से लोक तत्त्वों के शिष्ट कविता में संयोजन आदि की विशेषताओं से पुष्ट एवं परिपूर्ण प्रयास है । पद्म बजूरा का 'हारे दी बड़' का यह चित्र वृक्ष-वनस्पतियों के प्रति प्रेम और आस्था को लोक विश्वास और लोक चिन्तन की भूमि में प्रस्तुत करता है :

समें नैं खेली खेल नराली- सैह बड़ डकरे-डकरे होई ।
पलवाणा लेखवा जाह्लू तिह्नांदे, चेलेयां आए गए बढ़ोई ।
हुण नीं तिथु पींघां पौणियां, हुण तिथु कदी जग नीं लगणे ।
नचणा नीं, कुनीं धान नीं गाहणे, हुण नीं ढोल नगारे बजणे ।
पांगा डैमे तांइयों जिन्ना, दिती दिक्खवा एह कुर्वानी ।
एह तिसा दी राम कहाणी ।।

उर्दू के कवि भगवान् दास शबाब ललित ने सन् 1977 ई0 में 'भागसू दे नौणे' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया । इसमें लगभग तेंतीस ग़ज़लें संगृहीत हैं जो वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टियों से पुख्ता हैं । एक उदाहरण देखिए :

भागसू दे नौणे गोरी न्हाई करी चली गेई ।
मड़ी अग पाणिए च लाई करी चली गेई ।।

नैण मेरे नैणा नैं मलाई करी चली गेई ।
उमरीं दा रोग मिंजो लाई करी चली गेई ।।

पहाड़ी काव्य की विकासात्मक यात्रा को नैरंतर्य प्रदान करने और अद्यतन लिखते रह कर जिन कवियों का रेखांकनीय योगदान है, उनमें से जयदेव किरण एक हैं । सन् 1971 –72 में उन्होंने अपनी रचना 'पाथरो रे माह्णू' शीर्षक से कविता संग्रह प्रकाशित किया और 1985–86 ई० में उनका 'पीड़ पहाड़ां री' छपा जिसमें कवि की छप्पन रचनाएं संगृहीत हैं । लक्षणा और व्यंजना शक्ति का प्रयोग उनकी कविताओं की विशेषता है । एक कवितांश यों है :

हौले – हौले पैर राखी नखरें बणाई के ।
म्हारी प्यारी बस जियां नवीं लाड़ी हाण्डूवी ।
धूड़ –धंखाड़ लेई गिहदा एह्ड़ा पाउवीं ।
लाड़े री अम्मा चाब जियां बाण्डूवी ।।

शेष अवस्थी का काव्य संग्रह 'धारा दियां धुप्पां' छियासठ पृष्ठों में अठारह कविताओं की सुन्दर प्रस्तुति है जो सन् 1971 ईसवी में प्रकाशित हुई । यह कृति शब्द और अर्थ की अन्विति का श्रेष्ठ नमूना है । सन् 1978 में कवि का 'भ्याकणा भुल्या' खण्ड काव्य के रूप में प्रकाशित हुआ । इसी वर्ष रूप शर्मा निर्दोष की 'आस परदेसियां दी' नामक पुस्तक छपी जिसके 78 पृष्ठों में 29 कविताओं का सुन्दर समूह है । निर्दोष की कविताओं में कवि का छन्द की अपेक्षा लय और गेयता में अधिक मोह झलकता है और उसमें उसकी मोहमत भी है । 'नाटक डुगरे दा कविता नूरपुरे दी' शीर्षकान्तर्गत पुस्तक भी इसी वर्ष साहित्य जगत में आई जिसमें 13 रंग–बिरंगी पहाड़ी कविताएं हैं । काव्य सौन्दर्य और शास्त्रीय ज्ञान कवि रचना का सुदृढ़ आधार है । निम्नलिखित पंक्तियां स्वयं में उदाहरण हैं :

एह् मेरे ताउए दी हट्टी । सौदा पतरा चौड़ त्रट्टी
लूण तमाकू तेल छुहारे । गरी – दाख ते अट्टा बट्टी
एह् मेरे ताउए दी हट्टी ।।

पहाड़ी नाटक जगत में स्थान रखने वाले अश्विनी गर्ग द्वारा रचित 'चांदी दी लाड़ी' काव्य संकलन कवि साधना की जांच–परख करने के लिए यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत करता है । सन् 1972 ई० में गांव की विशुद्ध पृष्ठ भूमि की धरोहर तथा भाव एवम् शब्द सम्पदा सम्पन्न कवि भगतराम मुसाफिर हमीरपुरी का 'मेरा छैल

हिमाचल' नामक काव्य संकलन मुद्रित हुआ । ।2। पृष्ठों के आकार वाले इस संग्रह में कवि की 50 रचनाओं को स्थान मिला है । ।98। ई0 में उन्होंने 'मेरे सपने मेरे गीत' पुस्तक निकाली । सन् ।982 में 'चोर कन्हैया' और फिर ।984 में 'बणी ठणी गोरी चल्ली' शीर्षक पुस्तकें प्रकाशित हुई । कविता के योगदान की दृष्टि से मुसाफिर का पहाड़ी कविता की विकास यात्रा में सराहनीय योगदान है ।

'कुन्जां दी कूक' नाम से ऋषि भारद्वाज की पुस्तक सन् ।972 ई0 में छपी। सन् ।973 में 'संझा दे परछाएं' शीर्षकान्तर्गत रक्षा कुमारी का काव्य प्रकाशित हुआ । नारी मन की भावनाओं का चित्रण और मनोवैज्ञानिकता इस संकलन की विशेषताएं हैं। सन् ।976 में सोहन लाल गुप्त और तेज सिंह पंवार कृत 'नवां मोड़' कवियुगल की 4। रचनाओं का समुच्चय प्रकाशित हुआ । पुस्तक में विशेषतया कहलूरी जनजीवन और सामान्यतया पर्वतीय जीवन की सर्वांग सुन्दर छवियां दर्शनीय हैं । ओंकार लाल भारद्वाज का 'गोरी छैल लगदी', मेहर चन्द दर्दी कृत 'पहाड़ी लोक गीत' तथा 'हिमाचल दर्शन' रचनाएं प्रकाश में आई हैं । ओंकार लाल भारद्वाज की कविताओं में हास्य व्यंग्य का स्वर अधिक मुखर हुआ है । सन् ।977 में राज गोपाल शर्मा का 'विधवा बजोगन' खण्डकाव्य प्रकाशित हुआ । एक उदाहरग देखिए :

इस वास्ते जवानिया दा रंडेपा मिटाई लैणा चाइंदा ।
जवानिया दे रंडेपे पर दुआ ब्याह रचाई लैणा चाइंदा ।।
. . . . . जे एह् गल्ल मेरे सौह्‌रेयां जो पुजाई दिंग्गे, तां
ओह् मिंजो बड्‌ढी करी धुपां सुकण्ण पाई दिंग्गे ।

इसी वर्ष ठाकुर काहन सिंह जमाल रचित 'गिरि गंगे री धारो' मुद्रित हुआ जिसमें गीत, कविता और गज़लों समेत कृतिकार की ।।6 रचनाएं हैं । कविता का एक उदाहरण देना समीचीन प्रतीत होता है :

ए रात फिर मिलो कि नां । फूल फिर खिलो कि नां
ज़ख्मे दिल सिलो कि नां । जिओ रा मेरे मान कर, जिन्दड़ी रा सामान कर ।

शशिकान्त शास्त्री विरचित 'नगारे दी चोट' में 50 कविताएं और कुल 9। पृष्ठ हैं । नानाविधा विषयों पर रचित ये रंग–बिरंगी रचनाएं कवि प्रतिभा को उद्‌घाटित करने में सक्षम हैं । सन् ।98। ई0 में कुल्लू निवासी रचनाकार चन्द्रशेखर बेबस ने 'कुल्लू रे चैहकदे तीतर चाकर' शीर्षक संकलन में धर्म, समाज, संस्कृति, प्रकृति प्रेम, श्रृंगार, राजनीति और हास्य व्यंग्य भरी रचनाएं संगृहीत की हैं । भाव और

अभिव्यंजना की दृष्टि से सभी कविताएं श्रेष्ठ हैं । ध्वन्यात्मकता और रचनात्मकता बेबस की काव्यगत विशिष्टताएं हैं । देवराज शर्मा विरचित 'जीणा म्हाचले दा' 1981 ई0 में प्रकाशित हुआ जिसमें कवि की 39 कविताएं संकलित हैं । सन् 1982 ई0 में पहाड़ी के युवा कवि अपने 'एह् दुनिया' काव्य से साहित्य जगत में उतरे । कवि के 1987 ई0 में 'भारते नैं प्यार मिंजो' तथा सन् 1988 में 'बोल्ला करदे प्हाड़' शीर्षक खण्ड काव्य मुद्रित हुए । कवि नवीन से पहाड़ी कविता जगत को बड़ी अपेक्षाएं हैं । 1983 ई0 में शारदा पंचकर्ण 'पंखड़ू' नामक काव्य साहित्य संसार को भेंट करती हैं । पुस्तक में बाएं और दाएं पंखों की उड़ान में भक्ति और सबरस परक रचनाएं एकत्रित की गई हैं ।

मण्डी से सम्बद्ध, साहित्य चूड़ामणि की उपाधि से अलंकृत पंडित भवानी दत्त शास्त्री कृत 'लेरां धारां री' शीर्षक काव्य संकलन सन् 1984 में प्रकाशित हुआ । संकलन में कवि की 49 छोटी-बड़ी रचनाओं को प्रस्तुति मिली है । शास्त्री जी जीवनानुभव से पुष्ट और चिन्तक मनीषी हैं । वे एक स्थान पर लिखते हैं :

ओ भौरे उड्डी लैणा गाई के
दिल भरी लैणा गाई-गाई के

'उछटी मारनी डिया' शीर्षक वरयाम सिंह प्रसूत 31 पृष्ठीय कविता संकलन में कुल 25 कविताएं हैं । इन कविताओं में मार्क्सवादी जीवन दर्शन और जनवादी सोच की प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष छवि देखने को मिलती है । नयी कविता अथवा विचार कविता का यह संकलन स्वयं में एक नमूना है । 1984 ई0 में बलदेव सिंह ठाकुर विरचित 'हवा दक्खणी' काव्य संकलन निकला तथा सागर पालमपुरी ने सन् 1985 ई0 में अपनी पहाड़ी काव्य साधना को 'मैं बणजारा गीतां दा' के एक शीर्षक से पुस्तक रूप में प्रकाशित करवाया । सागर पालमपुरी की कविता अनुकरणीय भाव-सम्पदा और अभिव्यंजना चातुर्य से परिपूर्ण है । इसी वर्ष हरि कृष्ण मुरारी 'धरती सुरग बणाणी' संकलन के साथ पहाड़ी काव्य जगत में उतरे । पद्म बजूरा कृत 'छिट्टे' संकलन 1985 में छपा । इस में कवि की 47 रचनाओं को स्थान मिला है । शब्द योजना, छन्द प्रयोग और अभिव्यक्ति की दृष्टि से संकलन की कविताएं पठनीय हैं । 1986 ई0 में रत्नचन्द रत्नाकर का 'प्यार सुनेहा' निकला और इसी वर्ष नरेन्द्र अरुण का 'नौआं सवेरा' खण्डकाव्य प्रकाश में आया । नरेन्द्र अरुण की 'रंग-बिरंगे फुल्ल', लदाखा कनारे, कुज्जी रे फुल्ल आदि पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं । अरुण का कवि पहाड़ी की शिष्ट कविता-यात्रा के आदि से जुड़कर अद्यतन निरंतर काव्य संसार को सम्पन्न कर

रहा है।

सन् 1987 ई0 में संसार चन्द प्रभाकर का जगदी जोत, 1989 में देवधरती तथा दिसम्बर, 1991 में माया शीर्षक महाकाव्य प्रकाशित हुए । प्रभाकर ने पहाड़ी में महाकाव्य लिखकर सराहनीय पहल की है । सन् 1987 ई0 में ओंकार सिंह पठानिया बेदाग का 'मता किछ बदली गेया' संकलन निकला जबकि कुलदीप बड़जाता का 'पहाड़ी सभ्यता' 1988 ई0 में प्रकाश में आया । इसी वर्ष ईश्वर दुखिया ने अपने उन्नवी रंग में रंजित 'फुल्लां तैं सिक्खा' नामक पुस्तक प्रकाशित करवाई । सन् 1990 ई0 में रोशनलाल संदेश का 'पींघां रे झुटारे' और सन् 1994 ई0 में बी0 के0 डोहरु कृत 'पहाड़ां दे बोल' संग्रह प्रकाशित हुए । डोहरु की कविता का यह अंश दर्शनीय है :

फुलें फुल्ली करी सुकी जाणा । दिलें जली करी धुखी जाणा ।
चन्द्रमे चढ़ी करी छुपी जाणा । जोवने ढली करी मुकी जाणा ।

कहना न होगा कि पहाड़ी कविता की विकास यात्रा की खण्ड काव्य परम्परा में मन्शाराम शर्मा अरुण, शेष अवस्थी, नवीन हलदूनवी, नरेन्द्र अरुण और महाकाव्य रचना परम्परा में संसार चन्द्र प्रभाकर के नाम उल्लेखनीय हैं ।

पहाड़ी कविता की विकास यात्रा के सन्दर्भ में राजकीय स्तर पर सन् 1971 में राज्य भाषा संस्थान द्वारा प्रकाशित काव्य धारा भाग एक, 1973 ई0 में भाषा एवं सांस्कृतिक प्रकरण विभाग द्वारा काव्य धारा भाग दो, 1976 ई0 में हिमाचल कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा माला़ रे मणके, 1976 ई0 में ही भाषा एवं कला संस्कृति विभाग द्वारा काव्य धारा भाग तीन, 1985 ई0 में काव्य धारा भाग चार में और सन् 1982 ई0 में भाषा कला संस्कृति द्वारा प्रकाशित ' पहाड़ी रचना सार' महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय प्रकाशन हैं । उल्लेखनीय इसलिए कि जिन कवियों ने स्वतन्त्र रूप से अपनी रचनाओं को पुस्तकाकार नहीं दिया, उनकी प्रतिनिधि रचनाओं का उक्त संकलनों में साक्षात्कार हो जाता है । यही नहीं, इस विकास यात्रा में सम्मलित होने वाले अनेक कवि-यात्रियों की रचनाओं का लेखा-जोखा लेने के लिए ये प्रकाशन स्वयं में प्रकरण-ग्रन्थ बन गये हैं । काव्य धारा एक में लालचन्द प्रार्थी, अनिल राकेशी, चन्द्रमणि वशिष्ठ 'पहाड़ी मृणाल', काहन सिंह जमाल, रत्न सिंह हिमेश, खेम राज गुप्त सागर, चन्द्रशेखर बेबस, पीयूष गुलेरी, गौतम व्यथित, नरेन्द्र अरुण, जयदेव किरण, भवानीदत्त शास्त्री, ज्ञानचन्द प्रकाश, हरि प्रसाद सुमन, मौलूराम ठाकुर, राम दयाल नीरज, रूप सिंह फूल, शम्मी शर्मा, सुदर्शन कौशल, बृज कौशल, भक्त राम मुसाफिर, सागर पालमपुरी, डी0 डी0

गुलज़ार, सीता राम खजूरिया, के0 सी0 कायस्थ, देसराज डोगरा, प्रत्यूष गुलेरी, भीमदत्त काले, रत्नचन्द देहलू, नंदेश कुमार, मोती लाल हाण्डा, सोहनलाल गुप्त, के0 आर0 पंछी, तुलाराम, ओम प्रकाश प्रेमी, कृष्ण कुमार नूतन, कृष्ण चन्द्र शर्मा, जोगिन्दर लाल प्रभाकर, हरिदास, देवकी नन्दन, कांशी राम, एस0 पी0 दवा, विनोद शर्मा, अमरनाथ वशिष्ठ तथा देवदत्त शर्मा समेत कुल 45 कवियों की वैविध्यपूर्ण रचनाएं संकलित की गई हैं ।

काव्य धारा भाग दो में ऊपरलिखित कवियों के अतिरिक्त मन्शाराम शर्मा अरुण, राम कृष्ण कौशल, ऋषि भारद्वाज, डी0 एन0 कौल, रूप शर्मा, प्रीतमचन्द प्रीतम, नंदेश कुमार और शेष अवस्थी नौ कवियों के नाम आ जुड़ते हैं । 'माला रे मणके' में पहाड़ी काव्य माला में अन्य 15 नये मनकों की बढ़ौतरी होती है । ये हैं – बिहारी लाल बहार, हरि राम जसटा, ज्ञानचन्द प्रकाश, नेसू राम आनन्द, खुशीराम शर्मा, मुकुन्द नड्डा, पवनेन्द्र कुमार, सरोज पराशर, प्रेम भारद्वाज, कमला वर्मा, अश्विनी कुमार गर्ग, ओंकार लाल भारद्वाज, अमर सिंह चौहान, हरदयाल सिंह और लेसरू राम ।

काव्य धारा तीन में कुल 63 कवियों की रचनाएं संकलित हैं जबकि उपरोक्त कवियों से भिन्न 27 और नये हस्ताक्षर हैं – केसरी लाल वैद्य, दुर्गा दत्त शास्त्री, शबाब ललित, अमर आंगिरस, वेदप्रकाश अग्नि, तेज सिंह, श्याम लाल गौतम, उदय राम, मोहन लाल भारद्वाज, रूप शर्मा निर्दोष, मेहरचन्द सुमन, धरणीधर, राम चन्द्र नवीन, इन्द्रजीत सूरी, गिरिधर शर्मा, तृप्ता शर्मा, चिन्तराम मेहता, प्रभुदयाल, विजय भरत, शक्ति गोपाल और बी0 एल0 वैरागी ।

काव्य धारा भाग चार में कर्मचन्द श्रमिक, मुलखराज शांतलवी, किशोरीलाल रैणा, स्वरूप धीमान, अश्विनी अपराधी, शिव उपाध्याय, परसराम तोमर, राजेन्द्र राजन, रशम मधुप, नन्दलाल गर्ग, सोहनसिंह चौहान, विद्यानन्द सरैक, हरिदास संगम, सुशीलचन्द रत्न, अशोक भारती, लछमण दास मस्ताना, हरिवल्लभ आचार्य, सुदर्शन डोगरा, ओमप्रकाश सारस्वत, बख्शी राम मुसाफिर और प्रेमप्रकाश निहालटा आदि समेत 21 अन्य के हस्ताक्षर विद्यमान मिलते हैं ।

सन् 1982 में हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी द्वारा प्रकाशित 'पहाड़ी रचना सार' का उल्लेख करना आवश्यक है । इस संकलन के काव्य अनुभाग में 11 प्रतिनिधि रचनाएं प्रकाश में आती हैं । दिल्ली से प्रकाशित हिमध ारा के पुराने अंकों का जायज़ा लेते समय उल्लिखित कवियों के इलावा बृजेश कुमार अनमोल, प्रेम पखरोलवी और तानसेन तीन नए कवि, पहाड़ी काव्य की विकास यात्रा में पथिक बनते हैं । प्रकाश धीमान द्वारा सम्पादित 'बागर' और

गौतम व्यथित द्वारा प्रकाशित 'वाणेश्वरी' क्रमश : विशुद्ध पहाड़ी तथा हिन्दी–पहाड़ी मिश्रित पत्रिकाओं के माध्यम तथा जनसत्ता और गिरिराज में पहाड़ी के लिए सुरक्षित दो पृष्ठों में प्रकाशित होने वाले अनेक कवियों के नामों की एक लम्बी सूची तैयार हो जायेगी । उन सभी का नोटिस लेना इस लेख में सम्भव नहीं अत: संकेत मात्र कर दिया गया है । फिर ऐसे कई कवि हैं जिनके संकलन उपलब्ध नहीं हो सके और कुछ ऐसे भी हो सकते हैं जिनके नाम और काम हमारे सीमित ज्ञान की विवशता से छूट गए हों । यही नहीं, पहाड़ी काव्य की इस विकास यात्रा में यथेष्ट अनूदित साहित्य भी है जिसका उल्लेख यहां नही किया जा रहा है । उस पर पृथक कार्य किया जाना दरकार है ।

हां, इस विमर्श में बी0 आर0 मुसाफिर का 'मेरे गीत मेरे मीत' भी सम्मिलित किया जाना आवश्यक है । इसका प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं, किन्तु इसके कुल 49 पृष्ठ हैं और यह हिन्दी–पहाड़ी मिश्रित संकलन है जिसमें 20 पहाड़ी रचनाएं हैं । ये कविताएं कवि चिन्तन की सुन्दर मंजूषा हैं । प्रेम भारद्वाज द्वारा प्रकाशित 'मौसम खराब है' नामक काव्य संकलन का उल्लेख किए बिना यह लेख अधूरा रहेगा । प्रेम भारद्वाज की सशक्त लेखनी से प्रसूत गज़लें इस पुस्तक का श्रृंगार हैं । पहाड़ी काव्य यात्रा में गज़ल विधा पर वैसे तो अनेक कवियों ने आजमायश की है किन्तु प्रेम की गज़लों के ढांचे और शब्द सौन्दर्य का अपना ही रंग है । छोटी बहर में संश्लिष्ट भावों को गज़लों में संपुट कर देने में प्रेम भारद्वाज इतना कुशल है कि कूजे में दरिया बन्द कर देने वाली कहावत 'मौसम खराब है' पर चरितार्थ हो जाती है ।

पहाड़ी कविता की विकास यात्रा के अनेक पथिक अब इस संसार में नहीं रहे किन्तु उन्होंने अपनी लेखनी से इसके साहित्य को सम्पन्न किया । वे वर्तमान पथिकों के न केवल प्रेरणा स्रोत ही हैं, प्रत्युत प्रकाश स्तम्भ बनकर अग्रसर रहने की गुहार कर रहे हैं । इस यात्रा के झंडाबरदार कुछ ऐसे कवि हैं जो उस गति से अब नहीं लिख रहे हैं जिसकी उनसे अपेक्षा है । कुछ सशक्त कवि अब जैसे लेखन से संन्यास ही ले चुके हैं । ऐसे सशक्त हस्ताक्षरों से पहाड़ी भाषा को अनेक अपेक्षाएं हैं । अस्तु, मातृ भाषा के काव्य संसार की समृद्धि के लिए उन्हें उसी उत्साह से लिखते रहना चाहिए जिस उत्साह से पहाड़ी काव्य लेखन में उन्होंने प्रवेश किया था ।

सारांश यह है कि लोक गीतों का सुदृढ़ पृष्ठाधार लिये हुए शिष्ट–पहाड़ी कविता की यह यात्रा लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पुरानी है जो भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की भांति अपनी पृथक पहचान बनाने की ललक की झलक से गामज़न

है । इसका विधिवत् प्रारम्भ सन् 1966 ई0 से ही होता है और इसे ऊबड़-खाबड़ मार्गों, टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों, विरोधाभासों, विसंगतियों, व्यंग्य-विरोधों और उपेक्षाओं से दो चार होते अग्रसर होना पड़ रहा है । फिर भी कुल मिलाकर स्थिति यथेष्ट संतोषजनक कही जा सकती है। नवीन उपलब्धियों से झोली भी भरी है, किन्तु पहाड़ी कविता की विकास यात्रा के इन विरल पथिकों की मंज़िल अभी काफी दूर है । उन्हें अपनी उपलब्धियों पर संतोष करके हाथ पर हाथ धर कर बैठना नहीं है क्योंकि पहाड़ी भाषा की रचनागत समृद्धि, विशिष्टता और सम्पन्नता के लिए गद्य की तरह पद्य के सोपान भी महत्वपूर्ण हैं ।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि –

(1) सर्वनामों के प्रयोग में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और व्याकरणिक तीनों पक्ष अर्थीय दृष्टि से संगत हैं । ये तीनों पहलू सर्वनामों के जालक्रम के निर्माण में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं ।

(2) मध्यम पुरुष सर्वनाम व्याकरणिक संरचना और अर्थपरक संरचना के क्षेत्र के बीच ऐसा संबंध स्थापित करता है जो सामाजिक संरचना में दिखाई देता है ।

(3) सामाजिक-अर्थपरक दृष्टि से जनसांख्यिकी और संदर्भपरक दोनों पहलू महत्वपूर्ण हैं ।

(4) सम्वादियों के बीच भूमिका - संबंध सार्वनामिक प्रयोग के अनुसार बदलते रहते हैं ।

पहाड़ी कहानी : एक मूल्यांकन

डॉ0 गौतम व्यथित

पहाड़ी कहानी : अर्थ एवं पूर्व परम्परा

पहाड़ी कहानी से अर्थ हिमाचल प्रदेश में लिखी और प्रकाशित हो रही पहाड़ी भाषा की कहानी है । हिमाचल प्रदेश की भाषा को व्यापकता की दृष्टि से ''पहाड़ी'' नाम दिया गया है । जो विवादास्पद हो जाता है। प्रादेशिकता के आधार पर इसे हिमाचली नाम देना सार्थक लगता है । प्रस्तुत निबन्ध में उन कहानियों तथा कहानी संग्रहों का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन अभीष्ट है जो गत वर्षों में इस भाषा में प्रकाशित हुए हैं ।

पहाड़ी कहानी की पूर्व पीठिका में लोक कथाओं की अजस्र परम्परा रही है । हिमाचल एक पहाड़ी प्रदेश है । यहां का लोक जीवन खेत-खलिहान, नदी-नालों, वन-वादियों, देवी-देवताओं, पूजा-जातराओं, छिंज-मेलों, लोक आस्थाओं, रीतियों, शकुन-अपशकुन, लोकविश्वासों आदि अनेक रंगों से रंगा है जिसका संगुफित रूप परम्परागत है । यहां के लोक जीवन में यातायात के साधनों की कमी, वीहड़ रास्तों के सफर, लम्बी यात्राएं, यायावरी जीवन, श्रम सम्बन्धी व्यस्तताएं सहज स्वाभाविक हैं । इसी परम्परा में विकसित गल्प साहित्य जहां मनोरंजन का साधन रहा वहां पीढ़ी दर पीढ़ी रीति-नीति, लोकाचार आदि सिखाता रहा ।

इस क्षेत्र में कथा सुनाने वालों को 'कात्थू' कहा जाता है । इनका तो एक प्रकार का व्यसन था-कथा सुनाना । ये सुनाते-सुनाते ही आगे की घटना सोच लेते और वह भी ऐसी कुशलता से कि चल रही कथा में, किसी प्रकार का ठहराव या बदलाव महसूस नहीं होता । घर आए प्रौहणे/अतिथि से भी कथा सुनने का रिवाज़ रहा है । कथाएं अलाव, चूल्हे या अंगीठे के आसपास आधी रात तक चलती रहतीं ।

समय की मांग भी थी । तब मनोरंजन के साधन भी तो नहीं थे । तब ऐसे लोग ही जन संचार का काम करते थे । यात्राकाल में भी कथाओं का लेन-देन होता

था । तभी तो एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में लोक कथाएं जाती रहीं । पद यात्रा की कहावत भी है – आधे रास्ते तक तुम उठा लो। आधे रास्ते तक मैं उठा ले चलूंगा । अर्थात् एक गप्प आप सुनाओ, एक मैं सुनाऊंगा। रास्ता कट जाएगा ।

इस प्रदेश की कथाएं, धर्म, लोक – धर्म, जातियों, राजपरिवारों, पशुपक्षियों, परियों, राक्षसों तथा जादू टोना आदि से जुड़ी हैं । इनके मूल्यांकन के प्रयास भी हुए हैं परन्तु अभी भी इस दिशा में शोध एवं समीक्षा की व्यापक संभावनाएं हैं ।

लोक कथाएं अपने स्वरूप में अलिखित रही हैं । सन् 1969 से पूर्व इनके लिपिबद्ध रूप बहुत कम हैं । सन् 1969 में हिम भारती के प्रवेशांक में दो लोक कथाएं छपीं । ये सोनकेसी और रूपकेसी तथा भूरी भृंग थीं । संग्रह रूप में कथाओं की साम्रगी वर्तमान समय में सन् 1970 में प्रकाशित 'पहाड़ां दे अत्थरू' (संपादक गौतम शर्मा व्यथित) में मिलती है । तत्पश्चात् शेष अवस्थी का संकलन 'स्हेड़ेया फुल्ल' छपा और कुछ समय बाद हरि कृष्ण मुरारी की 'मीठी यादें' लोक कथा परम्परा को मुद्रित रूप में लाने में सामयिक प्रयास साबित हुए । इसी परम्परा में सन् 1977 में हिमाचल अकादमी द्वारा कथा सरवरी भाग – 1 तथा भाग – 2 का प्रकाशन हुआ जिनमें कमशः 18 तथा 24 कथाएं प्रकाशित हुईं ।

किस्से सुनाने की परम्परा

पहाड़ी लोक में किस्से सुनाने की परम्परा भी चली आ रही है । प्रायः सीमान्त क्षेत्रों – पंजाब, उत्तर प्रदेश, हरियाणा तथा जम्मू प्रान्तों के किस्से कहानियां आज भी इस क्षेत्र में प्रचलित हैं । ऐंचली, अंचली, भारथ, रमैणी – पण्डवैणी, राजा हरिश्चन्द्र, राजा रसालू, पूर्ण भगत, रूपबसंत, लैला – मजनू, हीर – रांझा, कृष्ण – सुदामा आदि कथाओं को गद्य – पद्य रूप में गाने सुनाने की परम्परा रही है ।

पहाड़ी कहानी का प्रकाशन इतिहास

पहाड़ी की अन्य विधाओं की भान्ति पहाड़ी कहानी का मुद्रित इतिहास क्रमिक रूप में नवम्बर सन् 1966 के बाद ही मिलता है । राज्य भाषा संस्थान की पहाड़ी पत्रिका हिम भारती के प्रकाशन के साथ ही इसका इतिहास प्रारम्भ हुआ । इस पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित कुछ कहानियां इस प्रकार हैं :

लालुए दी समाध	(देसराज डोगरा)	मार्च, 1970
झंझराड़ा	(देसराज डोगरा)	सितम्बर, 1970
नूरां	(देसराज डोगरा)	दिसम्बर, 1970
लाग जोग	(सागर पालमपुरी)	दिसम्बर, 1970
धीए घर जा अपणे	(प्रो0 शिव कुमार)	मार्च, 1971
मुबारक होए	(कुलभूषण कायस्थ)	मार्च, 1971
कुण तां कुण सही	(बी0 आर0 भारद्वाज)	सितम्बर, 1971
सह बचारे चिड़ू	(शेष अवस्थी)	मार्च, 1972
घरमाईयां हाक्खवीं	(कुलभूषण कायस्थ)	मार्च, 1973
बसन्ती	(प्रो0 शिव कुमार)	दिसम्बर, 1973
लापता	(गौतम शर्मा व्यथित)	जून, 1974
रक्षा बन्धन	(रीता शर्मा)	मार्च, 1976
मिन्नी प्यार दी	(दीपक राज डोगरा)	मार्च, 1976
सब्बी दे बढ़िया सुपनाऽ		मार्च, 1976
कंवरानी	(काहन सिंह जमाल)	सितम्बर, 1976
आतंक	(सुशील कुमार फुल्ल)	मार्च, 1977
दिल दा बोल	(धर्मपाल शर्मा)	मार्च, 1977
औतरा	(प्रत्यूष गुलेरी)	जून, 1977
मां	(सुशील कुमार फुल्ल)	सितम्बर, 1977
साख सरबंध	(ओंकार लाल भारद्वाज)	सितम्बर, 1977
डुबदा सूरज	(सुदर्शन डोगरा)	सितम्बर, 1977
पराणियां यादां	(कर्मचन्द श्रमिक)	मार्च, 1977
पक्खेरू बोलदा रिहा	(गौतम शर्मा व्यथित)	सितम्बर, 1978
सेह मेरी ए	(योगेन्द्र सिंह वर्मा)	सितम्बर, 1978
हरे वासदेव	(शिव कुमार उपाध्याय)	जून, 1975
मगर मच्छ	(पीयूष गुलेरी)	जून, 1979
खिड़दे फुल्ल	(धर्मपाल)	जून, 1979
धरा रा थम्ब	(हरि राम जसटा)	जून, 1980
सूने चांदी रे बाग	(अमर पालशर)	जून, 1988
अन्धी जुआनी	(पूर्ण सिंह ठाकुर)	दिसम्बर, 1988
भुसर मुण्डे	(पीयूष गुलेरी)	जून, 1983
कीते दी सजा	(केहरी सिंह मित्र)	मार्च, 1983

पछतावा	(उर्मिल शास्त्री गौतम)	सितम्बर, 1984
वक्खत	(ठा0 जबर सिंह)	सितम्बर, 1984
जीवणा-मरणा	(नरेन्द्र अरुण)	सितम्बर, 1984
पहाड़ा रा दुःख	(नरेश पंडित)	मार्च, 1988
वापसी	(घनश्याम समदर्शी)	मार्च, 1988
भीखमी	(अलाव)	मार्च, 1988
वायदा	(तेज सिंह पंवार)	मार्च, 1988
तू पुत नी आ	(अमिता शर्मा)	सितम्बर, 1988
भावना	(मदन हिमाचली)	सितम्बर, 1988
देहलू	(अमिता कुमारी)	अंक 97, 1993
न्याह्ला	(संजय कुमार अवस्थी)	वही0
दुनिया दी रीत	(गोपाल शर्मा)	वही0
सयाणी अम्मा	(सुरेश कुमार)	वही0

अनुमान है कि हिमभारती पत्रिका के अब तक प्रकाशित अंकों तथा पुस्तकों में लगभग 200 कहानियां पहाड़ी भाषा में प्रकाशित हो चुकी हैं । यह संख्या पहाड़ी कहानी का आकलन करने के लिए कम नहीं है । इनके अतिरिक्त चण्डीगढ़, जालन्धर के समाचार पत्रों तथा प्रदेश के विभिन्न भागों में स्थित शिक्षा संस्थानों की पत्रिकाओं में भी निरन्तर पहाड़ी कहानियों का प्रकाशन हुआ है । पहाड़ी भाषा की पत्रिकाओं, यथा, हिमधारा, बागर तथा गिरिराज साप्ताहिक के पहाड़ी भाषा 'परिशिष्ट' में कहानियों का प्रकाशन हुआ है । बाणेश्वरी व हिमोत्कर्ष में भी कतिपय कहानियां पहाड़ी भाषा में प्रकाशित हुई हैं । जनसत्ता तथा गिरिराज में भी ऐसी कहानियां निरन्तर प्रकाशित हुई हैं ।

प्रस्तुत शोध पत्र में अकादमी द्वारा प्रकाशित कहानी संग्रहों तथा अन्य स्रोतों से प्रकाशित / उपलब्ध / कहानी संग्रहों पर चर्चा करना अभीष्ट है ।

पहाड़ी कहानी के संकलन

जहां तक पहाड़ी कहानी संकलनों का प्रश्न है अब तक निम्नलिखित संग्रह प्रकाश में आये हैं :-

1. बरासा रे फुल्ल
2. लोसरा रे फुल्ल

3. पहाड़ा रा स्नेहा
4. सीरली भ्याग
5. रींगदी पीड़ (कुलभूषण चन्द्र कायस्थ)
6. बंडेरा दे कंडे (कर्म चन्द श्रमिक)
7. लूणा दे पुले़ पर (गौतम व्यथित)
8. बुआरे (मदन हिमाचली)

इनके अतिरिक्त कतिपय और भी पहाड़ी कहानी संग्रह प्रकाशित हुए होंगे जिनका पूरा विवरण उपलब्ध न होने के कारण नाम गिनाने में मेरी असमर्थता समझें।

बरासा रे फुल्ल

प्रस्तुत कहानी संग्रह, शिक्षा विभाग राज्य भाषा संस्थान, हि0 प्र0 द्वारा सन् 1971 में सम्पादित एवं प्रकाशित किया गया । इसमें 9 कहानियां संकलित हैं :

1. ट्रेन जाणे तूड़ी	(अनिल राकेशी)
2. अदालत रोई पई	(श्री खेमराज सागर)
3. भाहीड़	(चन्द्रशेखर बेबस)
4. झासरे	(किशोरी लाल वैद्य)
5. सूखे पत्ते-हरे पत्ते	(हरि राम जसटा)
6. शम्मी फूलां रा शेर	(भीम दत्त काले)
7. सतलुजा रियां डीलां	(मनसा राम अरुण)
8. मिलि लेंगे	(पीयूष गुलेरी)
9. छुणको	(गौतम शर्मा व्यथित)

प्रस्तुत संग्रह की भूमिका में एच0 सी0 पराशर ने लिखा है-ग्राम्य जीवन का चित्रण चाहे किसी भी रूप में हो, इतना निर्विवाद है कि उच्च भावनाएं और सहज उदारता जिस स्वाभाविक रूप में हमें ग्राम्य पात्रों में मिलती हैं, वैसी अन्यत्र नहीं । ग्राम्य जीवन का सरल और निश्छल चित्रण प्रेमचन्द को अमर कर गया । . . . गांव की सोंधी सुगन्ध के इलावा कुछ जीवन्त समस्यांए भी आज के साहित्य में प्राणदायिनी हैं ।

संग्रह में संकलित कहानियों के विषय में बात करते हम 'ट्रेन जाणे तूड़ी' को आधुनिक कहानी का अकहानी रूप, 'अदालत रोई पई' को भावना प्रधान और

'भाहीड़' को धर्म भाई के सच्चे प्रेम की कहानी मान सकते हैं । झासरे में इश्क की अनुभूति तथा 'सूखे पत्ते – हरे पत्ते' में प्रेम की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है। अभागी पुत्री की कहानी दुखद घटनाओं से ओत – प्रोत है और 'फुलां रा शेर' और 'सतलूजां रीयां डीलां' में ऐतिहासिकता का ऐसा बिम्ब है जिसकी आज के कहानीकारों को बहुत आवश्यकता है । 'मिली लेंगे' में कांगड़ा का सैनिक जीवन चित्रित हुआ है और 'छुणको' में स्त्री के बांझपन की त्रासदी और पति के प्यार का अधूरापन मिलता है ।

'ट्रेन जाणे तूड़ी' में जगदीश और खेला के बीच सहज द्वन्द्व के पश्चात् प्रेम के संवेदनीय स्पर्श और तीव्र अनुभूति का होना मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यंजित हुआ है । रिटर्न टिकट के तलाश के उलझाव में बने जिज्ञासु मानस में ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

'बैलां बतावन्दी रौबी जे शिमला बड़ा पशीन्द आया रो एब सी हर साल शिमले आयों करती । पर ऐब्बी तो मेरी बारी थी तिन्नी रे घेरे आवणी री । कन्नों बातों में शीटी बाजी गोवी । पोयली तब दूसरी । हां हुंदा उतरी गवा । अच्छा तो जगदीश! ख्यालें में छुन्दो जरूर आवणु । तब हां बी आऊंगी त्हारी साथी बर्फ देखणी ।' और 'तिण डाब्बे रे हैंडलो पांदे राखा मेरा हाथ खोली सी दबाए दिया । ट्रेन सरकणा लागी । हां, आपणी पेटो री चोट डाक्टरों री टकानी गेई रो घरे जाई । डाब्बा आगे निकल गया था ।'

पहाड़ पर आए सैलानियों से अकस्मात् जुड़े संयोग का अनायास प्रेमानुभूति के सलोने तन्तुओं में उलझ जाना और पुनर्मिलन की अनन्त चाह में पर पीड़ा में व्यथित होकर अपनापन जताना मानव की सहजात प्रवृत्ति है । यह कहानी उसी को रोमांटिक ढंग से जोड़ती पहाड़नों की त्रासदी को एक और स्वर दे जाती है ।

इस संग्रह में सबसे छोटी किन्तु सबसे मार्मिक और कहानी की तहज़ीब पर रची कहानी है – 'अदालत रोई पई' । खेमराज गुप्त ने समकालीन समय की – मनुष्य के प्रति बढ़ती बेरुखी और स्वार्थ को अति संवेदनीय ढंग से व्यंजित किया है । बूढ़े का गांव के बच्चों को इकट्ठा करके उनसे 'पुत्तर' शब्द सम्बोधन सुनने की बलवती इच्छा, कपटी और दुष्ट लोगों का उसे कचहरी के कटघरे में खड़ा करके ज़लील करना, उस पर वकील के माध्यम से सज़ा दिलाने की पुरज़ोर कोशिश करना, समसामयिक तथा सामान्य घटनाओं का चित्रण है । परन्तु बूढ़े के बयान से सारे दोष गहन संवेदना में बदल जाते हैं।

ये पंक्तियां देखिए :

''मिन्जो जरूर चेता है, जिस बेले मैं पंज्जां सालां दा था – तां डाकुआं मेरे मां बाबा जो मेरे सामणे ई मारी दिता था । उन्हांदी तड़फदी देहा दा चेता हाले बी मिंजो है । मैं कणका दी पेटिया अन्दर लुकेया दा एह सारा तमाशा दिखदा था – मेरे मां बब्ब मेरे ई सामणे तड़फी – 2 करी मरी गे थे सरकार । मेरे दूरे पारे दे नातेयां मिन्जो अप्पू का रखेया जरूर पर तिन्हां मिंजो बड़ा भारी सताया, मिंजो भुक्खा रखेया, मारया, कुटेया ते रज्जी रोटी कदी वि नी दित्ती । इक दिन मैं दुखी होई के घरा ते न्हसी गिया । सेह दिन ते एह दिन सरकार . . . मिंजो इक चाहण सदा ई रही । जे कदी मेरी मां हुन्दी, बब्ब हुन्दा तां मिन्जो जरूर लाड़ प्यार अन्दर बेटा या पुत्तर करी बोलदे । . . . मैं मुहल्ले देआं निक्के याणयां किठ्ठा करदा – ते उन्हां दे मुहां का अप्पू ताई बेटा लफ्ज सुणदा इहयां मैं अपणी – चाहत पूरी करदा थी माई – बाप ।''

'झासरा' एक प्रतीकात्मक कहानी है । यह ऐसे व्यक्तियों का प्रतीक है जो अपने संसर्ग के प्रभाव से दूसरों का चैन हराम कर देते हैं । पहाड़ी समाज में कभी कमी नहीं रही ऐसे लोगों की । मोहनी के मन को भी ग्रस गया है झासरा, तभी तो उसे हर जगह होता है एहसास उसका ! और उसका प्रभाव भी ऐसा कि कपड़ों के भीतर भी पहुंच जाता है । जितना उसे झाड़ा – खुजला जाता है उतना ही फैलता है उसका प्रभाव सारे बदन में । इसी अशंका में वह पति की पीठ पर उसका प्रभाव देखने को कहती है । वह भी व्यंग्य कसता है –

''क्या हुई रा ? रावते पुछया ।''

''कैथ की झासरा चासी गया रांडा रा । लुका रे मारे मोहनी रा बुरा हाल थिया। मोहनी सारे कपड़े उतारी करी देखणे लागी । पर झासरा नज़र नी आया । क्या जी ? मेरी पीठ तां देखा । से लुकदे – लुकदे बोली ।

रावते मजे – मजे तेसारी पीठी पर हाथ फेरदा लगया, ए, तां खरा हुआ जे झासरा भीतर नहीं फसया । कपड़े जो ही साची कने निकड़ी गया ।''

और अंत में मोहनी के ये शब्द– ''खरा हुआ जे रावते हाऊं दयाला री साइकला पर आऊंदी नी देखी । मोहनिया सोचेया ।''

पहाड़ी रियासतों की मुगलकालीन स्थितियों को उकेरती है – ''सतलुजारियां डीलां'' । इस कहानी में प्रो0 मनसा राम अरुण ने इतिहास और मनोविज्ञान को बड़ी तकनीक से बुना है । जिन्दूं पेउड़ी गांव का निवासी है । उसका व्यवहार डाकू बज्रसिंह के चरित्र को बदल देता है । उसके घर में टिका बज्रसिंह जब कुछ खाता – पीता नहीं तो वह इसका कारण जानने हेतु अनेक प्रश्न करता है । परन्तु

वह भूख से मना करता है । उसके मन में अनेक सवाल हैं जिन्हें वह जिन्दू से यूं पूछता है –

''तिजो कदी वी बेचैनी नी हुन्दी ।''

''बैचनी केढ़ी ?''

''तां जे बेचैनी हुआं ही अन्दर ताँ इत्थी छातिया रे थल्ले अग्ग जे ही म्हसूस हुआं ही ।''

हऊं नी जाणदा एहड़ियां गल्लां ।''

''किसी ने लड़ाई हुई जाणे ते बाद वी बेचैनी हुई जाहीं ।

''हऊं नी लड़दा किसी ने ।''

''बांकियां जनाना जो देखी ने मने अन्दर किछ हलचल हुन्दी ।''

''मेघलू जो देखी ने ।''

बज्रसिंह को जिन्दू के उत्तर हृदय में कहीं गहरे जाकर बेंध जाते हैं । वह सोचता है, कितना सुखी है जिन्दू ! और मैं कितनी बेचैनियों से भरी हुई ज़िन्दगी जी रहा हूं । अन्धेरे में रहता हूं । प्रकाश में आने से डरता हूं । कितने बदल जाते हैं जिन्दू के ये शब्द उसके चरित्र को, ''यदि तू नहीं खाएगा तो मैं भी नहीं खाऊंगी ।'' इसी सोच में वह अपने माथे को बार-बार पीटता है । उसे आत्मग्लानि होती है – आखिर उसने इस शान्त घर को बेचैन क्यों कर दिया है । आखिर उसमें ऐसा क्या है कि कोई देखते ही डर जाता है उससे ! परन्तु जिन्दू अपनी पत्नी 'मेघलू' को उसके सामने करते हुए कहता है –

''एह तां तेरा भाई हा, भूत, नी ।''

और उसके मुंह से भी सहसा निकलता है – ''बैहणी तूं मांह ते कैंह डरा हीं।'' और वह भी इतना कहती है – 'न्हेरे थे तुसे बैठीरे मिन्जो सुझे ही नी ।' (पृ0 37) और जब उसका पुत्र उससे पूछता है तो कहती है – ''पुत से भूत नी था । से तेरा मामा था । हुण तिस हटीने कदी विनी आऊणा असांगे ।''

कृतज्ञता में बज्र सिंह पेउड़ी ग्रांओं की बंजर भूमि को खेती योग्य बनाकर सतलुज की जल लहरियों में समा जाता है । अंधेरे से सदा-सदा के लिए बचने हेतु।

इतिहास और कल्पना की ज़मीन पर लिखी यह एक सफल मनोवैज्ञानिक कहानी कहलाने का हक रखती है । इस संग्रह की एक लम्बी कहानी होने पर भी कथ्य एवं शिल्प से मंजी हुई है ।

'छुणको' उस पहाड़न की कहानी है जो बांझपन का बोझ सहती अपने पति के प्यार की प्रतीक्षा में राह बिसूरती तिलतिल गलती रहती है । उसका विसून एक

न एक दिन उसके दरवाज़े पर अवश्य दस्तक देगा इसी विश्वास पर जी रही है छुणको । परन्तु न केवल वह, बल्कि सारा परिवार अब कलासो के प्रति ही आकृष्ट है क्योंकि उसने पति को पुत्र और सास को पौत्र दिया है । औलाद के प्रति अधिक सचेत रहे हैं पहाड़ के परिवार । शायद तब स्त्रियों को ब्याह कर लाने के पीछे मात्र यही सोच थी पहाड़ी समाज की ।

'मिली लेंगे' कहानी पहाड़ के सैनिक जीवन को उकेरती उस नारी व्यथा को रूपायित करती है जो विवाह होने पर भी सास के कटु व्यवहार के कारण अपने उस पति से जी भर बतिया नहीं पाती जिसे लड़ाई के कारण तुरन्त लौटना पड़ता है । परंतु जाती बार वह इतना कह गया है 'मिली लेंगे' । इन्हीं शब्दों को गांठ में बांध कर जी रही है, पागल सी हो गई है बेचारी । जब भी गाड़ी की सीटी बजती है वह स्टेशन की ओर भागती है, परन्तु उसका करमचन्द गाड़ी से नहीं उतरता । कुल मिलाकर इस संग्रह की कहानियों में कथ्य विविधता एवं शिल्प सौंदर्य का निर्वाह मिलता है । भाषा की सहजता में भी उत्तरोतर विकास हुआ है । हर कहानी में स्तरीय होने की सामर्थ्य है ।

लोसरा रे फुल्ल

इस संग्रह का प्रकाशन सन् 1977 में भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि0 प्र0 शिमला द्वारा हुआ । इसमें 38 कहानियां संकलित हैं । इस संग्रह में 21 नये कहानीकार भी सम्मिलित हैं । कहानियों का कम इस प्रकार है :

1.	बरखा अचानक आ गोई	(विष्णु शर्मा)
2.	भुभल़	(मस्तराम कपूर)
3.	बोलती मूर्ति	(रमेश चन्द शर्मा)
4.	पाणी चढ़ना लगूरा था	(सुशील कुमार फुल्ल)
5.	जोगणी	(चन्द्रशेखर बेवस)
6.	इक रूपेइए दी भान	(कुलभूषण कायस्थ)
7.	सै थी माधुरी	(नरेन्द्र अरुण)
8.	चेला	(दलीप वर्मा)
9.	बाजड़	(बालकराम भारद्वाज)
10.	पिस्तू	(केसरी लाल वैद्य)
11.	जागले	(मौलू राम ठाकुर)

12. चबाटा	(मनसाराम अरूण)
13. तरीजा रलेया घर गलेया	(कृष्ण कुमार नूतन)
14. मोयना	(खुशीराम गौतम)
15. अणपछती रूह	(गौतम शर्मा व्यथित)
16. गोबरो रे गंध	(चेतराम भारद्वाज)
17. सत्तो	(ओम प्रकाश प्रेमी)
18. जागदे बुझदे छौंटे	(पीयूष गुलेरी)
19. असली सुर्ग	(ओंकार लाल भारद्वाज)
20. जंग बहादुर	(कमल वर्मा)
21. अधखिला कमल	(कश्मीर चन्द मलकानिया)
22. हिर्ख	(कांशीराम पठानिया)
23. शक्ल, सीरत होर हैसियत	(खेम चन्द सैनी)
24. मुसीबत	(धर्म चन्द)
25. याद	(बालकृष्ण चौहान)
26. इंहां ही हुंगा	(भगत राम मुसाफिर)
27. किलो चीनी	(बंशीराम शर्मा)
28. प्यारो री फिटक	(भीम दत्त काले)
29. सूने री खूंडी	(मंगल चन्द ठाकुर)
30. चायी रा प्याला	(राम चन्द्र शर्मा)
31. खाली बिन्ना	(रूप शर्मा निर्दोष)
32. करसाण	(रूप शर्मा)
33. तड़फते दिलड़ू	(आर0 एस0 चन्देल)
34. वादां रे घेरे च	(वेद प्रकाश अग्नि)
35. दो रूप	(शमी शर्मा)
36. कलछणी	(शेष अवस्थी)
37. निहालप	(श्री कान्त प्रत्यूष गुलेरी)
38. त्रीमत	(हरि प्रसाद सुमन)

इस संकलन की कहानियों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर बुनी कहानियां, आदर्शोन्मुख-सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन से जुड़ी कहानियां, प्यार की कोमल भावनाओं को उकेरती कहानियां तथा पहाड़ी जनमानस में व्याप्त रूढ़ियों तथा अंध विश्वासों की कटु आलोचना करती कहानियां कहा जा सकता है । इन कहानियों

में व्यावहारिक आदर्श भी मिलता है । इस संकलन में परिवेश की स्वाभाविक विशिष्टताएं भी अपने मुहावरे में और भी तीव्र होकर मुखर हुई हैं । हिन्दी में निरन्तर लिख रहे कहानीकार भी पहाड़ी की ओर मुड़े हैं । परिणामत: हिन्दी कहानी की सोच भी पहाड़ी कहानी को समृद्ध करने लगी है । लोक कथा परिपाटी से हटकर पहाड़ी कहानी का नयी कहानी से जुड़ाव होने लगा है । आज की पहाड़ी कहानी शिल्प सौन्दर्य से सजने लगी है । इस संकलन की कुछेक कहानियां चर्चा की अपेक्षा रखती हैं । यद्यपि विषय विस्तार का भय निरन्तर बना हुआ है, परन्तु संक्षेप में कुछ कहानियों पर चर्चा करने का लोभ संवरण कर पाना सम्भव नहीं है।

मस्तराम कपूर उर्मिल की कहानी 'भुभल़' गद्दियों के यायावरी जीवन से जुड़ी कहानी है जो दशकों पूर्व उन द्वारा जान्दर देश के बड़े घरानों में रहते, जीविका कमाते, उनके सब अत्याचारों को, जिन्हें कहने या प्रतिवाद की समझ रखने पर भी वे कह नहीं पाते और सहते जाते हैं । उनके भीतर निरन्तर आक्रोष एवं प्रतिशोध की आग जल रही है जिसमें वे कालान्तर में स्वाहा हो जाते हैं ।

सिरिस्तु की कहानी के माध्यम से संभवतया कहानीकार ने उसी युग के सत्य को कहने का सफल प्रयास किया है । सिरिस्तु का इतना ही कसूर था कि उसके लड़के को मुंगरी की लड़की 'भरी' चाहने लगी और अंतत: दोनों वहां से भाग निकलने को मजबूर हुए क्योंकि गांव के लम्बरदार का मन अब मुंगरी से भर चुका था और उसकी यौवन की पहली दहलीज़ पर कदम रख रही पुत्री 'भरी' के प्रति ललचा उठा था । लम्बरदार इस सब को सह नहीं सका और थानेदार के माध्यम से इसे इतनी सज़ा देता है कि उसकी हड्डी पसली नाकारा हो जाती है ।

बुढ़ापे में शरीर के दर्द और भी बढ़ जाते हैं । चूल्हे के पास बैठे उसके मन में अतीत की वे सारी घटनाएं सिने रील सी तैर जाती हैं । जलती लकड़ियों की सी-सी आवाज़ में उसे अपनी बहु की जी, जी सुनाई देती है जिसे सुनने की चाह लम्बरदार के आतंक के कारण उसके मन में दबी रह गई । प्रतिकार से उसका मन इतना भारी है कि उसकी कमरी से भड़कती आग में पड़ती तिड़-तिड़ करती जूएं लम्बरदार की हड्डियों के जलने का आभास देती हैं । उसका पुत्र खत लिखकर जाने का संकेत देता है परन्तु वह अन्त में इतना लिखवाती है -

''मेरी चिन्ता नी करनी और ग्रांएं जो तदी तक वापस मत औंदे जदी तक इस देसे च लम्बरदारां थानेदारां दा राज है ।''

नरेन्द्र अरुण की कहानी माधुरी में फिल्मी कहानी की तासीर मिलती है । रिटायर होने के बाद सेठ बनारसी दास भून्तर में बस गया है । बगीचे का मालिक भी है । दिनेश उसका लड़का है । माधुरी एक किन्नौरी परिवार से है जो

बीस-पचास बरस पहले रोज़गार की तलाश में कुल्लू आया और यहीं बस गया । दिनेश और माधुरी छात्र हैं, उन दोनों में प्रेम हो जाता है । जितेन्द्र दिनेश का मित्र है, वह उनके दर्द को जानता है । दिनेश के पिता इस रिश्ते को नहीं मानते, उसे कुछ कमाने के बाद घर बसाने का ताहना मारते हैं, जिससे वह चण्डीगढ़ चला जाता है । पीछे से माधुरी का ब्याह कहीं दूसरे से करने का निर्णय होता है । दिनेश को पता चलने पर वह मनाली की बस लेता है जो मार्ग में व्यास नदी में लुढ़क जाती है ।

माधुरी इस कारण पागल हो जाती है और सदैव उस डिबिया को संभाले रहती है जो उसने जगदीश के लिए सिन्दूर से भरी है । अंततः इसी पागलपन में वह सेठ की कार के नीचे आकर पिस जाती है । रहस्य का बोध होने पर सेठ पश्चाताप की आग में जलने लगता है । अतः यह कहानी आर्थिक असमानताओं के कारण बलि होते प्रेमी जोड़ों की पारम्परिक कहानियों से जुड़ जाती हैं ओर चेता जाती है उन सभी परिवारों को जो ऐसी रूढ़ियों से ग्रस्त हैं !

दिलीप वर्मा ने अपनी कहानी 'चेला' में शीर्षक की सार्थकता का निर्वाह करते हुए पहाड़ी समाज में इस अन्धविश्वास को तोड़ने का सफल प्रयास किया है । मनोहर आधुनिक विचारधारा का प्रगतिशील चरित्र है । बौगर की लाड़ी फतूरिए और चेले की मिली भगत से इस प्रकार अपने जीवन से हाथ धो बैठती है, मनोहर इस रहस्य को फतूरिए से सहजता में उगलवा देता है । स्वभाव से डरू भी होते हैं ऐसे लोग । दण्ड या कानून का थोड़ा सा भय दिखाने पर सब कुछ सच-सच बक देते हैं । अपनी पोल खुलने पर उस जगह से पलायन कर जाते हैं । ऐसे ढोंगियों का चरित्र बताती है यह कहानी, जो पहाड़ के यथार्थ से जुड़ा सत्य है ।

' अच्छा पापिया ! तैं न मरने जो रखी न जिउणे जो । एढ़े चबाटे च खरेड़ी दित्ती जिते चहुं पास्यां जो वाटां जाया करदीयां, पर हऊं कित्ती रवा मनी जाई सकदी । ''

यह स्वकथन है मनसाराम शर्मा अरुण की कहानी 'चबाटा' के पात्र प्रेमी का । इस कहानी में संस्कृति का सुगन्धित रूप मिलता है । प्रसंगवश आई लोकगीतों की कड़ियों ने भी गद्दी जीवन की संवेदना बढ़ा दी है । इस कहानी में भाषा की पकड़ अद्भुत है । साथ ही मिलता, कुरेदता है प्रेमिया के भीतर का दुख, जिसकी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में मिलती है . . . सह तपस्वी पत्थरा साही कठोर जिन्दगी बताया करां हा । फांगुए ने रस्सी बाटणी, चलदे-घिरदे तड़िया पर उन्ना रे धागे बट दे रहणा, भ्यागा ते लई संझ के जूना तिक जंगलें भेड़ां चारदे रहणा, फेरी जेहड़ी सुक्की-सिन्नी मिली तेड़ी रोटी खाई ने सई रहणा, तिसा रा हर तरीके ने ख्याल

रखणा । . . . अज्ज प्रेमी अपणे पौड़े बैठीरी सोच्चा करदी की भलै कैंह नी तिसरा जेठ नपदा । तिसा रे ग्रांओं रीआं कई विधवां गद्दणी झंजराड़े स्वीकारीले, सेयो डोरियां लगी गईयां तां से कैंहनी तित रस्ते पई जांदी । कथ्य की बनावट, शिल्प सौन्दर्य, भाषिक संवेदना की दृष्टि से 'चबाटे' इस संग्रह की एक अच्छी कहानी है ।

केसरी लाल वैद्य की कहानी 'पिस्तू' निबन्ध अधिक लगती है । यह कहानी कांगड़ी भाषा के ठेठ रूप, दशकों पूर्व इतिहास के बिम्ब तथा लोकाचार को शब्द देती है । स्मृतियों एवं वर्णन मोह से ग्रस्त यह कहानी स्मृतियों के सफर में इतनी उलझ जाती है कि भाषिक प्रयोग का चक्कर मूल कथानक को कई बार निगल जाता है, तथापि यह कहानी भाषा वैज्ञानिकों तथा इतिहासविदों को पर्याप्त सामग्री जुटाती है ।

कुलभूषण कायस्थ की कहानी 'रूपैऐ दी भान' नगर के उस मजदूर की मानसिकता को उकेरती है जो आदतन झूठ बोलने, ठगी करने, बहाने घड़ने में माहिर है । पत्नी की सख्त बीमारी, उसके पास एक ऐसा बहाना है जिससे सुनकर हर कोई पसीज उठता है । वह प्रोफेसर से दो बार यह झांसा देकर पैसे ठगता है कि वह सरकारी डिपू से खांड और घी बाज़ार से आधे भाव में लाकर देगा । दूसरी बार वायदे के मुताबिक जब वह वस्तुएं लेकर नहीं लौटता तो प्रोफेसर इसकी छानबीन करता है और उसकी असलियत एक दुकानदार से खुल जाती है । वह उससे पैसे वसूलने की कोशिश करता है । जेबें तलाशने पर भी 40 के बदले एक रूपेए की भान ही हाथ लगती है । वह उस पर ही संतोष करता कहता है - जलते घर के कोयले ही सही ।

नूतन की कहानी 'त्रिज्जा रल़ेया घर गल़या' दो मित्रों के परस्पर सम्बन्धों में दरार हो जाने का संकेत तब देती है जब कमरे के बीच प्लाई वुड की दीवार खड़ी हो जाती है । सुधीर और सुभाष तब तक एक थे जब तक सुधीर की पत्नी नहीं आयी थी । उसके आते ही सुधीर भी यह महसूस करने लगता है कि सुभाष को उनके कमरे की पार्टीशन में अब नहीं रहना चाहिए क्योंकि विवाह के बाद पति-पत्नी के बीच बात-चीत के अतिरिक्त और भी कुछ होता है । जिसे सुभाष को नहीं देखना-सुनना चाहिए । सुभाष यह सब सुन लेता है तथा उनके कहने से पूर्व ही कमरा छोड़कर चला जाता है । अतः कहानी का आशय आम है, 'त्रिज्जा रल़ेया घर गल़या' ।

पहाड़ के व्यावहारिक आदर्शों को वाणी देती है - डा0 बंशीराम शर्मा की कहानी जिसमें पुनीत रिश्तों की पकड़ है, पहाड़ी मिट्टी तथा मेल-मिलाप की

सौंधी-सौंधी गन्ध है । साथ ही उन आदर्शों की ओर भी संकेत है जिन पर पहाड़ को आज भी गर्व है । किलो चीनी दो अपरिचितों- (पटवारी और स्याणी) को एक रिश्ते में बांध लेती है । इस कहानी का कथानक फ्लैश बैक के शिल्प में विकसित हुआ है । यह पहाड़ में आठ साल की लड़की के साथ साठ साल के मर्द से ब्याह होने का संकेत भी देती है । आदर्शवाद से जुड़ी है यह कहानी । इस संग्रह की कहानियां कुल मिलाकर स्तरीय कहानी कला की ओर उन्मुख दिखाई देती हैं ।

पहाड़ा रा स्नेहा

हिमाचल प्रदेश भाषा-संस्कृति अकादमी द्वारा संपादित यह संग्रह सन् 1995 में प्रकाशित किया गया है । इसमें तीस कहानियां संकलित हैं । इनमें से कुछ हैं :

1. अम्मा (भगवान चैतन्य)
2. तकदीर (प्रकाश चन्द धीमान)
3. खुशी (हंसराज भारती)
4. तरहेल (संसार चन्द प्रभाकर)
5. त्याग तेस तपस्वी रा (नरेन्द्र अरुण)
6. पछतावे रे आंसू (मोती लाल घई)
7. इक बुटे रा बलिदान (अमर सिंह रणपतिया)
8. नीले छज्जे वाली छोकरी (नरेश पंडित)
9. बघैल (आत्मा राम रंजन)
10. मोती रा देऊ (अमर पालशर)
11. नाता-पनारा (तारा नेगी)
12. सुक्सैली (ध्यान सिंह चौहान)
13. चुप रे फिल्म शुरू होइ गई (नेम चन्द कश्यप)
14. लोआद (गोपाल शर्मा)
15. किस्मतो रा पलटा (सुशील वर्मा)
16. जलवा (ओम प्रकाश राणा)
17. दादी अम्मा (अमिता शर्मा)
18. अंधे री लाठी (मदन हिमाचली)
19. छाड़ ढिलकी तां कैंह (कर्मचन्द श्रमिक)
20. ममता (राजेन्द्र कौशल)
21. कर्ज (भूप सिंह रंजन), आदि

संपादकीय टिप्पणी में श्री सुदर्शन वशिष्ठ ने लिखा है . . 'यह कहानी संग्रह कहानी प्रतियोगिता में आई कहानियों के साथ अन्य कहानियों का समावेश है । ऐसी कहानियों से यह उम्मीद बनती है कि ये रचनाएं पहाड़ी साहित्य की यात्रा में मील पत्थर साबित होंगी ।'

इस संग्रह की भूमिका में श्री देसराज डोगरा ने लिखा है –'प्रस्तुत कहानी संग्रह नए-पुराने लेखकों की कहानियों का संग्रह है । इनमें हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के रीति-रिवाजों, रहन-सहन, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि का सुन्दर वर्णन है । इनमें स्थानीय समस्याओं के अतिरिक्त देश-भक्ति, नारी संघर्ष, उत्तरदायित्व, कुरीतियों, वाह्य आडंबर आदि विषयों को भी लिया है '।

संग्रह में भगवान चैतन्य की कहानी 'अम्मा' पहाड़ की उस नारी की कहानी है जो परिवार के हर सदस्य के प्रति चिन्तित रहती है तथा हर स्थिति से जूझती, टूटती है । केवल संवेदनशील है तो मात्र उसका छोटा बेटा जो उसकी हर बात के मर्म को पहचानता है । वह उसके जीते जी कोई महत्व नहीं देता उसकी बातों को, परन्तु उसके जाने से जो खालीपन महसूस होता है, उसका कोई विकल्प नहीं है । 'अम्मा' उन सभी महिलाओं के प्रति संवेदना बढ़ाती है जो प्राय: कच्ची उमर में मां बनतीं, परिवार के बंटवारे में उपेक्षित होतीं, अनेक रोगों के पंजे में जकड़न महसूस करतीं अंतत: मन में आशाओं, आकांक्षाओं की पोटली बांधे चल बसती हैं । लोक भाषा की विशेषता मुहावरा प्रयोग में है, जिसका निर्वाह इस कहानी में खूब मिलता है ।

हंसराज भारती की कहानी 'खुशी' में मनुष्य की पैसा कमाने की होड़ का वर्णन है जिसमें असली सुख खो जाता है । रणजीत की पत्नी कान्ता उसे बार बार मना करती है, विदेश न जाओ । क्योंकि सारी चाहें स्वदेश में भी तो पूरी हो जाती हैं, फिर भटकाव क्यों? परन्तु रणजीत के मन पर तो भूत सवार था – खूब पैसा कमाने का – अत: कान्ता को अनसुना करके वह विदेश चला जाता है । खूब पैसा कमाता है परन्तु घर में उसकी प्रतीक्षा करती, उसकी ममता को तरसती उसकी पुत्री चल बसती है । एक ऐसा अवसर भी आता है जब वह अपनी पुत्री को भूल बैठता है । कथाकार का यह व्यंग्य दृष्टव्य है . .

'ढऊए कमाणे रे चक्कर मंझ इतना डूबी गईरा था कि सारे नाते, रिश्ते भी भुली गईरा था । '

पहाड़ की सोच में पैसे की अपेक्षा घर गृहस्थी के सुख सौन्दर्य का मूल्य कहीं अधिक है । सुख यहां पैसे से नहीं तोला जाता । सुख एक साथ जीने तथा इस संसार के हर सुख-दुख को एक साथ भोगने बांटने में है । बच्चे के लिए तो पिता

के पैसे से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है उसकी ममता, स्नेहसिक्त संवेदना, जो उसकी हर भूख को मिटा देती है ।

नरेश पंडित की कहानी 'नीले छज्जे वाल़ी छोकरी' एक रोमेंटिक कहानी है । छज्जे पर बैठी राणी, सन्तरे लेने के लिए आती है तो वह चालाकी से उसे एक सन्तरा भेंट करके अपना मध्यस्थ बना लेता है । इसी भाव में बाजार से गुज़रती बारात में वह सोचता है मानो उसकी राणी/छज्जे वाली छोकरी लाल दुपट्टे में जा रही है । यह कहानी स्वरूप में छोटी होने पर भी दीर्घ कालीन संवेदना बांटती है । कथा गठन की दृष्टि से एक स्वस्थ कहानी है, 'नीले छज्जे वाल़ी छोकरी' । पहाड़ी कहानी के शिल्प-सौंदर्य का सुंदर नमूना भी ।

'काली भेड़' कहानी देव आस्था से जुड़ी है । देव पूजा में पहाड़ के जीवन की गहरी आस्था है । लोग धर्म की बीमारी को लेकर अलग-2 अटकलें लगाते हैं । वैद्य तपेदिक बताता है तो ज्योतिषी भाग्य का खेल । भोली की नज़र में काली का खोट है । कुंवारी लड़की के रहते मरना अनिष्ट है । विरमा को चिन्ता है परन्तु धर्मू शादी करने को तैयार हो जाता है । इस करिश्मे को मन्दिर की काली भेड़ की कृपा माना जाता है । यह सारे गांव के लिए शुभ है ।

कर्मचन्द श्रमिक की कहानी 'छाड़ डिल्की तां कैंह' समाज में व्याप्त अंग्रेज़ियत के प्यार से जुड़ी है । माधव का अपने बच्चे को अंग्रेज़ी सिखवाने का मोह है । हिन्दी में बात करना उसके विचार से घटियापन है । परन्तु उसके हर्ष का ठिकाना नहीं रहता जब माधव के पुत्र का निमन्त्रण पत्र पहाड़ी में मिलता है । उसके घर में पूरा पहाड़ी सभ्याचार मिलता है । इस परिवर्तन का मूल प्रेरक वह अपनी पत्नी को ही बताता है । श्रमिक ने समकालीन समस्या को सहज ढंग से उठाया है । कहानी का शीर्षक प्रतीकात्मक है जिसे अच्छी तरह निभाया गया है । छाड़ (नदी को पार करने हेतु पानी में टिकाए पत्थर) का एक दम हिल जाना, पक्के इरादे में सहज-अचानक परिवर्तन आने का प्रतीक है जिसका निर्वाह इस कहानी में उद्देश्य सांकेतिक करने में सहज सफल हुआ है । मदन हिमाचली की कहानी 'अन्धेरी लाठी' एक सामाजिक कहानी है । समाज् में लड़की का पढ़ा लिखा होने पर एक अच्छे घर-वर मिलने की सम्भावना, नारी शिक्षा की अनिवार्यता पर बल देती है । नीलम को जितना प्यार और प्रोत्साहन अपने बापू से मिला उतने ही चाव से वह भी उसे बुढ़ापे में अपने साथ रखकर अन्धे की लाठी साबित होती है । आधुनिक पारिवारिक जीवन के बदलते प्रतिमान, उससे बढ़ते मानसिक तनाव और मनोरोग का शिकार बनी रेखा के जीवन को यह कहानी 'उपन्यासा रा पहला पन्ना' सही ढंग से उकेरने में सफल हुई है ।

ओमप्रकाश राणा की कहानी 'जलवा' में मुहावरेदार भाषा का ठेठ प्रयोग मिलता है । होरू का जीवन आपत्तियों में भी सब्र-संतोष से जीवन जीने का सन्देश देता है । 'किस्मतो रा पलटा' , सुशील शर्मा की कहानी लोक कथा के समानान्तर कहानी है । गोपाल शर्मा की कहानी 'लोआद' उस कथ्य को समेटे है जिसमें बाप अपने जीवन में हर कष्ट सहता पुत्रों की पालना करता है, तथा समाज में भाग्यवान कहलाता है । परन्तु भाग्य की विडम्बना यह कि पत्नी की मृत्यु के बाद कोई भी पुत्र उसे पूरी तरह रखने को तैयार नहीं होता और जब बारी-बारी से रखने का निर्णय होता है तो उसे पुत्र से बीड़ी मांगने पर बहु से ये शब्द सुनने पड़ते हैं - 'असां रोटियां तांई हां कीती थी, वीड़ियां दा खर्चा स्हांझो नी पुगदा ।' जीवन के शेष सफर की यात्रा में जब उसकी भेंट एक अन्य परिवार के बूढ़े -बुढ़िया से होती है तो वे भी औलाद के सताए मिलते हैं । उनके दिल में भी दर्द था। आधुनिकता के प्रभाव में सामाजिक रिश्तों के प्रति बदलती मानसिकता का शब्द देती है यह कहानी ।

मोतीलाल घई की कहानी 'पछतावे रे आंसू' यथार्थोन्मुख आदर्शवादी कहानी है । इसका कथ्य इस संग्रह की ममता कहानी के समानान्तर ही है । पहाड़ में दूसरों के बहकावे में बुद्धि कैसे नष्ट कर जाती है हरी-भरी गृहस्थियां? कैसे भाई-भाई परस्पर शत्रु बन जाते हैं ? यह कहानी सपाट ब्यानी से इसी समस्या को उकेरती है । सच्चे और साफ दिल वाले इन्सान की भगवान भी चिन्ता करता है । अन्त समय में ईश्वर उसकी सहायता करता है । इसी सनातन सत्य और पहाड़ी जन मानस के विश्वास पर प्रकाश डालती है - अमरसिंह रणपतिया की कहानी 'इक बूटे रा बलिदान' । पब्बर नदी के किनारे धर्म आस्था से धर्मान्धता को शब्द देती है कहानी 'त्याग तेस तपस्वी रा' । नरेन्द्र की यह कहानी रूढ़ियों को तोड़ती है । संसार चन्द प्रभाकर की कहानी 'तरहेल' स्त्री चरित्र को उद्घाटित करती है ।

'अच्छा । पांजूआं ब्याह करी लया मुए अहन्ने साहुकारे । फिटेमुंह इन्हां कंजरां रा । लोकां री गरीबी ते भी लेपणे रा फैदा चुकाहें । खरी माठी देक्खी कैस्सी पासे कि लग्गी जाहें खसमखाणे डोरे पाणे । अपणी घरारी जवान जवान छोहरियां री सरम बी नीं रही इन्हां जो । भई बड्डा नैहब हुई गईरा इन्हां पहाड़ा चबी ।' प्रकाश चन्द धीमान की कहानी 'तकदीर' पहाड़ में प्रचलित इस कुप्रथा की ओर संकेत करती है । अधिकांश कहानियां कुल मिलाकर ठीक-ठीक कही जा सकती हैं ।

सीरली भ्याग :

पहाड़ी कहानी संग्रह सीरली भ्याग का प्रकाशन सन 1994 में हुआ। इसे हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी ने प्रकाशित किया है। इसमें निम्नलिखित कहानियां संकलित हैं :

1. विरक्तानन्द	(खेमराज गुप्त सागर)
2. छेक छकाड़ा	(पीयूष गुलेरी)
3. नूरां	(देसराज डोगरा)
4. चिन्टा	(शमी शर्मा)
5. मोती रे आशु	(चन्द्रमणि वशिष्ट)
6. म्हारे पट्टू म्हारा देश	(प्रो० नारायण चन्द पराशर)
7. चफरोल	(गौतम शर्मा व्यथित)
8. सूने री खुंडी	(मौलू राम ठाकुर)
9. झूठा मोह	(अमर सिंह रणपतिया)
10. वापसी	(नरेन्द्र अरुण)
11. रामू	(काहन सिंह जमाल)
12. धुखदा गोहटू	(सुदर्शन डोगरा)
13. मणकू	(बंशीराम शर्मा)
14. तपणी	(ओमप्रकाश सारस्वत्)
15. श्राप मुक्त	(मोती लाल घई)
16. नन्हकू ग्वाला	(हरिराम जसटा)
17. रोटिया रे चार ग्राह	(प्रत्यूष गुलेरी)
18. तोरशटे जीऊ	(विद्यानन्द सरैक)
19. चन्दरौली	(नीलमणि उपाध्याय)
20. भगवान चूपा नांई	(सुमित्रा रणावत)
21. सदामे रे हड़कू	(कमल हमीरपुरी)
22. छुणछुणा	(नरेश पंडित)
23. भौलू राम ठेकेदार	(कर्म चन्द श्रमिक)
24. बिन्दी	(तारा नेगी)

अकादमी ने 1977 के बाद यह तीसरा कहानी संग्रह प्रकाशित किया। सन् 1995 में छपे इस कहानी संग्रह में पहाड़ी कहानी की विकास यात्र का पूरा

विकसित रूप मिलने की सम्भावना बनी रहना स्वाभाविक है । इसी बीच दो कहानी संकलन अकादमी ने निकाले तथा पहाड़ी कहानी हिमधारा, बागर, बाणेश्वरी पत्रिकाओं के अतिरिक्त महाविद्यालयों की वार्षिक पत्रिकाओं में छपती रही । इसलिए यह संग्रह मूल्यांकन की अपेक्षाएं रखता है । अतः इस संकलन की कुछेक कहानियों पर विचार करना सम्यक् होगा । खेमराज गुप्त की कहानी 'विरक्तानन्द' रहस्यमय कथानक से संजोई कथा की बुनावट में सदृढ़ लोक की पूर्व जन्म की अवधारणा के विश्वास को व्याख्या देती है । आद्योपान्त जिज्ञासा इसकी विशेषता है । यह कहानी मुहावरेदार भाषा प्रयोग और लोक संवाद का सहज मंच दिखती है । अस्थिर मन किसी निश्चित लक्ष्य को पाने में असमर्थ रह कर सदैव भटकता रहता है । वैवाहिक सम्बन्धों में समर्पण अनिवार्य है अन्यथा अशान्त मन जीवन पर्यन्त ही नहीं, जन्म जन्मान्तर तक भटकता रहता है । 'छेक छकाड़ा' - पीयूष गुलेरी की कहानी ग्रामवासियों के पारस्परिक मसलों को सुलझाने की रीत को वाणी देती है । साथ ही उन लोगों की ओर भी इंगित करती है जो गांव में छेक छकाड़ा डालने में ही अपने जीवन की सार्थकता मानते हैं । गांव की स्त्रियां भी तंग हैं उस स्वभाव से जो परमानन्द ने पाल रखा है । तभी तो कहती हैं -''बेड़ा गरक होये पंची पाणे आल़ेयां दा । ब्याहे वाल़ेयां दी मदद तां क्या करनी, उल्टा तिन्हां होर टांटा खड़ा करी दितेया । इन्नी मूएं परमानन्दे मरना नी, छेक छकाड़ा मुकणा नी ।''

देसराज डोगरा की कहानी 'नूरां ' गुज्जर जनजातीय जीवन के रस्मों रिवाज़ों से जुड़ी कहानी है । नूरां यूसुफ को चाहती है परन्तु उसका ब्याह कासम से कर दिया जाता है । मानसिक रूप से नूरां कासम से जुड़ नहीं सकी क्योंकि कासम ही भलेस की शीना के साथ हो गया था । उसे नूरां की क्या परवाह थी । वह सौदा लाने के बहाने वहां जाता, रात को देर तक नहीं लौटता । नूरां उसकी राह विसूरती जब भड़िया के हुसैन और प्यारी से (जो वहां गए थे) उसका अता-पता पूछती तो वे बताते -

''मिलयो साडे नाल ई आयो, पर माल पधरी ठहरो गयो । कंहदो थियो भेणी दे कोल जाणो । भलके घर पंहुचणो ।'' और रिस के मारे नूरां के मुंह से निकलत ये शब्द - *''न मोआ मिको छड़दा । न तिसा डेरे ल्यांदा । इक बेरी फैसला होई जाए तां एह स्यापा तां मुक्को ।''*

इसी मानसिक तनाव में जब वह अकेली लेटती है तो उसे यूसुफ के साथ हुई मुलाकात और वे सारी घटनाएं, जिनमें किस-किस ने किस भेष में उसे लूटने का प्रयास किया, किस ढंग से उनसे बच पायी, याद आती हैं । इसी सोच में नींद आने

पर वह यूसुफ के साथ भागती है परन्तु वे रावी नदी पर तंगड़ी पार करते नदी में गिरते हैं । वह चीख उठती है । डेरे के सारे गूजर जाग उठते हैं। नूरां बेहोश थी । इस कहानी के माध्यम से अनचाहे ब्याह के प्रति भी अनेक सवाल और जवाब मिलते हैं और अनचाहे विवाह के प्रति आक्रोश और विद्रोह भी, जो पहाड़ की समस्या है ।

'मोती रे आशु' इस संग्रह की सबसे छोटी कहानी है । चन्द्रमणि वशिष्ट की इस कहानी में 'नीतरू के कुत्ते' मोती की उसके प्रति संवेदना व्यंजित है । इसे पड़ोसन मोनकी के शब्दों में यूं कहा गया है – 'आदमी दा कोही खारा कुक्कर' । इस कथन में एक तीखा व्यंग्य है । पहाड़ी जन जीवन और विशेषकर यायावरी जीवन में समुदायों में कुत्ते की वफादारी बेमिसाल है । नरेन्द्र अरुण की कहानी 'वापसी' पहाड़ से भागे हुए मुण्डू की कहानी है जो दिल्ली स्टेशन पर गेट पार करता हुआ लूट लिया जाता है परन्तु निराशा के अन्धकार में उसी लड़की को मिलता है जिसने उसकी पैसों वाली पोटली मारी थी । वह उससे जो हमदर्दी जताती है उससे उसके मन में अतीत से जुड़े अनेक प्रश्न उठते हैं । कहानी का कथ्य रोचक है, पहाड़ से जुड़ा हुआ भी; परन्तु अचानक फिल्मी बन गया है । जो लेखक की मानसिकता को व्यंजित करता है ।

गौतम शर्मा व्यथित की कहानी 'चफरोल' परीक्षाओं में नकल की समस्या से जुड़ी समकालीन कहानी है । विद्यालय का मुख्याध्यापक अपने नैतिक असूलों से गिरता नहीं, हालात की मजबूरी से विवश स्थिति से उलझता है, सुधार लाने का प्रयास करता है परन्तु अंततः उस पर वर्तमान हावी हो ही जाता है और वह एक मास का अवकाश लेकर चला जाता है । कहानी वर्तमान के द्वन्द्व में उलझे मनुष्य के असहाय होने पर पलायनवादी होने की ओर संकेत करती है । प्रो0 नारायण चन्द पराशर की कहानी 'म्हारे पट्टू म्हारा देस' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियों में एक कहानी कही जा सकती है । यह एक मनो–सामाजिक कहानी है । कथा प्रयास, भाषिक व्यंजना और मुहावरा प्रयोग भी प्रसंगानुकूल प्रकृति में अनायासिक है । इसमें सिन्धु और पुन्नो के माध्यम से ग्रामीण मानसिकता का सहज और सुन्दर विश्लेषण मिलता है । यह कहानी 'म्हीणेया म्लेख्यां दा पटारू' भी है ।

गांव की व्यावहारिकता और संवाद की व्यंजकता से ऊबा, उदास खिन्न सिन्धु चण्डीगढ़ में ही कोठी बनाने का निश्चय करता है परन्तु उसके इस निर्णय से पुन्नों तड़प उठती है । उसका यह कथन द्रष्टव्य है : ''साहब जी – । हाउं कदूं तुसां जो रोकदी – जे मरजी सह करा । चण्डीगढ़ बसा भाएं दिल्लीया । मेरे भाएं बलैती पुज्जा । मर्जी तुसां री । पाली परोठी ने मैं पराई होई । खैर ग्रांए जो

नी छड्डी सकदी । जे जोरावरी करगे जाणा नी दिंगे तां – तुसां री कोठी बणने तिकर मेरा परलोक बासा होणे री कसर रहणी ऐ । हडियां रा पिंजरा ए माए इत्थु टुंगा या ओत्थु।''

अंतत: मनो:संवाद करती है, मासी जिसने उसे गांव में अपने बच्चे जैसा पाला था, अंतत: मनो:सम्वाद करती है और उसकी संवेदना से आहत सिन्धु अपने गांव ''पलोहे'' में ही रहने बसने का निर्णय लेता है । कहानी फलैश–बैक शैली से जुड़ गई है ।

बंशीराम शर्मा की कहानी का 'मणकू' पहाड़ के उस परोपकारी लोकमानस का प्रतीक है जिसके मन में कोई लोभ लालच नहीं, न ही संपत्ति से लगाव । 'क्या करनी जमींन । जे हऊं अज मरी जाऊं तां एह पता नी किस जो जाणी । गांवारियां लड़कियां रियां शादियां पर हऊं धाम कने दो गहणे देहां ।' मणकू की इस भावना से द्रवित कहानीकार उसे गांव का छोटा विनोबा मानता है । पढ़ा लिखा नहीं, उसका नाम कभी अखबार में नहीं छपा । परन्तु उसने अपने सामर्थ्य के मुताबिक समाज सेवा में कसर नहीं रखी । उसे भी उपहार में देता है गर्म चादर । 'मणकू' अर्थात् माला का छोटा मनका। कितना छोटा नाम और कार्य कितना महान् । यही सोच कहानी–रचना की प्रेरक बन गयी ।

प्रत्यूष गुलेरी की कहानी 'रोटियां दे चार ग्राह' रेलवे महकमा में बढ़ती हेराफेरी, लापरवाही को उस घटना के माध्यम से व्यंजित करती है जिसे वह हर रोज़ अपने गांव के स्टेशन पर घटते देखता है । स्टेशन पर पापड़ बेचकर दो जून रोटी कमाने वाला किस लापरवाही से इंजन से टकराता है, कितनी उपेक्षा करता है स्टेशन मास्टर उसकी प्राथमिकता चिकित्सा में, लेखक तड़प उठता है । इतना कि दूसरे दिन जब उसे रोटी खाते समय उसके मरने का संकेत मिलता है तो हाथ का टुकड़ा हाथ में ही रह जाता है । यह घटना प्रधान कहानी महकमाई भ्रष्टाचार की ओर भी संकेत करती है । ओमप्रकाश सारस्वत् की कहानी 'तपणी' लोक व्यवहार से जुड़ी उस मानसिकता की ओर संकेत करती है जिसके प्रभाव से मनुष्य भले से भले व्यक्ति की भी बुराई करने से नहीं कतराता । आश्चर्य तो यह है कि लोग मुर्दे को जलाते हुए भी कोसते हैं । वाचक का दादा के साथ बड़ा स्नेह रहा परन्तु जब वह तपणी पर गया तो उसने लकड़ी डालकर चिता जलाते कुछ लोगों को यूं कहते सुना –

'जबरा महां कभदरी था ।
इन्नी कदी कुसी रुक्खे दी डाली नी छड्डी/इन्नी कदी कुसीरा खरा नी

किता । इन्नी जिन्दगी भर दराट ही पल्लै ।
इन्नी उमर भर बकरू ही रड़के ।'

मण्डी नगर के सामाजिक दायरे से उगी कहानी है 'चन्दरौली', जो स्वरूप में रोमांटिक और भाषा का व्यंजनात्मक सौन्दर्य लिए है । नीलमणि उपाध्याय ने शहर की उस चिन्ता को वाणी दी है जिससे ग्रसित हर औरत एक अच्छे मर्द को अपने चंगुल में फंसाने का प्रयास करती है और जब इस प्रयास में आशातीत घटना घटती है तो जनानियां उसे जादू का प्रभाव मानने लगती हैं । नीलकमल और एस0 डी0 ओ0 कमलकान्त के आकस्मिक प्यार और विवाह होने को अन्य चहेती लड़कियां इसे नीलकमल का जादुई कमाल मानती हैं । कहानी में मुहावरेदार भाषा का सहज प्रयोग हुआ है । इस संग्रह की अन्य कहानियां – धुखदा गोहटू, रामू, झूठा मोह, सूने री खुंडी, चिन्टां, बिन्दी, भगवान चूपा नाईं, तोरशदे जीऊ, सुदामे रे हड़कू, चन्द्रोली़, श्राप मुक्त आदि भी किसी न किसी दृष्टि से पहाड़ के दुःख दर्द से जुड़ी हैं ।

निष्ठुर पति से भी तलाक की मांग नही करती पहाड़न । दुःखी होने पर भी अपने घर में रहना धर्म समझती है । धाकणसिंह और रेवती के तकरार में किस प्रकार आहत होती है बेचारी छुणकी और किस कदर भीड़ में पिस जाता है उसका छुणछुणा । तलाक की इस समस्या से जुड़ी चारित्रिक विशेषता को शब्द देती है नरेश पंडित की कहानी 'छुणछुणा' । लड़की के प्रति बना लापरवाह भोलूराम ठेकेदार उसके फेल होने पर पराए लड़कों के साथ भाग जाने के गम पश्चाताप को शराब में डुबोता, भला चाहने वालों को ही कोसता है । इसी सामयिक समस्या को उठाया है कर्मचन्द श्रमिक ने । कमलहमीरपुरी की कहानी 'सदामे रे हड़कु' विरादरीवाद को नकारती है । दुष्कर्म को कभी अनदेखा नहीं करता भगवान । अम्बरी ने दुःखी और सच्चे मन से गांव के बवौणा नारसिंह के आगे जो फरियाद की उसके परिणाम स्वरूप अमर की टांग एक्सीडैंट में टूट गई और सास के जिस्म में फुलबहरी के ज़ख्म उभर आए । सुमित्रा रणावत की कहानी 'भगवान चूपा नाईं' इसी लोक धारणा को व्यक्त करती है । कुल मिलाकर ये कहानियां पहाड़ी कहानी के क्रमिक विकास को रेखांकित करती हैं । परन्तु लोक कथा शिल्प से विकसित होकर आधुनिक भाव बोध को हिन्दी कहानी के वैकासिक आयामों के समानान्तर होने हेतु कहानी – शिल्प के सहज विकास की अपेक्षाएं भी निरन्तर बनी हैं ।

रींगदी पीड़

इस से पूर्व प्रो0 कुलभूषण कायस्थ का रींगदी पीड़ कहानी संग्रह 1972 में छपा । इसमें सेह चांहदी थी / बोल्दे खण्ड्डर / कंजरी / मुबारक होए / माणसता दा खून / चीस / गुनाहगार कुण / कदी नी मिलगे / देस्से दी कुआ / नूरूद्दीन भाउ / क्यास और रींगदी पीड़ 12 कहानियां संकलित हैं ।

वास्तव में यह इनके हिन्दी कहानी संग्रह घिराव जो 1970 में छपा था, का पहाड़ी रूप है । इन कहानियों के बारे में सुरजीत सिंह सेठी ने लिखा है कि ये कहानियां जीवन के अलग-अलग क्षेत्रों में प्रेम के महत्व को अभिव्यंजित करती हैं । कभी-कभी यह प्रेम स्त्री-पुरुष का होता है, तो कभी देश का । प्रो0 कायस्थ को सरल तथा सहज भाषा में बात कहना आता है । 'माणसता दा खून' ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि में मानव मूल्यों का विश्लेषण करती है । 'देस्से दी पुकार' समसामयिकता के सन्दर्भ में कतिपय आदर्श की ओर भी झुकाती है । 'घिराव' नारी-मन की समर्थ कहानी है । 'रींगदी पीड़' भारत-पाक युद्ध से जुड़ी है । सुणकू का वासदा रींगदी पीड़ बन गया है । शारीरिक सम्बन्धों की भूख को 'नूरूद्दीन भाउ' कहानी पावन रिश्तों में बदल देती है । इस आरम्भिक कहानी समूह का मौलिक तथा रूपान्तर दोनों ही दृष्टियों से महत्व है ।

कर्मचन्द श्रमिक के '**बण्डेरा दे कण्डे**' कहानी संग्रह में सात कहानियां ओज्जे गल लांदी /गराएं दे ठाकर/लुआद होए तां देई / बण्डेरा दे कण्ढे / दिनां -दिनां दी गल्ल / जीणे दा रस्ता / तथा बन्द दरआजे । श्रमिक की कहानियां परिवेश की दैनिक घटनाओं की ओर ले जाती हैं । इर्नमें यथार्थ से जुड़ी सपाट बयानी है । पहाड़ी कहानी के क्षेत्र में कर्मचन्द श्रमिक अपने योगदान के प्रति जागरूक दीखते हैं ।

बुआरे

मदन हिमाचली के बुआरे कहानी संग्रह में 28 कहानियां हैं । इनके शीर्षक इस प्रकार हैं :

बुआरे / मिट्ठू / ठकाणा / लहन / इशा हो / दिउवा रे प्याशा / कांडेरा मुंह / सुपने / वागटी रा काम / फल कर्मा रा / बुढ़ापे रा सहारा / सिठ्ठणी / चांदा रा टुकड़ा / देहालटा / शेजाई / सात जन्म / भावना / मेणत / कान पाकड़े / लाजो रा दुख / मेला / नेहाल / जीवणे रा फायदा

/ गृह री मार खबर न सार / पटांडे / यादा री पीड़ आदि ।

इनमें 'बुआरे' सहकारी प्रथा का प्रतीक है । अधिकांश कहानियां प्रदेश की संस्कृति से जुड़ी हैं । इन कहानियों में बदलते रूपों का रूपायन भी हुआ है । संग्रह की अधिकांश कहानियां स्वरूप में लघु कथाएं लगती हैं । पहाड़ के जीवन में आता बदलाव, मान्यताओं-विश्वासों-देवी-देवताओं की आस्थाओं के प्रति बदलती तस्वीर ही मूल संवेदना बनी है अधिकांश कहानियों की । इनके कहानीकार के विकसित होने की संभावनाएं हैं ।

गौतम शर्मा व्यथित के 'लूणा दे पुले़ पर' लघु कथा संग्रह में 22 कहानियां संकलित हैं। । इसका प्रकाशन 1993 में हुआ है ।

पहाड़ी जनजीवन से जुड़ी ये कहानियां सामयिक चेतना को हास्य व्यंग्य शिल्प में उकेरती हैं । ये कहानियां पहाड़ की ज़मीन को छूती हुईं, वर्तमान के नज़रिए को कहने का प्रयास करती हैं । ये स्वरूप में मनोविश्लेषणात्मक अधिक हैं । इन कहानियों में भाषा की प्रौढ़ता, मुहावरा प्रयोग, लोकविश्वास, अवसरवादिता आदि की व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति मिलती है । लघु कथा संग्रह की दृष्टि से यह प्रथम प्रकाशित संग्रह है ।

जनसत्ता के सोमवार के संस्करण में पहाड़ी लघुकथा गत अरसे से छपने लगी है । इस स्तम्भ में गौतम व्यथित, अशोक संरीन, मोती लाल घई, मदन हिमाचली, प्रत्यूष गुलेरी, कर्मचन्द श्रमिक, हरिकृष्ण मुरारी, देसराज डोगरा, प्रकाशचन्द ध ीमान, संसारचन्द प्रभाकर आदि कहानीकारों ने अच्छी कहानियां दी हैं । इस व्यवस्था के लिए प्रकाशक भी बधाई के पात्र हैं । गिरिराज साप्ताहिक में जब से पहाड़ी में पहले दो फिर चार पृष्ठ छपने आरम्भ हुए हैं, तबसे पहाड़ी कहानी और अन्य विधाओं में अच्छा साहित्य प्रकाश में आ रहा है तथा पाठकों की संख्या भी बढ़ी है । पहाड़ी में अच्छी कहानियां आएंगी, ऐसी सोच बनना स्वाभाविक है ।

समग्रत: कहा जा सकता है कि पहाड़ी कहानी अपने परिवेश से जुड़ी रहने के साथ ही समसामयिकता के प्रभावों को आत्मसात् करती हुई कथ्य की व्यापकता लिए शिल्प की दृष्टि से विकासोन्मुख है । कतिपय कहानीकारों ने अच्छी और सामयिक कहानियां दी हैं । इस माध्यम से पहाड़ी भाषा की अभिव्यक्ति अधिक विकसित, सन्तुलित तथा विकासोन्मुख हुई और इसका समुज्ज्वल भविष्य साकार होता दिखाई देता है ।

हिमाचल प्रदेश में लोक नाट्य परम्परा

सी0 आर0 बी0 ललित

लोक नाट्य, लोक गीत एवं लोक नृत्य लोकानुरंजन के सशक्त माध्यम हैं । इनमें जनसाधारण अपने मूल स्वरूप, लोकचिन्तन, क्षेत्रीय आशाओं और आकांक्षाओं का दिग्दर्शन करते हैं । लोक नाट्य लोक संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं । हिमाचल प्रदेश में लोक नाट्य की विविध एवं समृद्ध परम्परा प्रचलित है जो सामूहिक आवश्यकताओं तथा प्रेरणाओं से निर्मित होने के कारण लोकवार्ता के कथानकों, धर्मगाथाओं तथा लोक विश्वासों से जुड़ी हुई है । लोक जीवन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े होने के कारण लोक नाट्य लोक भावनाओं का स्पष्ट अभिव्यंजन करते हैं । इनमें लोक मानस के उन्मुक्त हर्ष और उल्लास के साथ लोक जीवन की गम्भीर वास्तविकताएं भी मुखरित होती हैं ।

लोक नाट्य की इन्हीं विशेषताओं के अनुरूप हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्य भी गांव के किसी मुक्ताकाशी खुले स्थान पर मंचित होते हैं । मंचन स्थल के पास किसी ओट में कलाकार तैयार होते हैं । ग्रीन रूम की कोई आवश्यकता नहीं । कलाकारों की साज सज्जा का सामान भी स्थानीय वस्तुओं से जुटाया जाता है । जैसे नकली बालों के लिए बिहूल वृक्ष की छाल के रेशे या भांग के रेशे प्रयोग में लाये जाते हैं । दाढ़ी मूंछ के लिए बकरे की ऊन या मक्का की मंजरियां तथा मुख पर लौकी के बने मुखौटे प्रयुक्त होते हैं । कहीं-कहीं मुखौटे लकड़ी के और कहीं बकरे की खाल के भी बनते हैं । अन्य सजावट-बनावट में तवे की कालिख, गेरू पत्थर तथा चावल के आटे के घोल का आवश्यकतानुसार प्रयोग होता है । अब कुछ बाज़ारू प्रसाधनों का भी प्रयोग होने लगा है । तथापि लोक नाट्य की आकर्षक छवि स्थानीय प्रसाधनों में ही अधिक निखरती है । यहां यह बात भी उल्लेखनीय है कि लोक नाटकों में नारी पात्रों की भी प्रमुख भूमिका रहती है। परन्तु सभी नारी भूमिकाएं पुरुष पात्रों द्वारा ही निभाई जाती हैं ।

लोक नाटकों के अभिनय या प्रस्तुति को सामान्यत: स्वांग कहा जाता है । स्वांग से तात्पर्य है, दूसरे के चरित्र को स्वांगित कर अर्थात् अपने में समा कर प्रस्तुत करना । स्वांग के आधार पर ही लोक नाटकों के कलाकार प्राय: स्वांगी

कहलाते हैं । लेकिन कुछ नाटकों में इन्हें अन्य नामों से भी पुकारा जाता है, जैसे, करयाला लोक नाटक के कलाकार करयालची तथा भगत लोक नाट्य करने वाले कलाकार भगतिये कहलाते हैं ।

लोक नाटकों का कोई लिपिबद्ध आलेख नहीं होता, न ही ये किन्हीं कड़े नियमों की परिधि में बंधे होते हैं । तथापि, लोक नाटकों की प्रवृत्ति स्वच्छन्द भी नहीं है । इनमें कुछ परिपाटियां सुनिश्चित होती हैं जिनका अनुपालन व्यवस्था के अधीन होता है । नाटकों को आरम्भ करने का स्वरूप सदैव परम्परा प्राप्त निर्देशों पर होता है । अवान्तर स्वांगों में अवश्य स्वतन्त्रता रहती है । इनमें वाक्पटुता और तत्परता से प्रस्तुत प्रभावशाली संवाद दर्शकों एवं श्रोताओं पर गहरी छाप छोड़ते हैं जिनमें सामाजिक विसंगतियों, भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, नौकरशाही आदि पर कड़े व्यंग्यात्मक प्रहार किये जाते हैं । हिमाचल प्रदेश के लोक नाटकों में अधि कांशतः कृष्ण लीला के प्रसंग किसी न किसी रूप में जुड़े रहते हैं । कुछ कथानक रामायण से भी सम्बन्धित होते हैं । ऐसा सम्भवतः भारतीय संस्कृति में इन दोनों समादृत महानायकों से जुड़ी जन आस्थाओं एवं मध्यकाल में वैष्णव भक्ति धारा के प्रचार प्रसार के कारण हुआ है । इस प्रचार-प्रसार में कृष्ण भक्ति की लहर जन जीवन में अधिक प्रसारित होने से कृष्ण लीला का प्रभुत्व अपेक्षाकृत अधिक रहा ।

हिमाचल प्रदेश की लोक नाट्य परम्परा में करियाला, बांठड़ा, हरण, हरणात्तर, भगत, ठोडा अथवा ठोठा एवं चड़ेवली स्वांग आदि का प्रमुख प्रचलन है । इन लोक नाटकों के प्रदेश में अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र हैं जिनमें स्थान भेद से परिवेशगत विशेषताएं एवं न्यूनाधिक भिन्नताएं हैं , अतः यहां प्रमुख लोक नाटकों का पृथक-पृथक परिचय दिया जा रहा है ।

करियाला :

हिमाचल प्रदेश के लोक नाटकों में करियाला का सर्वाधिक व्यापक प्रभाव है । मुख्यतः इसका मंचन शिमला, सिरमौर और सोलन ज़िलों में अधिक लोकप्रिय है । शिमला के सुन्नी क्षेत्र से लगते मण्डी ज़िला के तत्तापानी क्षेत्र में प्रचलित लोक नाटक को बांठड़ा और करियाला दोनों नामों से जाना जाता है । मान्यता यह भी है कि मण्डी का बांठड़ा मूलरूप से करियाला ही है । इनमें स्वरूपगत समानताएं बहुत अधिक हैं । जो भिन्नताएं हैं वे स्थानभेद की स्वाभाविक सीमा के भीतर हैं ।

करियाला का आयोजन देवता की मनौती के रूप में भी होता है और यदा कदा मात्र मनोरजंन के लिए भी किया जाता है । इसे वर्ष में किसी भी समय खेला जाता

है परन्तु अधिकतर इसे दीवाली से बूढ़ी दीवाली तक अर्थात् कार्तिक मास की अमावस्या से मग्घर महीने की अमावस्या के बीच अक्तूबर–नवम्बर में प्रदर्शित किया जाता है ।

करियाला के लिए कोई खुला स्थान चुन लिया जाता है जहां करियाला मंचन के साथ–साथ दर्शकों के बैठने की भी सुविधा हो । करियाला मंचन के स्थान को अखाड़ा कहते हैं । अखाड़े के चारों ओर तीन–चार फुट ऊंचे डंडे गाड़े जाते हैं और इनमें रस्सी बांधी जाती है । इसी के बीच करियालची अभिनय करते हैं । रस्सी से बंधे चार खम्बे जिसे 'चतुरासरा' कहते हैं, के बाहर दर्शक लोग बैठते हैं । कई बार अखाड़े को तीन ओर से चादर से भी ढक लिया जाता है । अखाड़े के बीच पवित्र अग्नि जलाई जाती है । इस पवित्र अग्नि को खाण्डा, धूनी या घियाना कहते हैं ।

सबसे पहले चन्द्रावली घाघरा पहने घूंघट निकाल कर अखाड़े में प्रवेश करती है। वह सब वाद्य यन्त्रों को नमस्कार कर थाली में जलते धूप के साथ घियाने की परिक्रमा करती है । वह अखाड़े में कभी अकेले और कभी 'डांगर–कान्हा' के साथ नृत्य करती है । इस प्रथम प्रस्तुति को अखाड़ा बांधना कहते हैं ।

चन्दरौली और डांगर–कान्हा के बाद अखाड़े में साधुओं का स्वांग चलता है । साधुओं के अखाड़े में पहुंचते ही दर्शकों के बीच में से कोई बोल पड़ता है –''अरे । ये मारीछ और सुबाहू कहां से आ टपके ?'' इस पर दूसरा दर्शक कहता है –''अरे भाई । ये राक्षस नहीं, ज्ञानी – ध्यानी साधु हैं । साधु ।'' तब करियाला का सूत्रधार 'करयालटू' साधुओं के बीच जाकर कहता है कि बाबा लोगो ! तुम बड़े ज्ञानी–ध्यानी लगते हो । तुमसे एक बात पूछूं ?

एक साधु – हां । हां । बेटा । शौक से पूछो ।
करयालटू – आर बी लंका, पार बी लंका, बिचे धुआंधारी ।
राम लखन जब वन को गये थे, तब कहां थे तुम जटाधारी ।।
साधु – आर बी लंका, पार बी लंका, बिचे धुआंधारी ।
राम लखन जब वन को गये थे, यह था तिन्हां साथी बगारी ।।
करयालटू – सच बोलो बाबा मज़ाक न करो ।
दूसरा साधु –सुनो बेटा ! सच्ची बात मैं बताता हूं–
आर बी लंका, पार बी लंका, बिचे धुआंधारी ।
राम लखन जब वन को गये थे, हम थे उनके पुजारी ।।

करयालटू और साधुओं के बीच हिन्दी और स्थानीय बोली मिश्रित बड़ा रोचक

संवाद चलता है । कई बड़े गहरे दार्शनिक विचार भी सामने आते हैं । जैसे ज्ञान और कर्म की दस इन्द्रियों वाले शरीर का आधार प्राण वायु है और इस आधार तत्व के आने जाने का कोई पता नहीं चलता , यह एक आश्चर्य है, एक बहुत बड़ा अचम्भा है । इस बारे में यह पद सुनाया जाता है :

इस दुनिया में सुणो लोको,
इक चरज, इक चम्भा ।
इक बंगलू दे दस दरवाजे,
बिच पौणा रा खम्बा ।
आन्दा जान्दा किछ नी दिखदा,
ये चरज, ये चम्भा ।

इसके बाद करियाले में जोग्गी-जोग्गन, पति-पत्नी, साहब-मेम, साहूकार-नौकर आदि अनेकों स्वांग किये जाते हैं जिनमें आमोद-प्रमोद के साथ जीवन की सच्चाइयां प्रतिबिम्बित होती हैं । सरकारी और राजनैतिक चरित्रों को करियाला में खूब उघाड़ा जाता है । दो स्वांगों के बीच नृत्य और गीतों से लोगों का मनोरजंन होता है।

बांठड़ा :

बांठड़ा लोक नाटक का सम्बन्ध मुख्य रूप से ज़िला मण्डी से जुड़ा है । इसका कुछ प्रभाव साथ लगते कुल्लू और बिलासपुर ज़िलों में भी देखा जाता है । कुछ लोग इसे करियाला का ही अन्य रूप मानते हैं । शैली और कथ्य भाव की दृष्टि से यह धारणा उपयुक्त प्रतीत होती है परन्तु बांठड़ा का मण्डी क्षेत्र में अपना स्वतन्त्र विकास हुआ है, इसमें भी कोई दो मत नहीं हो सकते ।

बांठड़ा में करियाला की भांति अखाड़े में घियाना जलता है । इसका शुभारम्भ हरिरंग से होता है जिसमें कृष्ण रूप हरिरंग, चन्द्रौली के साथ रास-लीला दृश्य - नृत्य करते हुए अखाड़े में प्रवेश करते हैं । नगाड़ा और शहनाई की लय-ताल पर यह गीत गाया जाता है :

हरि रंग लागा साथी,
हरि रंग लागा . . .
जमना किनारे रास रचांदा मेरा कान्हड़ा,
रुसी--रुसी जान्दा मेरा कान्हड़ा,
हरि रंग लागा . . . ।

इसके पश्चात साधु, चेला-चेली, बुजडु, मालिन, मेम-साहब, डाक-डायन, साह-साहणी, किरडू देऊ आदि के रोचक दृश्य व स्वांग प्रदर्शित किये जाते हैं । बांठड़ा के बीच स्वांगों में भी अफसरशाही और राजनेताओं की करनी, करतूतों पर अच्छी-खासी चोट की जाती है ।

बांठड़ा का प्रदर्शन असौज महीने के नवरात्रों से फाल्गुन-चैत्र तक किया जाता है । दशहरा और दीवाली के दिनों में अनेक देव-स्थलों पर बांठड़ा के मंचन की परम्परा स्थापित है । मण्डी ज़िला के शिवा बदार क्षेत्र के शिवा गांव में असौज नवरात्रों के बीच किये जाने वाले बांठड़े में ठठणू नृत्य में नर्तक फटे पुराने उलटे-पुलटे कपड़े पहन कर नंग-धड़ंग से हो कर नृत्य करते हैं । यह नाच शिवजी के गुणों के नाच जैसा लगता है। इसके अतिरिक्त दूसरे स्थानों पर बांठड़े में मण्डी का प्रसिद्ध नृत्य लुड्डी प्रदर्शित किया जाता है ।

बुढड़ा :

ज़िला मण्डी में बांठड़ा के साथ बुढड़ा लोक नाटक की परम्परा भी प्रचलित है । इस लोक नाटक में बातचीत के माध्यम से संवाद नहीं होता । पूरा नाट्याभिनय नृत्य, गीत और वादन पर ही आश्रित होता है । इस लोक नाट्य के मुख्य पात्र बुढड़ा का पूरा शरीर धान के पराल से मढ़ा जाता है । उसके सिर तथा दोनों हाथों के अगले हिस्सों पर तीन लम्बे सींग बनाये जाते हैं । बुढड़ा के साथ दो पुरुष नारी भेष में चंद्रौली बने होते हैं । एक भगवां वस्त्र में 'जोगी' और एक हाथ में डंडा लिये हुए 'डंडू' पात्र होता है । एक पात्र चिथड़े से पहने हुए 'मसखरा' और एक ढीली-ढाली पोशाक में 'पहाड़ी' नाम का पात्र होता है ।

नाटक के प्रारम्भ में एक भक्तिगीत गाया जाता है । उसके समाप्त होते ही बुढड़ा अखाड़े में,जहां घियाना जला होता है, प्रवेश करता है । बुढड़ा, गीत और वाद्य के लय-ताल़ पर नाचता है । धीरे-धीरे उसके साथ चंद्रौली, जोगी, डंडू, पहाड़ी आदि पात्र भी नृत्य में सम्मिलित होते हैं । इस लोक नाटक के नृत्य की भाव-भंगिमाएं और गीतों के बोल दर्शकों में हास-परिहास का वातावरण तैयार करते हैं जिसकी झलक गीत की प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट होती है -

नाचे ओए बुढड़ेआ खड़ा़ खड़ा,
आधी रोटी पूरा बड़ा,
पाया ओए बुढड़ेया तेरे मड़ा ।
जोगी मरदा सेल़े पाल़े,
सैहर सकेता जो जाइए,

रूं होर कपाह ल्याइए,
जोगी जो ल्हेफा भराइए ।

अर्थात् अरे बुढड़े ! तू खड़ा खड़ा नाच । इससे तुम्हें आधी रोटी और पूरा बड़ा (माश का बना भल्ला) मिलेगा । हे बुढड़े ! ये तेरे मरियल शरीर के काम आयेंगे । यह जोगी बेचारा ठण्ड से मर जायेगा । तुम सुकेत शहर सुन्दरनगर में जाओ । वहां से रुई कपास ले आओ और जोगी के लिये लिहाफ–रजाई तैयार करो ।

बुढड़ा लोक नाटक मंचन प्राय: असौज महीने की गौ माला पूर्णिमा से आरम्भ होकर कार्तिक महीने की घोड़ माला पूर्णिमा तक चलता है ।

हरण :

हरण लोक नाटक के मंचन की मुख्य परम्परा ज़िला कुल्लू तथा शिमला के कुछ भागों में प्रचलित है । यहां हरण को हौरण भी कहते हैं । इस लोक नाटक में 'हिरन' के नाच की प्रधानता रहती है । निस्संदेह 'हिरन' के नाच के कारण ही लोक भाषा में इस लोक नाटक का नाम हरण या हौरण पड़ा । शिमला के थरोच क्षेत्र, जो चौपाल तथा जुब्बल तहसीलों का भाग है, में इसे हौरिण नाम से जाना जाता है और चम्बा में हरणात्र नाम से ।

कुल्लू तहसील में हरण लोक नाटक विजयादशमी (दशहरा) से विकमी सम्वत् के पौष प्रविष्टे पंद्रह या कहीं–कहीं बसंत पंचमी तक मंचित होता है । इलाका सिराज में इसका मंचन प्राय: विजयादशमी से लेकर केवल सात दिन तक चलता है ।

हरण में हिरन रूप दो पुरुष पात्रों के माध्यम से बनाया जाता है । इसमें एक पुरुष कमर से झुक कर अपने हाथों को घुटनों पर रखता है । उसके पीछे दूसरा पुरुष अगले पुरुष को कमर से पकड़ कर उसी तरह झुकता है । सफेद और काले रंग के मिश्रित चितकबरे से दो पट्टुओं को बीच से जोड़ कर उन झुके आदमियों पर डाला जाता है । पीठ पर एक सफेद पटका रखा जाता है । उसके सिर पर दो सींग लगाए जाते हैं । इस प्रकार 'हरण' बन जाता है । हरण के साथ एक या दो पुरुष स्त्री वेशभूषा में 'बुढ़ी' नामक पात्र होते हैं । लोक मान्यता में हरण को मारीच का रूप मानते हैं जिसने सुन्दर हिरण का रूप धारण कर सीता माता को ललचाया था । हरण के साथ 'बुढ़ी' पात्रों में एक शूर्पनखा और दूसरी उसकी सहेली मानी जाती है । हरण मण्डली हरण का मंचन घर–घर जा कर करती है । घर के प्रांगण में पहुंचने पर हरण का नाच शुरु होता है । नाच के साथ गीत

के निम्नलिखित बोल चलते हैं :

हौरण पाहुणी आई डै भाइयो ,
हौरण पाहुणी आई ।
बाहर निकल घोर गसैइयो,
हौरण पाहुणी आई ।

अर्थात् हे भाइयो ! हरण आज आपकी अतिथि बन कर आई है । हे गृहस्वामी! बाहर तो निकलो । देखो हरण आपकी अतिथि बनकर आई है ।

हौरण के नाच के बाद स्वांगियों के रोचक स्वांग चलते हैं । स्वांगियों को यहां 'डंठी' कहते हैं और इन्हें रामचन्द्र भगवान के सेवक माना जाता है । डंठी भी स्वांगों में विकृत व्यवस्था पर खूब चोट करते हैं । एक संवाद में एक डंठी, दूसरे डंठी जिसकी दो पत्नियां मानी जाती हैं, से पूछता है:

''किये दुई जोई रा खसमा खुश ता सा''
।। क्यों रे । दो पत्नियों के पति । खुश तो है ।।
''यारा किज़ी रा खुश, हालत बुरी सा''
।। यार । काहे का खुश, दुर्दशा है । ।।
''किबै, की गल''
।। क्यों, क्या बात ।।
''एक सा जैण्डी ब्लौके री टांकी
गाशा न भरी, रूड़ी न खाली ''
।। एक पत्नी तो जैसे ब्लाक की टांकी है जो वर्षा में भरी, गर्मी में खाली रहती है ।।

विकास खण्ड विभाग की कार्य प्रणाली पर कटाक्ष करते हुए उसने अपनी बात कही है कि एक पत्नी जब काम के दिन आते हैं तो गर्भवती हो जाती है ।

दूसरी पत्नी के बारे में वह कहता है:

''दुज्जो सा ट्रांसपोर्ट री बस,
मर्जी हुई ता आई, नी ता ठप्प''

।। दूसरी ट्रांसपोर्ट बस की तरह है जो मन करे तो आ गई, नहीं तो देखते रहो । इस उपमा के बहाने वह कहता है कि मेरी दूसरी पत्नी रूठ कर मायके चली जाती है, मर्ज़ी हो तो आ जाती है, नहीं तो वहीं पड़ी रहती है । ।।

इस प्रकार के श्लेषात्मक संवाद दर्शकों में मनोरंजन के साथ-साथ जन चेतना को जागृत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं ।

हरणात्तर :

कुल्लू की भांति ही चम्बा में हिरन का लोक नाटक होता है, उसे हरणात्तर कहते हैं । यहां भी घर-घर जा कर हिरण का नाच दिखाया जाता है और इस प्रकार हर घर में हिरण की यात्रा होती है । सम्भवत: इसी हिरन यात्रा के कारण ही इस लोक नाटक को यहां हरणात्तर कहा गया ।

होली के दिन शाम को होली जलाने के बाद निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हरणात्तर मण्डली देवालय या किसी अन्य निर्धारित स्थान पर इकट्ठी होती है । वहां देव पूजन के बाद गांव में घर-घर जा कर हरणात्तर का प्रदर्शन करते हैं । हरण के साथ एक लम्बोतरी टोपी पहने हुए 'नारद' तथा नारी वेशभूषा में दो-तीन पुरुष 'सखियां' बन कर चलते हैं । इसके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न स्वांगों के अनुकूल वेशभूषा और मुखौटों में साधु, गद्दी-गद्ण, चुराही-चुराहिन, साहब-मेम, साह-साहनी, हलवाहा, ओझा-गारड़ी आदि अनेकों स्वांगी तैयार होते हैं । इन स्वांगियों के स्वांगों में से प्रत्येक घर में एक-दो ही स्वांग दिखलाए जाते हैं, लेकिन हिरन का नाच सब जगह दिखलाया जाता है । घर के प्रांगण में पहुंचते ही ढोल, नगाड़ा, शहनाई आदि वाद्य संगीत के साथ हिरन नाच के समय गीत गाया जाता है :

हरण आया, हरणोटा भला हो,
बड़ी दूरा दे आया, हरणोटा भला हो ।
बरसा दिने दी फेरी, आया धरमियां दे दुआरे,
हरणोटा भला हो ।

अर्थात् आपके घर पर हिरन आ पहुंचा है । यह हिरन साल के बाद बड़ी दूर से आप धर्मात्माओं के द्वार पर आया है ।

सामान्यत: हिरन की यह घर-घर यात्रा एक रात ही होती है परन्तु कुछ मण्डलियां इसे आठ दिन तक भी चलाती हैं । इस हरणात्तर मण्डली को प्रत्येक घर से जो अनाज, पैसे आदि मिलते हैं, उसका एक दिन सहभोज आयोजित होता है । सहभोज की रात को खुले स्थान पर घियाना जला कर पूरी रात हरणात्तर का प्रदर्शन होता है जिसमें हिरन के नाच के बाद एक-एक करके सभी स्वांग प्रदर्शित होते हैं । स्वांगों में खूब हास-परिहास होता है । जैसे, लम्बोदरी टोपी वाले नारद की सखियों के साथ छेड़छाड़ में नारद एक सखी का घूंघट हटाते हुए कहता है:

''ओ मेरेया बब्बा ! एह मड़ी है कि बिजली मारी सुट्या इसा ता ।

हे नारायण एड्डी छैल तैं बणाई किहां हुंघी, मिंजो मारी दिंघी, छड़गी नीं । ''
।। बाप रे । यह नारी है कि बिजली, इसने तो मार दिया । हे नारायण ! तूने यह इतनी सुन्दर बनाई कैसे होगी, यह मुझे मार देगी, छोड़ेगी नहीं ।।

इस पर सखी नारद को धक्का मारते हुए कहती है :

''परेडा मर । शर्म नी ईदी लम्बूतरे जी । शीशे अन्दर अपणा मुंह नी दिखदा, बन्दर जणा ।''
।। परे मर । शर्म नहीं आती लम्बूतरे को । शीशे में अपना मुंह नहीं देखता, बन्दर जैसा । ।।

इस प्रकार एक के बाद एक स्वांग हंसी–मज़ाक और संगीत की रंगीनियों के बीच दर्शकों को आनन्द विभोर करते हैं । स्वांगों में गद्दी, चुराही आदि क्षेत्रीय समुदायों की कार्य प्रवृत्तियों का भी रोचक प्रस्तुतिकरण होता है ।

होरिंगफो

किन्नौर में हरण–हरणात्तर की भांति ही होरिंगफो होता है । इसमें भी दो आदमी एक के पीछे दूसरा झुक कर चौपाया बनता है । उन पर कम्बल आदि डाल कर सिर पर सींग तथा आगे हिरन के मुख का मुखौटा भी लगाया जाता है । किन्नौर के जंगी गांव में श्रावण के महीने के मेले में होरिंगफो का प्रमुख आयोजन होता है । इसमें हिरन के अतिरिक्त दो लड़कों को घास और छाल लपेट कर स्वांगी बनाया जाता है । इनमें एक लड़का तो लड़के के ही स्वांग में होता है और दूसरे लड़के को लड़की के स्वांग के रूप में तैयार किया जाता है । देवस्थल पर आयोजित इस लोक नाटक में स्वांगी खुलमखुली अश्लील हरकतें करते हैं । इन अश्लील हरकतों को बुरा नहीं माना जाता । स्त्री–पुरुष सभी इस प्रदर्शन का आनन्द लेते हैं । मान्यता है कि इस प्रकार के प्रदर्शन में अनिष्ट शक्तियों का शमन होता है ।

भगत

कांगड़ा, चम्बा, हमीरपुर, बिलासपुर और कांगड़ा ज़िला से लगते मण्डी के चौंतड़ा क्षेत्र में दीवाली के बाद भगत लोक नाटक का मंचन गांव–गांव में होता है । इसके अतिरिक्त लोग अपनी मनोकामना पूरी होने पर वर्ष में किसी भी समय भगत का आयोजन करते हैं ।

भगत लोक नाटक की पृष्ठभूमि पूरी तरह से ब्रज मण्डल की श्रीकृष्ण रास-लीला से विकसित हुई है । कहते हैं कि पुराने समय में मथुरा वृंदावन से रासधारिये इस ओर आते थे और घर-घर जा कर कृष्ण भक्ति के गीतों के साथ कृष्ण लीला का अभिनय भी करते थे । यहां के लोगों ने इस कृष्ण लीला को ग्रहण किया और लोक रुचि तथा स्थानीय सुविधा के अनुसार इसका प्रचलन करवाया । इससे भगवद् भक्ति से जुड़े होने के कारण भगत लोक नाटक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई ।

भगत में भगतिये सर्वप्रथम गणपति की आरती इस दोहे के साथ प्रारम्भ करते हैं:

पहले गणपत पूजिये, पाछे करयो काज;
सभा बगानी बैठी के, लाज राखे महाराज ।

गणपति और देवपूजन विधान के बाद कृष्ण लीला का मंचन किया जाता है । इसमें श्री कृष्ण, मनसुखा और सखियों की आपसी नोक-झोंक, हंसी-ठट्ठा दर्शकों को खूब हंसाता, गुदगुदाता है । मनसुखा को पौराणिक पात्र उद्धव और सखियों को गोपियां माना जाता है ।

मनसुखा हास-परिहास में बड़ा दक्ष पात्र होता है । लम्बोतरा सा टोप, फटे पुराने कपड़े-चिथड़े पहनकर, उलट-पुलट संवाद और अटक-मटक चाल से लोगों को खूब हंसाता है । श्रीकृष्ण और गोपियों की हर बात को मनसुखा दूसरे ही अर्थ में ग्रहण करके उसका कोई और ही जवाब देता है । जैसे एक संवाद देखिये:

कृष्ण - ऐ जी मनसुखेया !
मनसुखा - तेरा मन किहां दुखेया ।
कृष्ण - म्हारे मन सुख लाल जी !
मनसुखा - तेरा होया बुरा हाल जी ।
कृष्ण - यार । मेरी तबीयत ठीक नहीं ।
मनसुखा - ठीक हुई कब ?
कृष्ण - क्या ?
मनसुखा - तुम्हारी नीयत, और क्या ?

यद्यपि, भगत का प्रमुख मंचन कृष्ण लीला पर केन्द्रित रहता है तथापि, इसके साथ-साथ गद्दी-गद्दिन, रोलू, बुजड़ू आदि स्थानीय स्वांग और भगवान राम, राजा हरिश्चन्द्र, पूर्ण भगत आदि धार्मिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों का

अभिनय भी भगत में प्रदर्शित किया जाता है ।

दाहजा अथवा धाजा

ऊना, हमीरपुर, बिलासपुर के अनेक स्थानों पर सिद्ध चान्नो की मनौती के रूप में दाहजा नाट्य का मंचन किया जाता है । ऊना में दाहजा के कलाकार प्रायः नचार समुदाय से सम्बन्ध रखते हैं और इन्हें कलाकार के रूप में भी नचार कहते हैं । नचार दल के मुखिया को भगत कहा जाता है । दाहजा में भी मुख्यतः भगत नाट्य की भांति कृष्ण लीला तथा अन्य स्वांग किये जाते हैं । इसमें रास लीला के अनेक रूप दिखाये जाते हैं । इसके अतिरिक्त बीच-बीच में गवार-जट, गद्दी-गद्दण, पहाड़ों का नेगी आदि के स्वांग भी दिखाये जाते हैं । ऊना तथा बिलासपुर में इसमें एक तान्त्रिक विधान पर आधारित स्वांग होता है - बौरा । 'बौरा' स्वांग का बौरा नामक कलाकार शरीर पर लंगोट तथा काले वस्त्र पहन कर या मात्र लंगोट पहने नग्न शरीर पर काले और लाल रंग के धब्बे लगा कर आग पर नृत्य करता है और मुंह में आग निगलता और उगलता है ।

ठोडा या ठोठा :

ठोडा या ठोठा को आजकल एक खेल के रूप में माना जा रहा है तथा इसे नाच के रूप में भी माना जाता है । परन्तु, यदि इस पर गहराई से विचार करें तो इसे लोक नाटक की श्रेणी में सम्मिलित किया जाना उचित है । इसमें संवाद और संगीत साथ-साथ चलते हैं । शौर्य कला से जुड़े इस लोक नाटक में चुनौतियों-प्रतिचुनौतियों के साथ शाठी और पाशी नामक दो योद्धा दल जिन्हें 'खूंद' कहते हैं, धनुष-बाण के साथ 'जुब्बड़' संज्ञा से अभिहित मैदान में ठोडा का प्रदर्शन करते हैं । इस युद्ध कला या धनुर्विद्या के जोखिम भरे प्रदर्शन-कौशल के साथ महाभारत का कथानक जोड़ा जाता है जिसमें पाशी खूंद को पाण्डव और शाठी खूंद को कौरवों का वंशज या प्रतिनिधि माना जाता है । शिमला, सिरमौर और सोलन के अनेक भागों में ठोडा का मंचन प्रायः बैशाख और जेठ महीने के बिशु मेलों में किया जाता है । ठोडे में जिन खूंदों ने शामिल होना होता है वे पारम्परिक वेशभूषा में बाजे-गाजे के साथ डांगरू, डीगे एवं धनु-शरी 'धनुष-बाण' लेकर नाचते हुए बिशु मेले के जुब्बड़ मैदान में पहुंचते हैं । नर्तकों की भाव-भंगिमाएं वीररस से परिपूर्ण होती हैं । वाद्य, संगीत का चलन 12 पात्रों में होता है । अर्थात्

नगाड़े और ढोल के बोल लोक शैली में कुछ इस प्रकार होते हैं :

1 2 3	4	5	6	7	8	9
10	11	12				
टि णि टा	टि	ढा	णी	टि	ढा	णी
टिग	ढा	णी				

- -

1 2 3	4	5	6	7	8	9
10	11	12				
टि णि टा	टि	ढा	णी	टि	ढा	णी
टिग	ढा	णी				

X 2 0 3

- -

जुब्बड़ में पहुंच कर 'शाठी – पाशी' खूंदों के जोड़े ठोडा के लिए तैयार होते हैं। ठोडा में भाग लेने वाले व्यक्ति विशेष प्रकार की सूथण (पाजामा) और बूट पहने होते हैं, जिन पर बाण की मार पड़ने से अधिक गहरी चोट नहीं लगती। ठोडे के जोड़े में एक पक्ष का एक व्यक्ति धनुष बाण से वार करता है और दूसरे पक्ष का व्यक्ति बचाव करता है। वार करते हुए यह ध्यान रखा जाता है कि बाण का प्रहार टांग पर केवल घुटनों के नीचे हो। बाण के प्रहार के समय एक ललकार जिसे 'श्वाला अथवा हाऊस' कहते हैं, दी जाती है। श्वाला के कुछ बोल इस प्रकार हैं :

सूले टिलकै सूले मेरेया शाटुआ
हां ऽ ऽ हां ऽ ऽ . . . .

जब वाण जिसे शरी या कनेरू भी कहते हैं, प्रतिद्वन्द्वी की टांग में लग जाता है तो प्रहारक पक्ष ललकार भरता है :

मेरेया जाणियो बी
आ सेजी जागे रा आंसू जेथी
लूदी बी नी रींगदि।

अर्थात् मैं उस जगह का हूं जहां चील तक नहीं पहुंच सकती। इस प्रकार खूंदों

के कई योद्धा जुब्बड़ के मैदान में भिड़ कर शौर्य कला के मंचन से लोगों का मनोरंजन करते हैं।

चड़ेवली स्वांग :

चड़ेवली सावन भादों मास की संक्रान्ति को शिमला के ऊपरी भागों में मनाई जाती है। चड़ेवली संक्रान्ति को दो प्रतिद्वन्द्वी दल परस्पर विशेष प्रकार की मशालें, जिन्हें 'डाओ' कहा जाता है, टकराते हैं । इस टकराव को 'डाआ घड़काणा' कहते हैं । इस अवसर पर घर के बरामदे के एक कोने में गोल पत्थर तथा दूब वाले मिट्टी के गोल टुकड़े से 'चीड़ा' बनाया जाता है, जिसमें सबसे नीचे पत्थर का टुकड़ा, उस पर मिट्टी का टुकड़ा जिस पर जौ डाले जाते हैं और चारों ओर सूरजमुखी के फूल लगाए जाते हैं, रखे जाते हैं । मिट्टी के टुकड़े पर एक और गोल पत्थर रखा जाता है । संक्रान्ति की शाम को इसका पूजन करके इस पर 'पिखे शेके' नामक लकड़ी जला कर रख देते हैं । इसी प्रकार का 'चीड़ा' मन्दिर में भी तैयार किया जाता है । उसे 'बड़ा चीड़ा' कहते हैं । बड़ा चीड़ा के स्थान पर ही चड़ेवली मनाई जाती है । इसमें परगने के लोगों की सहभागिता होती है ।

चौपाल में शिरगुल के मन्दिर में यह त्यौहार मनाया जाता है । यहां बोधना, मझोटली, चौपाल और ठाणा गांव के लोग शामिल होते हैं । इन गांवों के लोग अपने-अपने जत्थे लेकर 'डाओ' के साथ शिरगुल के मन्दिर में पहुंच कर बड़े चीड़े में डाओ जला कर मन्दिर की परिक्रमा करते हैं । इस बीच वे हुड़की की ताल पर 'शड़शेकटिए होईसा . . . .' के शब्द कहते रहते हैं । इस प्रथा को 'होलाच़' कहा जाता है । होलाच़ के बाद एक गांव का जत्था तब तक देवांगन में नृत्य करता रहता है, जब तक दूसरे गांव का जत्था नहीं आ पहुंचता । इसी कम से कार्यकम सम्पन्न होता है ।

सभी गांवों के जत्थों का नृत्य समाप्त होने के बाद 'लोकनाटक' प्रस्तुत किए जाते हैं - जिन्हें 'चड़ेवली के स्वांग' कहते हैं । यहां परिचय रूप में एक-दो स्वांगों का उल्लेख किया जा रहा है । एक चोर और साहूकार का स्वांग होता है । इसमें चोर चोरी करने का अभिनय करता है । उस समय यह गायन चलता है :

चोरेया चोराली कोरो,
बाणीया बोणजो कोरो
तेट्टी चोरदा पोड़ा-तेट्टी परिणे डोरो ।

इस गीत और हुड़की की थाप पर चोर का अभिनय बड़े हास-परिहास से पूर्ण होता है ।

एक अन्य स्वांग में पशु चराने वाले एक लड़के को पढ़ने का शौक जग गया तो वह अपने बाप से कहता है :

लड़का- बाबेया, ओ रे बाबेया !
बाप - का बोले मैरेया ?
लड़का- मेरे थिये पढ़ने स्कूलो दे ।
बाप - तो मैरेया डे पौढ़दा ।
लड़का- बाबेया कताबो खै पौईसे लागो
बाप - तौ मैरेया जै होदे मूं को पौईसे,
तौ आं आपू नी डैऊंदा थिया स्कूला खै ।

इस प्रकार चड़ेवली के स्वांग 'लोक नाटक' के रूप में मनोरंजन के साथ-साथ लोक जीवन के विविध पहलुओं को मुखरित करते हैं ।

उपरोक्त प्रमुख लोक नाटकों के अतिरिक्त अपने सीमित प्रभाव क्षेत्र के भीतर प्रदेश में कुछ अन्य लोक नाटकों का प्रचलन भी पाया जाता है जिनमें शिमला ज़िला के अनेक क्षेत्रों में सिंह और बुढ़ा, कुल्लू और शिमला में निरशू-हिरशू तथा दियाऊड़ी, मण्डी-बिलासपुर एवं हमीरपुर में चरकटी आदि लोक नाट्य चर्चित हैं । लाहुल-स्पिति के बुच्छेन और छम लोक नृत्यों को भी लोक नाट्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है । छम में लम्बे-लम्बे चोगे पहन कर मुखौटों के साथ नृत्य होता है और बुच्छेन में भी लम्बे-लम्बे चोगों के साथ रोमांचकारी खड्ग नृत्य प्रस्तुत करते हैं । इन नृत्यों के कथानक में तिब्बत के क्रूर शासक लांगदरमा की हत्या का प्रयोजन सम्बन्धित है । अतः इन विशेष परियोजना- मूलक नृत्यों को नाट्य कोटि में रखा जाता है ।

कुछ विद्वानों के विचार में देव-नृत्य एवं काहिका, भूण्डा आदि देव-विधानों को भी लोक नाट्य की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है । यह अत्यन्त विचारणीय विषय है । वैसे, इन वैधानिक लोक अनुष्ठानों को लोक नाट्य की श्रेणी में सम्मिलित किया जाना सम्भव नहीं है क्योंकि, लोक नाट्य में एक बात विशेष रहती है कि इसमें कोई भी दक्ष कलाकार सम्मिलित हो सकता है जो कला का कुशल प्रदर्शन एवं जनता का भरपूर मनोरंजन कर सके । इसमें आवश्यकतानुसार अभिनय में संशोधन, परिवर्तन किया जा सकता है जबकि देव-अनुष्ठानों में इस प्रकार की कोई छूट नहीं होती ।

देवताओं से सम्बन्धित विधानों–अनुष्ठानों को देव–चयनित व्यक्तियों द्वारा ही निभाया जाता है, भले ही वे उसमें पूर्ण योग्यता न भी रखते हों । इन अनुष्ठानों में परम्परा का निर्वाह अनिवार्य होता है । किसी प्रकार का परिवर्तन स्वीकार्य नहीं होता।

नाटकों में सामाजिक जीवन की विसंगतियों तथा जटिलताओं का निरूपण होता है । इनमें जन–चेतना एवं सामाजिक शिक्षण का लक्ष्य भी समाया रहता है । इन तथ्यों की दृष्टि से हिमाचल प्रदेश के लोक नाट्यों में करियाला, बांठड़ा, हरण, हरणात्तर, भगत, ठोडा और चड़ेवली आदि सशक्त लोक नाटक माने जा सकते हैं जिनके मंचन की समृद्ध पारम्परिक प्रक्रिया प्रदेश में आज भी सुरक्षित है ।

आज के युग में जब सिनेमा, रेडियो और टैलीविज़न जैसे सशक्त माध्यमों ने भरपूर मनोरंजन की व्यवस्था वातानुकूलित थियेटरों तथा घर के बैड रूमों में कर दी है, तब इन लोक नाट्यों के अस्तित्व को प्रत्यक्ष रूप से खतरा पैदा हो गया है । इन सब का मंचन दूर–दराज़ के गांवों में मन्दिरों के प्रांगणों में होता रहा है और पहाड़ी भाषा की अनेक बोलियों में इनके चुटिले संवादों ने ही स्थानीय दर्शकों को अब तक बांधे रखा है । किन्तु अब वही दर्शक इनके प्रति उदासीन होते जा रहे हैं । इसके कारण पिछले कुछ वर्षो में इन लोक नाट्यों में भोंडे अश्लीलतापूर्ण संवाद और उछल–कूद मिश्रित अभिनय का प्रचलन बढ़ता गया है और लगता यह है कि एक आखिरी बैसाखी भी अब इनकी शनै: शनै: कम हो रही लोक प्रियता को सहारा नहीं दे पा रही है । इनसे जुड़े पर्व, मेले, त्यौहार और अनुष्ठान भी अपनी सार्थकता खोते जा रहे हैं । जिन स्वांगों को राजदण्ड अथवा देवी दण्ड के भय से निर्धारित तिथियों पर मंचित किया जाता था, उनके ऊपर से भी अब यह संरक्षण उठ गया है । फलस्वरूप इस बात की आवश्यकता है कि इन लोक नाट्यों को इनके अपने मूल शालीन स्वरूप में संरक्षित करने के लिए पग उठाए जायें । ऐसा तभी सम्भव है जब हम इन्हें सरकारी संरक्षण से दूर रख कर मात्र उन पर्व, मेलों, त्यौहारों और अनुष्ठानों को सरकारी संरक्षण प्रदान करें जिनमें इनका परम्परागत रूप से मंचन होता रहा है । ये लोक नाट्य उस दशा में अपने मूल परिवेश में ही अपनी सार्थकता बनाए रख सकते हैं । जहां इनके मंचन का माहौल है और इनके कलाकारों को बोलीगत सामान्यता के आधार पर दर्शकों से वाह–वाही व प्रोत्साहन मिल सकता है वहां इन्हें गांवों में से उठा कर शहरी परिवेश में लाने के प्रयास अधिक सफल नहीं हुए हैं क्योंकि त्यौहारों की विषमता और शहरी दर्शक की मानसिकता ने इनकी शालीनता की सराहना न करके इनमें भोंण्डी अश्लीलता के समावेश का मार्ग ही प्रशस्त किया है और इनके कलाकारों

को स्वतः स्फूर्त संवादों के स्थान पर लिखित अथवा कण्ठस्थ संवादों के झमेले में डाल दिया है जिससे लोक नाट्यों और नाटकों के बीच का अन्तर कम होता जा रहा है और यह लोक नाट्य परम्परा के लिए घातक सिद्ध हो सकता है । आवश्यकता इस बात की है कि हिमाचल के विभिन्न लोक नाट्यों को स्थानीय परम्पराओं का स्वच्छ, स्वस्थ आधार प्रदान किया जाए ।

भाषा के अध्ययन की दृष्टि से लोक नाट्यों का महत्वपूर्ण स्थान है । स्वांगों में प्राचीन बोलियों का प्रयोग तथा विभिन्न जन-समुदायों की शब्दावली व उपभाषाओं का इस्तेमाल जहां समाज की मातृत्व भावना को पुष्ट करता है, वहां शब्द-ब्रह्म की व्यापकता के लिए भी आधारभूमि प्रस्तुत करता है । स्वांगों में प्रयुक्त मिथकों से आदिममानस को अभिव्यक्ति के अवसर मिलते रहे हैं ।

परिचर्चा :

परिचर्चा में भाग लेते हुए डॉ0 बंशी राम शर्मा ने कहा कि विषय पत्र बहुत महत्वपूर्ण विषय से सम्बन्धित है । भाषा के परम्परागत शब्दों के उदाहरण इसे अधिक रोचक बना सकते हैं । उनका मत था कि एक जनपद के लोक नाट्यों का प्रचलन दूसरे जनपद में होने से पहाड़ी भाषा का सम्प्रेषण अधिक सहजता से सम्भव हो सकता है क्योंकि लोकमानस को सर्वाधिक प्रिय इस विधा में, मनोरंजन के साथ शिक्षा का अटूट सम्बन्ध है । डॉ0 गौतम शर्मा व्यथित ने कहा कि लोक नाट्य तथा गीति नाट्य में भेद स्पष्ट होना चाहिए । उनका कथन था कि करियाला, बांठड़ा, भगत, बौरा और धाजा जैसे लोक नाट्य बुढड़ा, हरण, हरणात्तर, होरिंगफो, चंद्रावली, बुछैन तथा छम आदि मंचनों से पर्याप्त भिन्न हैं । उन्होंने लोकनाट्यों की शब्द-सम्पदा, इतिहास तथा प्राचीन परम्परा के सम्बन्ध में अधि क विवेचन की आवश्यकता पर बल दिया । उनके अनुसार लोक नाट्यों की शैली, प्रस्तुति तथा जन-समुदाय सम्बन्धी परिवेश और अभिरुचियों में परिवर्तन हो रहा है और अब विभिन्न वर्गों के कलाकार उनके मंचन की ओर आकृष्ट हो रहे हैं । डॉ0 गोस्वामी का विचार था कि लोक नाट्यों में श्लीलता व अश्लीलता का प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है । यह लोकरुचि व अभिव्यक्ति पर निर्भर है । त्यौहार उत्सवों से जुड़ने पर लोकनाट्यों का सामाजिक व धार्मिक स्वरूप अधिक मुखर होता है । एम0 आर0 ठाकुर ने कहा कि लोकनाट्यों में अश्लीलता का पुट तो रहता है परन्तु वह नग्न अश्लीलता नहीं होती, यही मंचन की विशेषता है । उनका मानना था कि त्यौहार-उत्सवों से सम्बन्धित लोक नाट्यों का परिवेश धार्मिक तो रहता

ही है तथा भूण्डा और काहिका आदि भिन्न प्रकार के प्रदर्शन हैं परन्तु वे लोकानुरंजन के सशक्त साधन हैं, इनसे सामाजिक सम्बल पुष्ट होता है । उनके अनुसार देव-खेल मूक लोक नाट्य का ऐसा उदाहरण है जिसे लोक नाट्यों की श्रेणी से निकाल देने पर मूक नाट्य का उदाहरण खोज पाना कठिन होगा । परिचर्चा में लोक नाट्य के विकास पर अधिक विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया गया । डॉ0 शमी शर्मा ने कहा कि भगत लोक नाट्य मनौती के रूप में आयोजित किया जाता था । अन्य लोकनाट्यों के इस प्रकार के सन्दर्भों पर भी कार्य होना चाहिए । डॉ0 अमिता शर्मा का कथन था कि लोक नाट्यों की भाषा सीमा रहित होती है अत: इसे भिन्न भाषा भाषी जनपदों में भी दर्शक आसानी से समझ लेते हैं । उनका सुझाव था कि लोक नाट्यों को अधिक लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से लोकनाट्य उत्सवों के आयोजन होने चाहिएं । इस प्रकार विभिन्न लोकनाट्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी सम्भव हो सकेगा । श्री अशोक हंस ने कहा कि लोकनाट्यों में प्रस्तुति का महत्व है । इनमें व्यंग्य व अश्लीलता होते हुए भी उन्हें कलात्मक ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि सामाजिक सुधार व मनोरंजन का मनोहारी संयोग निष्पन्न हो सके । श्री सी0 आर0 बी0 ललित ने सभी शंकाओं का निराकरण किया और कहा कि सम्वाद लोकनाट्य की आवश्यक पहचान हैं । इसके पश्चात् अभिनय का स्थान है । लोकनाट्य की भाषा बोधगम्य तो रहती है परन्तु नितान्त अपरिचित क्षेत्र में उसका महत्व कम हो जाता है । स्थानीय उदाहरण व प्रतिमान भी अन्य क्षेत्रों में बोधगम्य नहीं होते । उनका विचार था कि प्राचीन काल के लोक नाट्यों में शालीनता की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था परन्तु अब भोण्डी अश्लीलता का प्रदर्शन स्वांगों में अधिक दिखवाई देने लगा है। शहर में गांव का कलाकार सहज नहीं रह पाता और उसकी वाक् पटुता पर भी आघात अनुभव होता है ।

लोक नाट्यों का वर्गीकरण अध्ययन तथा विश्लेषण अनेक प्रकार से हो सकता है परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि लोकनाट्य की आत्मा को पहचान कर उसे लोकानुरंजन का सशक्त तथा परम्परागत साधन रहने दिया जाए । वह लोकमानस की थाती है अत: उसका अध्ययन भी उसके वास्तविक परिवेश में ही किया जाना चाहिए ।

पहाड़ी में व्यंग्य रचना

डॉ. शमी शर्मा

व्यंग्य का सम्बन्ध हास्य से है । व्यंग्य विनोद का साधन है । साहित्य में आज यह प्रमुख रूप से व्याप्त हुआ है । भाव की अभिव्यक्ति शब्द, अभिधा, लक्षणा और व्यंजना पर आश्रित है । आचार्यो ने व्यंजनात्मक या ध्वन्यात्मक काव्य को श्रेष्ठ माना है । वस्तुतः व्यंग्य का काव्य में सर्वोपरि महत्व है । रस निष्पत्ति व्यंग्य ध्वनि का ही प्रमुख भेद है । भरत का रस सूत्र है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी से पुष्ट होकर स्थाई भाव रस दशा को प्राप्त होता है । पहाड़ी में व्यंग्य के लिए सर्वप्रथम व्यंग्य को परिभाषित करना आवश्यक है ताकि विषय का उद्घाटन हो सके । आचार्य अभिनवगुप्त ने इसकी अभिव्यक्ति काव्य के व्यंजन व्यापार द्वारा मानी है। उनके मतानुसार साधक काव्य है, साध्य रस है और साधन व्यंजना है। युग बदलता है । परिस्थितियां बदलती हैं । परिवेश बदलता है किन्तु इस क्षेत्र में परम्पराएं और रूढ़ियां, मान्यताएं स्थाई रहती हैं और नहीं बदलती हैं । नये परिवेश में वे अपनी उपयोगिता खो चुकती हैं । युग के बदलाव के साथ-साथ साहित्य के मूल्यों में परिवर्तन आ जाता है । जो साहित्यकार समाज के दायित्वों का निर्वाह नहीं करता, युग सापेक्ष दायित्वों का निर्वाह नहीं करता, वह साहित्य के दायित्व को निभाने में हतप्रभ है । साहित्य व्यष्टि के लिए नहीं समष्टि के लिए रचा जाता है । लोक रंजन के साथ-साथ लोक कल्याण, समाज परिष्कार भी उस का उद्देश्य होता है । लोक रंजन, व्यंग्य विनोद के साथ-साथ व्यंग्यार्थ द्वारा वह चमत्कार उत्पन्न करता है । हास्य रस है, व्यंग्य वृत्ति है । हास्य रस शाश्वत है। व्यंग्य सामाजिक, समसामयिक परिस्थितियों के साथ उत्पन्न होता है और उनके साथ ही चला जाता है । हास्य में व्यंग्य को नकारा नहीं जा सकता । पहाड़ी कविता में व्यंग्य के कतिपय उदाहरण देते हुए और पाश्चात्य संस्कृति पर प्रहार करते हुए पहाड़ी कवि नरेन्द्र अरुण ने अपनी कविता इस प्रकार कही है :

कलिजुगे री माड्रन सीता, खस्माओं गलांदी आई
कलिजुगे री माड्रन ब्यूटी, घर घर पीन्दी पाणी

रंग बिरंगे फुल (पृष्ठ ११)

कई बार कवि के भाव में इतनी महानता आ जाती है कि कवि उपमेय को ही विषयी बना कर रख देता है और उसका व्यंग्यार्थ बोध होने पर काव्य शिल्प प्रतीत होता है । पहाड़ी कवि जय देव किरण की मधुर कविता ''पात्थरो रे माह्णू'' में इसका उदाहरण इस प्रकार है :

लारे लप्पे वाळी गल्ल पत्थर नीं जाणदे
पाथरो रे माह्णू (पृष्ठ 82)

उक्त पंक्तियों में पत्थर ही विषयी बन गया है किन्तु उस के व्यंग्यार्थ से पत्थरों के बीच रहने वाले मनुष्य का बोध होता है । उनकी ही एक अन्य कविता में मन का टकराव न होने पर अपने समय और जीवन को खराब न करने का संदेश मिलता है :

या मन्दिर जा या मेले जा, दो तरफा दिल बेकार नी कर
न ये मिलणी, न से मिलणे, ते भारी अपणी खार नी कर

व्यंग्यार्थ से कवि की मिलन की उत्कट इच्छा और आतुरता का बोध होता है। व्यंग्यार्थ से वह मिलन के लिए चिन्तातुर है । इस प्रकार स्वतन्त्रता के ऊपर प्रहार करते हुए कवि का सशक्त व्यंग्य पहाड़ी कविता में ध्वनित हुआ है । किरण की कविता 'नवीं चानणी' की ये पंक्तियां देखिए :

आज़ादी रा मतलवी की पोंण चली कपटीली चाल
सिन्नी हाखवी री हम दर्दी, बेबसी रओ रुमाल
उड़ी गए गरमीले हंजू, हांसी दूर न्हठाई ती ।

अनूप कुमार सेठी की एक रचना 'रुमाल' में

खबरै कितणे क दिन बीते, कितणे क जुआब मिल्ले
पर पल्ली भरीं दी जादी । सुआला दे बुजके च कोन्डे जान्दे
रींगदी चींगदी रात बीतै भ्याग आई ।

व्यंग्य समय की विकटता के साथ प्रस्फुटित हुआ है ।

अपने काव्य संकलन 'भ्यागा दा परगड़ा' की कविता ''छेवा'' में शमी शर्मा ने व्यंग्य इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए अर्थाभाव को चित्रित किया है :

घिरस्ती देयां स्यापेयां, कोल्हुए देयां बैलां साई
घाणी फेरी लूण तेले दी ।

कुल्हां बग्गियां धने दियां ।
मैं ध्याड़ियां लगांदा रेहया,...

एक अन्य कविता नई सभ्यता-संस्कृति में संस्कृति-सभ्यता पर लेखक ने तीखा प्रहार करते हुए पहाड़ी काव्य में व्यंग्य स्पष्ट किया है :

सभ्यता दे कालजे, खुभा दी पतलून टाई
रोआ दियां धोतियां, पजामे टोपियां
रुला दे परौणे धुड़ी च ।
बेह्‌ल नी अज गल्ल करने दी ।
सत्कारां जो लग्गी गई गाल्ली, सींक
कने जंग लग्गा पैंरा मत्था टेकणे जो
सींका खाह्‌दी सन्ध्या आरती, कनें मन्त्र स्तोत्रां जो लग्गा घुण ।

भ्यागा दा परगड़ा (पृष्ठ-33)

स्वयं के ऊपर उत्पन्न हुए भ्रम को प्रकट करने के लिए पहाड़ी कवि डॉ. व्यथित ने अपनी पहाड़ी कवितां 'दो टकेयां' में स्पष्ट किया है :

कैंह मनें दा चेता मेरा दूर जाई पल़कोई जांदा
अणहोणे अण चिन्दे भरना, भरमा दा लटकोई जांदा
कर्मा दी बी नोखी रचना, क्या जीणा क्या रोणा हसणा
अपणे ही आणे पर अप्पूं, बैहमी मन भरमोई जांदा

डॉ. पीयूष गुलेरी पहाड़ी कवि ने अपनी कविता 'छैल गरां' में अपने ग्राम के प्रति मार्मिक संवेदना व्यक्त की है । उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं :

इस गराएं दी या धरतू, मेरे अल्हड़ नखरे झल्ले
जदुं जदुं गेया परदेसैं इन्हीं प्यार सुनेहड़े छल्ले
सददै सददै मिंजो कदै बधेआ, कदी बलोटू हक्कां पाई
काले जमणू राडू गुदडू, अम्ब टियालू देई साई
बाण गंगा रा रेतर सद्दै, मैं बी इन्हां जो हक्का पां
मेरा बांका छैल गरां ।

हास्य रस को व्यंग्य से अलग नहीं किया जा सकता । गुलाब से जिस प्रकार कांटा अलग नहीं हो सकता, उसी प्रकार हास्य व्यंग्य का सहोदर है । जब पुरानी व्यवस्था से जकड़न नहीं टूटती तब नये परिवेश में वह अपनी उपयोगिता खो देता

है । अत: विद्रूपता हो जाती है । यह विद्रूप भी हास्य व्यंग्य समभरणी है एवं अन्न दाता है । क्योंकि समाज में जितनी विसंगतियां, असमानताएं तथा विडम्बनाएं होंगी, उतनी ही हास्य व्यंग्य की सम्भावनाएं बढ़ जाएंगी । हास्य व्यंग्य पूर्ण होता है । जैसे जब कोई निर्बल लाठी के सहारे आ रहा हो तो उसे देख कर कोई कहे कि देखो, 'अपनी गदा लिये भीमसेन आ रहे हैं ।' यहां व्यंग्य के द्वारा उसकी निर्बलता को स्पष्ट किया गया है । पहाड़ी साहित्य में इसके उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं ।

नवीन हल्दूणवी ने 'ग्रांए च आई जनेत' का वर्णन हास्य व्यंग्ययुक्त मार्मिक शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :

कुड़मां कुड़मां दी मिलणी जो होई
नाई बचारा सैह गेआ पथोई
परोहत परतोया सैह पग्गा समेत

पहाड़ी साहित्य की गज़ल में भी व्यंग्य भरा है । गज़ल का प्रचलन पहाड़ी भाषा में वर्तमान दशक की एक विशेष उपलब्धि है। इस दशक की पहाड़ी कविता में गज़ल की ओर प्रचलन बहुत बढ़ा है । इसमें निरन्तर परिष्कार होता जा रहा है। गज़ल में व्यंग्य के कुछेक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं । गज़ल भावाभिव्यक्ति का विशेष माध्यम है जिसमें नाविक के तीर की भान्ति तीखा प्रहार होता है । वस्तुत: उसके व्यंग्य से भी प्रखर चोट नि:सृत होती है जो पहाड़ी काव्य में व्यंग्य को महत्वपूर्ण स्थान दिलाती है । प्रत्यूष गुलेरी ने अपनी पहाड़ी गज़ल में आधुनिक मनुष्य और समाज के प्रति इस प्रकार व्यंग्य प्रकट किया है :

मुलखा की लगी गेया गंगड़ दोस्तो
माहणू ऐ वणी गेया डंगर दोस्तो
बस्तियां च दिक्खो हन भूतड़ भतोए
कोई औए चलाए खरा तंगड़ दोस्तो

पहाड़ी गज़ल के ख्यात कवि डॉ. प्रेम भारद्वाज के काव्य संग्रह 'मौसम खराब है' में पहाड़ी गज़ल के सशक्त व्यंग्य उभर कर सामने आए हैं :

इन्हां पेडुआं दे नी थल्ले
भरा ओंएं कितणे बी गल्ले
कैसे सुन्यारे बल फसी गे
कंगणुआं दे होई गै छल्लै

जदूं लगे थोड़े सुस्तोणा
न्हठ भज्जां दे पई गे हल्ले

प्रेम भारद्वाज ने समाज की विशेषताओं, विघटन और जीवन-मूल्यों का खोखलापन व्यंग्य के द्वारा प्रस्तुत किया है । गज़ल में उनकी रवानगी और आंचलिक परिवेश की मानसिकता देखते ही बनती है । उनके उपमान और उपमेय में ग्राम्यता बोलती है । उनके व्यंग्य में आंचलिकता मुखरित हुई है :

मेदां दे घोड़े जां तंगे
हिरखां देयां जोड़ेयां दंगे
ढिड खाली थे जिस्म भी नंगे
मुंहें पर थी हर-हर गंगे
अंदर गतिया मेंड़ी खुस थी
ऐसे भी कुछ भड़के दंगे
जिस स्हावैं खिसका दी धरती
मते रोज नी टिकणे डंगे

भारद्वाज ने उक्त गज़ल के माध्यम से तीखा व्यंग्य किया है । पहाड़ी कविता में लेखक की यह कृति मूलत: व्यंग्य पर आधारित है । उनकी पहाड़ी कविता में नये बिम्ब और उपमान सामने आए हैं। समाज पर उनका व्यंग्य एवं पैना कटाक्ष इन पंक्तियों में देखिए :

हथ लाणा नी पैर हिलाणा
बोलै बड्डी मच्छी मेरी
ढेर मढेरा मान है तां
नाल जे पौंगी पौणी ढेरी
प्रेम जोत किछ पड़दैं वाला
हिरख बरोधां दी है न्हेरी

नवीन हलदूणवी की रचना 'बोल्ला करदे पहाड़' पहाड़ी लोक संस्कृति को दर्शाती है । उसमें हास्य रस और लोक परम्परा का परिवेश भी प्रस्तुत हुआ है । ''मैं बणजारा गीतां दा'' में पहाड़ी कवि सागर पालमपुरी ने भी बहुत सुन्दर व्यंग्य के चित्र उभारे हैं । देवराज संसालवी ने अपने काव्य संग्रह 'असां दा हिमाचल' में कुछ हास्य व्यंग्य का पुट प्रस्तुत किया है ।

पहाड़ी कवि हरिकृष्ण मुरारी ने भी पहाड़ी कविता में हास्य रस को उभारा है ।

कुछ पंक्तियां देखिए :

काणा गंजा टेपरा, मुच्छां आली़ जनानी
जायें जेहड़ा इन्हां दे नेड़े, मरणी तिसदी नानी
मरनी तिसदी नानी, नेड़े जाई मत बौहन्दे
इन्हां दा लग्गै रगड़ा, भिरि नीं कदि सरोन्दे
फसै मुरारी कोई इन्हां स्यापा पाणा
थोड़े गंजा रज्जी जान्दा, पूरे रज्जा काणा

एक अन्य कविता में कवि मुरारी विवाह से झंझराड़ा को अच्छा समझाता है :

कजो करना ब्याह
करी लेणा झंझराड़ा
नां किछ देणा नां किछ लैणा
कजो पाणा मता पुआड़ा
व्याहे ते खरा झंझराड़ा

निबन्ध में व्यक्तित्व की छाप के द्वारा ही निबन्धकार का आत्म प्रकाशन होता है । संक्षिप्तता, व्यक्तित्व की छाप, बुद्धितत्व, अनौपचारिकता एवं स्वाभाविकता आदि निबन्ध के तत्व ही उसका स्वरूप स्थापित करते हैं । निबन्धों में व्यक्तित्व की छाप के द्वारा ही निबन्धकार का आत्म प्रकाशन होता है । उसमें विषय सामग्री में लेखक का मन और चरित्र दोनों प्रतिबिम्बित होते हैं । निबन्ध और लेख में भेद यह है कि निबन्ध विषयीगत होता है और लेख विषयगत होता है । वस्तुत: निबन्ध कार ही व्यंग्य के द्वारा अपने निबन्ध को प्राणवान् बनाता है । इसके लिए निबन्ध कार समास शैली, व्यास शैली या धारा शैली का प्रयोग करता है । इसमें निरन्तर मुहावरों का प्रयोग करके अपने विषय व शीर्षक को स्पष्ट करता हुआ व्यंग्य तीखे प्रहार से विषयगत विचारों को नगीनों की तरह जड़ता चला जाता है। वाक्य में उसका शब्द-शब्द नींव के पत्थर की तरह सुदृढ़ होता है । व्यंग्य मुहावरों से भी उसे अधिक सुदृढ़ बनाता हुआ उसमें चमत्कार उत्पन्न करता है । यदि गद्य भाषा का स्वरूप है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है और व्यंग्य भाषा की पंक्ति है ।

सभी निबन्धकार व्यंग्यकार नहीं होते । निबन्धकार की रचना में व्यंग्य का पुट तो रहता ही है । कुछ निबन्धकार व्यंग्य से ही अपना विषय प्रस्तुत करते हैं एवं विचारों का प्रतिपादन करते हैं । उनके साथ निबन्धकार तथा व्यंग्यकार, दो समास जुड़ जाते हैं । श्रेष्ठ निबन्धकार ही व्यंग्यकार होता है । पहाड़ी साहित्य के निबन्ध

क्षेत्र में स्थान-स्थान पर व्यंग्य आया है। उससे निबन्ध की शैली सशक्त बनी है। वस्तुतः पहाड़ी भाषा साहित्यिक रूप ग्रहण कर चुकी है और उसके गद्य एवं पद्य में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है । डॉ. आत्मा राम पहाड़ी भाषा के श्रेष्ठ निबन्ध कार हैं । उन्होंने पहाड़ी साहित्य में निबन्ध को एक नई दिशा दी है । उनके गद्य में व्यंग्य के कतिपय नमूने इस प्रकार हैं :

'भत्त होर स्वादला कियां बणी सकदा । इस बारें रात दिन खोज करने दी आवश्यकता है । राती जो भत्त बड़ा स्वादला लगदा कनें ठीक रैंहंदा . . , कई लोग तां खांदे खांदे इ टुल्ली पौंदे । लगी पौंदे पुच्छां देणा।'

अपने एक दूसरे निबन्ध में डॉ. आत्मा राम ने 'हत्थ मरोड़ू' का व्यंग्य के द्वारा बड़ा सशक्त वर्णन किया है जिसके कुछ भाग इस प्रकार हैं :

'कुसी तगड़े माणुएं ने हत्थ मिलाणे दी कोस्त नी करनी चांइदी । क्या पता सेह हत्थ मरोड़ू ई निकले़ । हत्थ मलाणा ई छड्डी देणा चांइंदा।'

डॉ. आत्मा राम के व्यंग्य संवादात्मक शैली में आते हैं । वे परस्पर वार्तालाप या कुछ किसी से कहते हुए अपने विषय को प्रस्तुत करते हैं । उन्होंने अपने निबन्ध 'जाहलु मैं लिखदा' में स्वकथन को अपनाकर भी व्यंग्य प्रस्तुत किया है । इस निबन्ध की भाषा में व्यंग्य बहुत उभर कर सामने आया है । वे लिखते हैं :

लैण कुती लम्मी ऐ
लैण कुती छोटी ऐ
कुती तां पतली
कुती तां मोटी ऐ
पहाड़ी कविता ऐ जे लामेयां दी कोटी ऐ ।

उक्त निबन्ध में समीक्षकों ने तो निबन्धकार का श्राद्ध क्या पढ़ना, निबन्धकार ने ही समीक्षकों का श्राद्ध पढ़ दिया है ।

मोती लाल घई ने भी अपने निबन्धों में यथा स्थान व्यंग्य प्रस्तुत किए हैं । उनके निबन्ध ''बाल्हा रा जीउणा'' से एक उदाहरण इस प्रकार है :

जगा जगा मंदिरां री भरमार । साधु महात्मेयां रे बसेरे ।
असली तां कुछ नकली । चोरी, चकारी, चलाई, चिमटेयांरा
चणाका, सुलफे रा सटाका, . . . राती रे न्हेरे सब चली पौंदे ।

अपने हास्य व्यंग्य निबन्ध 'जुटमार' में डॉ. प्रत्यूष गुलेरी ने जुट मार के साथ–साथ गुझमार, कुहाड़मार, मारोमार के वर्णन किए हैं । परन्तु जुटमार सबसे आगे बढ़ गया है 'जुट्टेयां दी मार सब ते मशहूर कनैं इस दी (शायद इसका उन्होंने अपने ऊपर अनुभव किया है) महिमा सही जाण दे जिन्हां दे सिरे पर पेई होए जां पोए । मजनू जिह्नां जे कुड़ियां ने छेड़णा . . . से इस मारा ते घबरादें नहीं । देई दिंदे गाह्ण । लंघी गे तां खरा नहीं ता रुढ़ी गे तां रुढ़ी गे । कालेजां च दारवलै ते बेह्ले, बस अड्डेयां पर, गड्डियां दे स्टेशनां पर, जो मेलेयां च जुटमार होआ दी . . .'

मोती लाल घई ने भी अपने निबन्धों में अच्छा व्यंग्य प्रस्तुत किया है ।

पहाड़ी साहित्य में ।99। ई0 में डॉ. गौतम व्यथित की रचना 'गितलू' प्रकाशित हुई । इस कृति ने सिद्ध कर दिया है कि पहाड़ी भाषा में लोक रंजन की शक्ति विद्यमान है । लेखक की पैनी दृष्टि ने जन जीवन से व्यंग्य को उभारा है और उसके द्वारा अपने निबन्धों को पुष्ट किया है । इसमें 18 निबन्ध हैं जो सभी हास्य व्यंग्य से ओतप्रोत हैं । धूएं का वर्णन करता हुआ लेखक लिखता है :

'धूं बड़ा बुरा बड़े–बड़े विषले जीव धूएं ते खड़े न्हठदे । भंडोर बढणा होये तां धूं आदि, होलू बढणा होए तां रंगड़ धमोड़ा, धरेगारू, सर्प न्हठाणा होये तौं धूं पांदे।'

भाषा कला एवं संस्कृति विभाग के द्वारा पहाड़ी लेख माला निबन्ध की पुस्तक नवम्बर सन् 1975 में प्रकाशित हुई । उसमें भी कुछ निबन्ध हास्य व्यंग्य प्रधान प्रकाशित हुए हैं । उक्त लेख माला का प्रथम निबन्ध ''हसदेयां रे घर बसदे'' डॉ. बंशीराम शर्मा की श्रेष्ठ रचना है । इसमें हास्य रस की विशेषताओं का उल्लेख हुआ। इसमें हास्य रस के भेद का पहाड़ी रूपान्तर देकर पहाड़ी भाषा में हास्य का शास्त्रीय पक्ष सम्पुष्ट किया गया है । थोड़ा हास्य (मुस्कड़्याह्णा) या हल्का जेहा मज़ाक करना, 2. हाज़र जवाबी, 3. मज़ाक या व्यंग्य, 4. ताह्ना और 5. स्वांग हास्य रस के मुख्य भेद बताये गए हैं । डॉ. बंशी राम शर्मा ने हास्य के विविध पक्षों का गंभीरता से मज़ाकिया कथानक देते हुए वर्णन किया है । हास्य का गुणानुवाद तो इसमें है ही, साथ ही कहीं – कहीं पर व्यंग्य के उदाहरण भी दिये गये हैं :

इक कहावत है भई हासदा माह्णू कने हिलदा खुण्ड बुरा हुआं । दुज्जा मतलब हा भई हसदे माह्णुए रे दिला रा भेत लैंणा कठण हुआं कनैं हिलकदे खुण्डा रा पता नीं हुंदा भई कदी माल्ला कने ही पटोई जाओ । हासिया री पुड़ी छडणे औले तां सबीरे मुंहलग्ग हुई जाहें ।

डॉ. बंशी राम शर्मा ने हंसी वाली कुछ कहावतें भी पहाड़ी भाषा में प्रस्तुत की हैं और उनसे सम्बन्धित व्यंग्य को भी निबन्ध में जोड़ दिया है । यथा, वे लिखते हैं : 'हासदिया वी परौहणा, रोन्दियां वी परौहणा', और 'खाओ पीओ करो नन्द, भाण्डेया मांज्जो परमानन्द ।' पहाड़ी लेख माला में डॉ. आत्माराम शर्मा का व्यंग्यपूर्ण निबन्ध 'चुंगां', ठाकुर मौलूराम का निबन्ध 'सुथण' तथा डॉ. वेद प्रकाश अग्नि का निबन्ध 'कला फणसोणे दी' हास्य व्यंग्य के अच्छे उदाहरण हैं ।

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि समस्त पहाड़ी साहित्य में - कविता, गद्य, एकांकी, कहानी आदि विधाओं में स्थान-स्थान पर व्यंग्य भरा है । साहित्य में व्यंग्य का स्थान महत्व पूर्ण होता है । पहाड़ी साहित्य में व्यंग्य आने से जहां यह भाषा सशक्त एवं रोचक बनी है वहां इसमें आकर्षण, विशिष्ट पहचान तथा साहित्यिकता का भी समावेश हुआ है । यह लोक भाषा व्यंग्य की सच्चे रूप में संवाहिका है और उसमें जन-जन के मनोरंजन की शक्ति निहित है । व्यंग्य विनोद जन-जन के निकट होता है और इससे कर्मठ तथा नीरस दैनिक जीवन में रस का संचार होता है । यही कारण है कि पहाड़ी साहित्य में व्यंग्य ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना कर पर्वतीय जीवन में गल्प, ठिठोली, हास्य तथा उल्लास को साकार करने के लिए उल्लेखनीय योगदान दिया है ।

पहाड़ी में अनुवाद साहित्य

देसराज डोगरा

अनुवाद का महत्व

आधुनिक युग में जब यातायात के साधनों के विकास के कारण संसार बहुत छोटा हो गया है और विभिन्न राष्ट्र एक दूसरे के समीप आते जा रहे हैं तो एक समुदाय को दूसरे समुदाय की भाषा का ज्ञान होना भी आवश्यक है । आज ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग, अनुसंधान और खोज हो रही है । अनेक प्रकार के शोध जहां साहित्य के क्षेत्र में हुए हैं वहां अनुवाद कार्यो का भी पुनर्मूल्याकन एवं परिशोध हुआ है । अनुवाद कार्य साहित्य के क्षेत्र में एक विधा है जिस के आदान-प्रदान से सर्वत्र अन्तर्देशीय साहित्य जगत में भावात्मक और विचारात्मक समन्वय स्थापित हुआ है । मानव चिन्तन की दिशा में विकास की गति तीव्र हुई है । विभिन्न देशों के वैज्ञानिकों ने जो परिश्रम और साधना से फल प्राप्त किये हैं, वे इसके माध्यम में हमें सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं । किसी भी व्यक्ति के लिए बहुत सारी भाषाओं को जानना कठिन होता है जिसकी क्षतिपूर्ति अनुवाद द्वारा की जाती है । हमारे शास्त्र, वेद, उपनिषद् यदि आज जगत् में प्रसिद्ध हैं तो इसलिए कि इनका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद हुआ । वस्तुत: वर्तमान काल में अनुवाद का महत्व विश्व व्यापी हो गया है । यदि आज हम यूनानी चिकित्सा पद्धति का प्रयोग करते हैं तो इसके पीछे भी यही कारण है । अनुवाद से ही आज संसार भर की उत्कृष्ट कृतियां हमारे साहित्य में समाविष्ट हुई हैं । यदि अनुवाद की परम्परा न होती तो हमारे ग्रन्थ लुप्त हो गए होते । अनुवाद की परम्परा से ही बौद्ध धर्म समग्र एशिया, तिब्बत, चीन, जापान आदि देशों में फैला । भारत से बौद्ध साहित्य का अनुवाद इन देशों की भाषाओं में हुआ । बौद्ध भिक्षुओं नें वर्षो रह कर यहां की भाषा से अपनी भाषाओं में ग्रन्थों में साहित्य की संरचना की तथा सिद्धान्तों को निज भाषा में प्रतिष्ठित किया । आज भी बौद्ध धर्म पर बहुत से ग्रन्थ, जो लुप्त हो गए थे, हमारे विद्वानों के परिश्रम द्वारा तिब्बत आदि स्थानों से वापिस ला कर अनूदित किए गए । इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि बारहवीं और तेरहवीं

शताब्दी में भारतीय ज्ञान का अरबी फारसी में अनुवाद होना और वहां से योरूपीय भाषाओं तक पहुंचना प्रकट करता है कि अनुवाद कला उस समय तक पर्याप्त विकसित हो चुकी थी । किन्तु जिस गति से हम आज बाहर के संसार की ज्ञान-विज्ञान की प्रगति को जान पा रहे हैं, वह पहले कभी नहीं हुआ । यह इसलिए भी सम्भव हुआ है कि अनुवाद की कला और तकनीक आधुनिक काल में बहुत विकसित हुई है । परिणामत: सहस्रों भाषाओं के होते हुए भी हमारी जानकारी एक दूसरे राष्ट्र के बारे में सुलभ और सुगम बन गई है । आज रेडियो, टेलीविज़न और उपग्रहों द्वारा कुछ ही समय में संसार भर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है । अत: प्रत्येक भाषा या समूह के लिए अनुवाद उतना ही अधिक महत्वपूर्ण हो गया है, जितना कि मौलिक लेखन ।

पहाड़ी भाषा का स्रोत

पहाड़ी भाषा उतनी ही पुरानी है जितनी कि अन्य भारतीय भाषाएं हैं । उत्तर भारत की बहुत सी भाषाएं संस्कृत और कौरवी से निकली हैं । पहाड़ी भाषा की शब्द-सम्पदा से इस बात की पुष्टि होती है क्योंकि पहाड़ी के प्राय: प्रत्येक वाक्य में संस्कृत के अपभ्रंश रूप सामने आ जाते हैं । आप जितने भी ग्रामीण क्षेत्रों में जाएंगे, इसकी उतनी ही प्रयुक्त होती प्रामाणिकता दृष्टिगोचर होगी । हमारे घरों, गांवों तथा ग्राम्य परिवेश में न जाने कब से यह भाषा चली आ रही है । यदि प्राचीन काल में इस भाषा या विभाषा में साहित्यिक संरचना नहीं हो पाई, तो यह बात अन्य भाषाओं और उपभाषाओं के विषय में भी घटित होती है । प्राचीन काल साहित्यिक संरचना के क्षेत्र में आधुनिक काल की तरह इतना अधिक मुखर नहीं रहा । हमारा वैदिक साहित्य वैदिक-संस्कृत में रचा गया । परवर्ती युग में संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में दर्शन और धर्मग्रन्थों की संरचना हुई । आज भारत में जितनी भी भाषाएं प्रचलित हैं, वे आधुनिक युग की उपज हैं । यह कहना सही है कि जहां यातायात के साधन ठीक थे तथा एक दूसरे से मिलने की सुविधाएं अधिक थीं, वहां मनीषियों, चिन्तकों का ध्यान भाषा की संरचना की ओर पहले चला गया । बाहर से आने वाले हमलावरों के कारण भी लोगों को अपनी भाषा और संस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता अधिक प्रतीत हुई । इस की अपेक्षा हिमाचल प्रदेश एवं अन्य पहाड़ी क्षेत्रों में,जहां आवागमन के साधन शीघ्र विकसित नहीं हो पाए, आदान-प्रदान में दुरुहता रही और लोगों का ध्यान इस ओर देर से आकृष्ट हुआ । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जब संविधान में अनेक

अन्य भाषाओं को राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान प्राप्त हुआ, तो उनके विकास और विस्तार की सम्भावनाएं बढ़ गई । हिमाचल प्रदेश जैसा अब विकसित हुआ है, वैसा तब नहीं था । इसके आधुनिक स्वरूप को प्राप्त करने में पर्याप्त समय लगा है । वस्तुत: पहाड़ी में साहित्य सृजन की ओर ध्यान विधिवत् रूप से ईसवी सन् 1966 के पश्चात् ही दिया गया ।

पहाड़ी भाषा में ताम्र पत्र, इकरारनामे, हुकमनामे तेरहवीं शताब्दी के भी उपलब्ध हैं, परन्तु इसमें साहित्यिक कृतियां इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही प्रकाश में आई । वर्तमान समय में वस्तुत: पहाड़ी गांधी बाबा कांशीराम आधुनिक पहाड़ी भाषा के लौकिक स्वरूप के लिए प्रसिद्ध हैं, यह कहते हुए अत्युक्ति नहीं होगी । ईसवी सन् 1966 के पश्चात् पहाड़ी भाषा का साहित्यिक स्वरूप दिन व दिन निखरने लगा । भाषा में निरन्तर परिष्कार होता चला गया । प्रदेश के अनेकों लेखक साहित्य की अनेक विधाओं, यथा, नाटक, कहानी, निबंध, कविता, व्यंग्य, इतिहास आदि में ढेरों पुस्तकें लिख रहे हैं ।

राज दरबार, व्यवहार एवं व्यापार में पहाड़ी का प्रचलन पर्याप्त पुराना है, किन्तु शिष्ट साहित्य का लेखन अभी हाल की ही बात है । पहले हो भी कैसे सकता था! पहाड़ का यह भाग विविध रियासतों और रजबाड़ों में बंटा हुआ था । पुनर्गठन से पूर्व इसके भू भाग अन्य प्रान्तों से जुड़े रहे । पहाड़ के लोग शोषण के भी शिकार थे । यदि कोई आवाज़ उठाता तो दबा दी जाती थी ।

पहाड़ी भाषा के सम्बन्ध में एक प्रश्न आम पूछा जाता है ''पहाड़ी तो ठीक पर, कहां की पहाड़ी? सिरमौर की या कांगड़ा की, महासु की या चम्बयाली?'' लाहौल और स्पिति तथा किन्नौर के दो ज़िलों में बोली जाने वाली बोलियां पृथक श्रेणी में आती हैं । जब इन सब उपभाषाओं को हम पहाड़ी कहते हैं तो इन में लिखा हुआ साहित्य भी पहाड़ी भाषा का साहित्य माना जाएगा । अनुभव से पता चलता है कि पहाड़ी की सभी बोलियां समय के गुज़रने के साथ-साथ एक दूसरे के समीप आती जा रही हैं । अत: एक क्षेत्र के लोगों को दूसरे क्षेत्र के लोगों की भाषा को समझने में विशेष कठिनाई नहीं आती है । इतना ही नहीं, यहां की संस्कृति में भी एकरसता व्याप्त हुई । हमारी परम्पराएं घुल मिलकर एक हुई हैं । यही कारण है कि पहाड़ी भाषा का एक स्वरूप स्पष्ट हो चुका है ।

पहाड़ी साहित्य की विशेषता

पहाड़ी साहित्य का इतिहास यद्यपि बहुत पुराना अथवा लम्बा नहीं है किन्तु पिछले

तीन दशक में जो इसमें गति आई है, जो परिष्कार हुआ है, उसकी समता नहीं । पहाड़ी साहित्य अपनी मिट्टी की गंध से गंधायमान है । इसमें पहाड़ी जन-जीवन की झलक मिलती है । कहानी हो या कविता, उपन्यास हो या व्यंग्य, सभी में आप यहां के उत्सवों, रहन-सहन और लोक-संस्कृति का अवलोकन करेंगे । आंचलिक विशेषताएं, विषमताएं, समस्याएं आदि लेखकों के विवेचित विषय रहे हैं । हमारे पहाड़ी साहित्य की यह विशेषता है कि उसने अपने परिवेश का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है तथा उसे लोक प्रिय बनाया है ।

पहाड़ी साहित्य का मूल्यांकन

पहाड़ी में आलोचकों की कमी है । जो लिखा गया है उसके पीछे लेखकों एवं साहित्यकारों का पहाड़ी के प्रति अनन्य प्रेम ही दृष्टिगोचर होता है। आर्थिक दृष्टि से उन्हें बहुत कम लाभ प्राप्त हुआ है । राज्य सरकार और अकादमी की पत्रिकाओं के अतिरिक्त केवल 'हिमधारा' और 'बागर' दो ही विशुद्ध पहाड़ी की पत्रिकाएं हैं । ऐसी अवस्था है कि पहाड़ी भाषा में पुस्तकें लिखने के लिए संस्थान या मंच नहीं । प्रकाशक भी इसे आर्थिक लाभ अधिक न होने से नहीं स्वीकारते । वस्तुत: पहाड़ी लेखक को अपनी ही जेब से रुपया व्यय कर के पहाड़ी पुस्तक का संस्करण निकालना होता है । अभी तक पहाड़ी भाषा में लिखे गये ग्रन्थों की संख्या सीमित है और उन्हें पढ़ने और समझने बालों की संख्या भी न्यून है । वस्तुत: अनुवाद कार्य की नितान्त आवश्यकता बनी हुई है ।

अनुवाद की समस्या

अनुवाद की आवश्यकता उस समय प्रतीत होती है जब किसी आंचल विशेष के लोग दूसरी भाषा में संरचित साहित्य को जानने के इच्छुक हों तथा उस प्रकार का साहित्य उन्हें अपनी भाषा में उपलब्ध न हो । सत्य तो यह है कि पहाड़ी भाषा भाषी लोगों का पठन पाठन हिन्दी और अंग्रेज़ी के माध्यम से हुआ है । वे अपनी जिज्ञासा को हिन्दी और अंग्रेज़ी के मूल ग्रन्थों को पढ़ कर पूरा कर लेते हैं । इसके साथ ही जिस भाषा में उन्होंने शिक्षा ग्रहण की है उसमें उन्हें पढ़ना स्वाभाविक और सरल जान पड़ता है । पहाड़ी भाषा अभी तक प्राइमरी स्तर तक भी नहीं पढ़ाई जा रही । माध्यमिक और उच्च कक्षाओं की तो बात ही अलग है । यद्यपि लोग घर में पहाड़ी भाषा बोलते हैं और व्यवहार और संस्कार में बोलचाल के साथ लोक गीत भी पहाड़ी में गाए जाते हैं । यही नहीं, यहां के जन-जीवन में पहाड़ी भाषा

व्यवर्हित होती है, तथापि अक्षर ज्ञान के लिए वे पहाड़ी और अंग्रेज़ी का सहारा लेते हैं । इसलिए पहाड़ी भाषा को जब तक डोगरी या पंजाबी की तरह स्कूलों,कालेजों में नहीं पढ़ाया जाता, उनकी अनुवाद करने की गति धीमी रहेगी । जिस प्रकार मौलिक कृतियों के पढ़ने के लिए पाठकों का अभाव बना हुआ है, वैसे ही अनूदित साहित्य के पाठकों को ढूंढना भी कठिन होगा ।

पहाड़ी भाषा का मानकीकरण जब तक नहीं हो जाता, लेखक दुविधा में जकड़ा रहेगा । वह किस आंचल की भाषा में अनुवाद करे जो अधिक संख्या के पाठकों तक पहुंच सके । अधिक से अधिक संख्या में लोग उससे लाभान्वित हों । आज समय आ गया है कि इस समस्या का समाधान होने वाला है । लेखक या अनुवादक को आश्वासन मिलेगा कि जिसमें वह लिख रहा है या अनुवाद कर रहा है उसका भविष्य धूमिल नहीं है । आज प्रतिबद्ध लेखक तपस्या कर रहा है और समर्पित होकर आशा कर रहा है कि उसकी पहचान होने वाली है तथा उसके द्वारा लिखित साहित्य की आलोचना, प्रशंसा और मूल्यांकन होने वाला है । इस सम्बन्ध में सरकार को भी अपनी नीति स्पष्ट करनी चाहिए ।

प्रकाशन की समस्या

पहाड़ी के लेखक मध्यम श्रेणी के हैं । यह वर्ग सदैव अपनी आजीविका के अन्य साधनों से जुड़ा रहता है । कोई कुछ समय निकाल कर लिखता है तो कठिनाई प्रकाशन की आ जाती है । बहुत सारे लेखकों की पाण्डुलिपियां चूहों और दीमक का भोजन बनती हैं । यदि किसी ने पेट काट कर छपवाई हैं तो अलमारियों में मैली हो रही हैं । आवरण टूट रहे हैं । अकादमी की योजनाएं पैसे के अभाव से पूरी नहीं हो पा रही । कागज़ का मूल्य बढ़ता जा रहा है । प्रकाशक कुछ राशि लिए बिना छापने को तैयार नहीं । ऐसी स्थिति में लेखकों और अनुवादकों को विकट समस्याएं निरन्तर घेरे हुए हैं ।

पहाड़ी भाषा में अनुवाद की परम्परा

पहाड़ी भाषा में अनुवाद की ओर ध्यान थोड़े समय से ही दिया जाता रहा है और वह भी अधिकतर धर्म ग्रन्थों का । इसकी आवश्यकता सब से पहले ईसाई मिश्नरियों को प्रतीत हुई । उन्होंने अपने प्रचार-प्रसार के लिए जन-भाषाओं, स्थानीय बोलियों को अपनाया, ताकि उनका संदेश जन-साधारण तक पहुंच सके । चम्बा के गिरिजाघर में बाईबल का अनुवाद चम्बियाली जन-भाषा में आज भी

देखा जा सकता है । यह ईसवी सन् 1885 के आस पास छपा था । डॉ. प्रत्यूष गुलेरी का मत है कि गुलेर निवासी एक कवि ने महाकवि केशव की कृतियों 'रसिक प्रिया' और 'कवि प्रिया' का अनुवाद लगभग दो सौ वर्ष पूर्व पहाड़ी भाषा में किया था । यदि भावानुवाद और रूपान्तर को भी अनुवाद की श्रेणी में लिया जाए तो लगभग इसी काल में ऋष देव डोगरा धमेटा निवासी ने तुलसी दास और केशव की कृतियों पर आधारित पहाड़ी मिश्रित ब्रज भाषा रामायण संवत् 1806 विक्रमी के आस पास लिखी थी । वह भी अनुवाद की श्रेणी में लाई जा सकती है ।

रामायण का पहाड़ी अनुवाद कई विद्वानों ने किया है जिनमें पुरोहित चन्द्रशेखर 'बेबस' का राम चरित मानस के अयोध्या काण्ड का एक अंश हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी की पुस्तक पहाड़ी लोक रामायण में है । संसार चन्द प्रभाकर द्वारा रचित महाकाव्य 'माया' उनकी मौलिक कृति है । यह पहाड़ी भाषा की एक गौरवपूर्ण कृति के रूप में सामने आई है । रामायण के पश्चात् दूसरे ध र्म ग्रन्थ गीता का पहाड़ी अनुवाद पं. भवानी दत्त शास्त्री ने पद्य में किया है । यद्यपि यह उन्होंने बहुत पूर्व किया था किन्तु पुस्तक रूप में सन् 1989 ई. में ही आया । इससे पहले पहाड़ी में भगवद्गीता का अनुवाद श्री सी. एल. कपूर द्वारा सन् 1974 ई. में प्रकाशित किया गया । ईसवी 1977 में स्वर्गीय चक्रधारी शास्त्री ने गीत गोविन्द का पहाड़ी अनुवाद प्रकाशित कर के अनुवाद कार्य को आगे बढ़ाया । श्री मद् भगवद्गीता का सुन्दर अनुवाद पहाड़ी भाषा में डॉ. श्याम लाल डोगरा ने सन् 1982 ई. में किया । गीता के इस पहाड़ी अनुवाद की विशेषता यह है कि इसमें पहाड़ी भाषा के शब्दों के न केवल भावार्थ अपितु: शब्दार्थ भी दिए हुए हैं । इसकी भूमिका भारत के प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. सिद्धेश्वर वर्मा ने लिखी है ।

प्रो. नारायण चन्द पराशर ने बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के अनुवाद किये हैं । भगवान् बुद्ध जी की अमर वाणी 'धम्म पद' का अनुवाद करके उन्होंने इस महान ग्रन्थ को पहाड़ी भाषा भाषी जनता को समर्पित किया । यह पुस्तक मूल पालि भाषा से अनूदित की गई । प्रो. पराशर ने ही बौद्ध धर्म के एक अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ आचार्य शान्ति देव कृत बोधिचर्यावतार का पहाड़ी अनुवाद वर्ष 1994 में प्रकाशित किया है । यह ग्रन्थ भी संस्कृत से सीधे पहाड़ी भाषा में अनूदित किया गया।

ईसवी सन् 1973 में शारदा देवी पंजकर्ण ने अपने पूज्य पिता बदरी दत्त शर्मा के निर्देशन में दुर्गा सप्तशती के संस्कृत श्लोकों का पहाड़ी अनुवाद किया । यद्यपि यह दुर्गा सप्तशती का पहाड़ी में श्लोकों का अनुवाद कवच एवं ध्यान, न्यास और पाठ सहित सन् 1965 ई. में लिखा गया था, किन्तु इसे प्रकाशित पुस्तक का स्वरूप सन् 1973 ई. में डॉ. शमी शर्मा ने पोथी घर प्रकाशन से दिया और भूमिका

भी लिखी । इस अनुवाद की विशेषता यह है कि जिस संस्कृत छन्द में सप्तशती के श्लोक हैं उसी छन्द में पहाड़ी कविता में अनुवाद किया गया है । ध्यान में जो संस्कृत छन्द है वही छन्द पहाड़ी भाषा में है ।

पं. भवानी दत्त शास्त्री द्वारा सन् 1978 ई. में संस्कृत से पहाड़ी अनुवाद 'हिम कुसुमांजली' के रूप में एक नया प्रयोग सामने आया । विद्वान लेखक ने संस्कृत काव्य का एक साथ हिन्दी,पहाड़ी और अंग्रेज़ी में अनुवाद करके पाठकों को हिन्दी, पहाड़ी भाषा को एक साथ जानने का अवसर प्रदान किया है । इसके अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत के गीत 'भज गोविन्दम्' तथा संस्कृत काव्य 'विपाशः लासः' का भी पहाड़ी पद्यानुवाद करके अनुवाद कार्य में वृद्धि की है । शास्त्री जी के पास ग्यारह उपनिषदों के पहाड़ी अनुवाद की पाण्डुलिपियां एवं वेदान्त दर्शन (ब्रह्म सूत्र) का अनुवाद भी सुरक्षित हैं। वे इनके प्रकाशन का प्रयास कर रहे हैं ।

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी ने भर्तृहरि लोक गाथा का भी प्रदेश के प्रसिद्ध लेखकों के द्वारा अनुवाद करवा कर इसे प्रकाशित किया है । इसी प्रकार भट्ट नारायण कृत वेणी संहार का पहाड़ी अनुवाद भी करवाया गया है ।

नाटक

महाकवि भास के छः संस्कृत नाटकों का प्रदेश के प्रसिद्ध संस्कृत, हिन्दी और पहाड़ी के विद्वानों द्वारा अनुवाद करवा कर उन्हें हिमाचल अकादमी ने प्रकाशित किया है । इस पुस्तक का नाम 'छनाट' है जिसमें 'स्वप्नवासवदतम्' का श्री दुर्गा दत्त शास्त्री ने, 'पंचरात्र' और 'दूतवाक्यम्' का आचार्य गोकुल चन्द ने, 'बालचरित' का मनसाराम अरुण ने, 'अभिषेक नाटकम्' का आचार्य केशव ने, दूतघटोत्कच का पुरोहित चन्द्र शेखर ने पहाड़ी की क्षेत्रीय बोलियों में अनुवाद करके नाटक अनुवाद के क्षेत्र में इस कार्य को आगे बढ़ाया है ।

काव्यानुवाद

संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, रूसी, डेनिस और भारत की अन्य भाषाओं की कविताओं के अनुवाद पहाड़ी लेखकों ने किए हैं ।

संस्कृत से गीता के स्थित प्रज्ञ प्रकरण का पुरोहित चन्द्र शेखर वेबस ने कुल्लई बोली में, गांधी वचनामृत का आचार्य दिवाकर दत्त ने क्योंथली विभाषा में, हिमगीता का श्री चन्द्रमणि वशिष्ठ ने सिरमौरी में, और ईशावास्योपनिषद् का पं.

भवानी दत्त शास्त्री ने मण्डियाली में अनुवाद किया है । डॉ0 वरयाम सिंह ने रूसी भाषा की अनेक कविताओं के पहाड़ी भाषा में अनुवाद प्रकाशित करवाए हैं।

भवानी प्रसाद मिश्र की कविता 'बसन्त' का पहाड़ी अनुवाद 'बसंत मंझा' नन्द डोगरा ने किया है । रवीन्द्र नाथ टैगोर की प्रसिद्ध कविता का अनुवाद 'पोरा न फीरै' श्री हरि राम जसटा ने किया है । अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध कवि वर्डज़वर्थ की कविता 'सोलेटरी रीपर' का पहाड़ी अनुवाद भी डॉ. हरिराम जसटा ने किया है । श्री डी. सी. चम्बयाल ने कई रूसी और अंग्रेज़ी कविताओं का पहाड़ी में अनुवाद किया है जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं -

इनमें 'टेरिस केबा की आस', ऐस्थर ग्रेस की 'प्यार' और 'मदद' सम्मिलित हैं। ये दोनों कवि डैनमार्क से सम्बन्धित हैं । रूसी कवि कोस्ता रेवताणू रोव की कविता 'पहाड़ी लोकां तांई' का अनुवाद रमेश जसरोटिया ने किया है ।

उर्दू से पहाड़ी में अनुवाद का प्रशंसनीय कार्य प्रो. परमानन्द शर्मा ने किया है । यह कांगड़ा कल्चरल सुसाईटी द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'हिम सुमन' के 33 पृष्ठों में 'मिर्ज़ा गालिब का कलाम' शीर्षक से पहाड़ी में अनुवाद के रूप में प्रकाशित हुआ ।

कथा साहित्य का पहाड़ी अनुवाद

कथा या कहानी अनुवाद में डॉ. पीयूष गुलेरी ने अमर कहानीकार पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की तीन कहानियों 'उसने कहा था', 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा' का पहाड़ी भाषा में अनुवाद 'तिन्ना ग्लाया था', 'सुखमी जीवन' और 'बुधुए दा कंडा' शीर्षक से लिखा और प्रकाशित किया है । डॉ. पीयूष गुलेरी ने कुछ अन्य हिन्दी लेखकों की कहानियों का भी प्रशंसनीय अनुवाद कार्य किया जिनमें जय शंकर प्रसाद की 'मधुआ' यशपाल की कहानी 'पहाड़ की स्मृति' का (पहाड़े दी याद) और मुन्शी प्रेमचन्द की कहानी 'पूस की रात' (पोहे दी रात) उल्लेखनीय हैं ।

डॉ. प्रत्यूष गुलेरी ने उपेन्द्रनाथ अश्क की कहानी 'डाची', बिष्णु प्रभाकर की कहानी 'धरती अभी भी घूम रही है' का पहाड़ी अनुवाद 'धरती अज्जें भी घुम्मा दी ए', अमृत राय की 'सांवली लड़की' का 'इक सांवली कुड़ी', श्रीमती मन्नू भंडारी की 'अकेली' का 'किली', दीपती खडेलवाल की 'नतीजा'आदि कहानियों का पहाड़ी में सरल और सुगम अनुवाद किया है ।

श्री गिरधर योगेश्वर के पहाड़ी अनुवादों में वृन्दावन लाल वर्मा की 'तोषी' और

सुदर्शन की 'राजा' कहानियां प्रसिद्ध हैं । डॉ. पीयूष गुलेरी ने प्रसिद्ध मनीषियों और प्रेरक प्रसंगों एवं लघु कथाओं का भी पहाड़ी अनुवाद किया है जिनमें 'लुकमान दी चतुराई', 'अवला किया रा फलादेश' हमारे सामने आए हैं ।

अन्य लेखक जिन्होंने इस ओर ध्यान दिया है उनके नाम हैं – डॉ. वेद प्रकाश अग्नि, डॉ. शमी शर्मा, श्री मनोहर सागर पालमपुरी आदि । मनोहर शर्मा सागर पालमपुरी ने 'दैट गर्ल' का पहाड़ी अनुवाद ''सैह कुड़ी'' दिसम्बर 1984 में किया । डॉ. मुलखराज आनन्द की कहानी सती सर्पणी नाम से अनूदित हुई । प्रेमचन्द की कहानी 'कफ़न' का अनुवाद हिमभारती, 1984 दिसम्बर में छपा । 'माने हुए खिलाड़ी' कहानी जिसके लेखक उपेन्द्र नाथ अश्क हैं, का पहाड़ी अनुवाद 'मन्ने तन्ने खिलाड़ी ' श्री राम शर्मा ने किया । गोर्की की 'मां' का अनुवाद शमशेर सिंह ने सन् 1983 ई. में किया । स्वर्गीय शमशेर सिंह बिलासपुर ज़िला के स्वारा गांव के निवासी थे। उन्होंने ग्यारह रूसी उपन्यासों का अनुवाद कहलूरी (बिलासपुरी) उप भाषा में किया । वे सिद्धहस्त अनुवादक थे और भाषा की प्रकृति को भली प्रकार समझते थे ।

पहाड़ी हिन्दी शब्दकोष

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी ने अथक प्रयत्नों से पचपन हज़ार शब्दों का एक शब्दकोष विद्वानों की सहायता से तैयार करवाया है । इस वृहद् पहाड़ी शब्दकोष से पहाड़ी भाषा का सर्वांगीण विकास दृष्टिगत हुआ है । इससे पहाड़ी भाषा की विभिन्न उपभाषाओं की शब्द-संपदा तथा समानता का भी पता चलता है। मूर्धन्य विद्वानों का यह प्रयास श्लाघनीय है जो पहाड़ी भाषा के उत्तरोत्तर विकास में एक मील का पत्थर साबित होगा ।

निबन्धों का पहाड़ी अनुवाद

कतिपय निबन्धों का अनुवाद भी पहाड़ी भाषा में प्रकाशित हुआ है, जिनमें महापंडित राहुल सांकृत्यायन के प्रसिद्ध निबन्ध 'कांगड़ा' का पहाड़ी अनुवाद केशव ने किया है।

पहाड़ी से अन्य भाषाओं में अनुवाद

पहाड़ी से अन्य भाषाओं में अनुवाद कार्य की दिशा में बहुत थोड़ा कार्य हुआ है ।

श्री मनोहर सागर पालमपुरी ने श्री देसराज डोगरा की पहाड़ी कहानी 'नूरां' का उर्दू में अनुवाद किया जो उर्दू की पत्रिका 'तहरीक'में इलाहाबाद से जनवरी, सन् 1989 ई. में छपा है । 'नूरां' पहाड़ी कहानी प्रसिद्ध पुरानी कहानी है जिसके अनुवाद हिन्दी में वीर प्रताप, जालन्धर और 'रचना' पत्रिका पालमपुर में भी प्रकाशित हुए । अन्य कुछ पहाड़ी कहानियों के हिन्दी अनुवाद भी छपे हैं । अनुवादकों में डॉ. पीयूष गुलेरी, डॉ. गौतम व्यथित और मनोहर सागर पालमपुरी के नाम उल्लेखनीय हैं । प्रो. डी. सी. चम्बयाल ने पहाड़ी कवियों की कविताओं के अंग्रेज़ी अनुवाद भी विभिन्न स्थानों से छपवाए हैं ।

डॉ. गौतम व्यथित का कहना है कि प्रो. शिवकुमार ने बहुत सी पहाड़ी कहानियों, कविताओं का दूसरी भाषाओं में अनुवाद किया है जिन्हें छपवाने के लिए उन्हें कोई रुचि नहीं । डॉ. व्यथित ने उन्हें सम्भाल कर रख लिया है ताकि भविष्य में वे उन्हें प्रकाशित करवा सकें । यह कहना इसलिए आवश्यक हुआ कि हो सकता है ऐसे दूसरे लेखकों की पाण्डुलिपियां भी यूं ही पड़ी हों ।

साधु आश्रम होश्यारपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका विश्वज्योति में भी कई पहाड़ी कवियों की कविताओं के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए हैं ।

यह सत्य है कि अनुवाद के प्रति हमारा लेखक इतना सजग नहीं । कोई भी साहित्य अनुवाद के अभाव में सम्पन्न नही समझा जा सकता । अनूदित साहित्य मौलिकता का पूरक है । हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी ने इसे महसूस किया है । इस योजना के तहत ऐसी पुस्तकों का, जिन्हें साधारण जनता तक पहुंचाने की आवश्यकता है, अनूदित किया जाएगा । डॉ. पीयूष गुलेरी, पं. जवाहर लाल नेहरू की इतिहास की प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत की खोज' का पहाड़ी में अनुवाद कर रहे हैं । बौद्ध धर्म ग्रन्थ 'बुक ऑफ दी डैड' का भी पहाड़ी अनुवाद जल्द निकल रहा है । इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश में पहाड़ी में रचित श्रेष्ठ पुस्तकों, कविताओं, कहानियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद भी ज़रूरी है। इससे न केवल हमारे साहित्य की बाहर पहचान होगी बल्कि मां भारती का साहित्यिक भंडार भी समृद्ध होगा ।

परिचर्चा

डॉ. एच. सी. पट्याल का मत था कि प्रस्तुत विवेचन में अन्य भाषाओं में उपलब्ध अनुवाद के सन्दर्भ भी अंकित किए जाते, तो अच्छा होता । डॉ. वरयाम सिंह के अनुसार मात्र सूची न बना कर कृतियों पर आलोचना प्रस्तुत की जानी चाहिए

ताकि विषय के साथ न्याय हो सके । प्राचीन समय में जो अनुवाद हुए उनकी भाषा और वर्तमान अनुवादों की भाषा में अन्तर है या नहीं, यह देखना भी रोचक हो सकता है । पहाड़ी में अनुवाद पर चर्चा करते हुए विभिन्न उपभाषाओं में किए गए अनुवाद साहित्य का सन्दर्भ आना आवश्यक है । रूपान्तरण को अनुवाद से अलग देखा-परखा जाना चाहिए । डॉ. बंशी राम शर्मा का सुझाव था कि अनुवाद में सही पर्याय तथा शब्द-गुम्फन का महत्व है । समीक्षा के समय इसे भी दृष्टिपथ में रखना चाहिए। डॉ. हरिराम जसटा ने कहा कि पहाड़ी भाषा में पाठकों तथा प्रकाशन की समस्या का समाधान होना चाहिए । अनुवाद स्तरीय ग्रन्थों का हो,तभी पाठक उस ओर आकृष्ट होंगे और विक्रय की सम्भावनाएं बढ़ने से प्रकाशक भी उपलब्ध हो सकेंगे । डॉ. रवेलचन्द आनन्द का विचार था कि धार्मिक साहित्य का अनुवाद पहाड़ी में किया जाना चाहिए । डॉ. नवरत्न कपूर ने चाहा कि बच्चों पर अनुवाद साहित्य के माध्यम से अधिक बोझ नहीं डालना चाहिए । हिन्दी शब्दों के अर्थ यदि पहाड़ी में दिए जाएं तो अधिक बोझ नहीं पड़ेगा । डॉ. ए. आर. चौहान का विचार था कि मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करना उचित है परन्तु अनुवाद को ही शिक्षा का माध्यम बनाने से बौद्धिक विकास पर प्रभाव पड़ सकता है, अतः शिक्षा स्वतन्त्र तथा सहज ढंग से प्रदान की जानी चाहिए । पहाड़ी की सामान्य शब्दावली का प्रचलन किया जाना चाहिए । श्री देसराज डोगरा ने बताया कि अनुवाद पर यह पहला ही विश्लेषण है अतः इस प्रपत्र में पूर्ण जानकारी समाहित नहीं हो सकती थी । विभिन्न उपभाषाओं में प्रभूत सामग्री अनूदित हुई है अतः पहाड़ी भाषा के पूरे कलेवर के अवगाहन से ही उसे एक प्रपत्र में समाहित किया जा सकता है । भविष्य में इस कमी को पूरा किया जा सकेगा ।

पहाड़ी में नाटक/एकांकी रचना : एक समीक्षा

अश्विनी कुमार गर्ग

भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में शब्द का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में हुआ है । यहां नाट्य से तात्पर्य केवल नाटक या रंग मंच से न हो कर (कृति) नाटक, रंग वाक्, पात्र, रस, छन्द अभिनय, नृत्य, संगीत, वेशभूषा, रंगशिल्प और दर्शक तथा समाज, सब से है ।

कोई भी श्रव्य तथा दृश्य, कला, शिल्प, योग, ज्ञान या कर्म ऐसा नहीं जो नाट्य में न देखा जा सके । संस्कृत रंगमंच में ' रंग ' शब्द का अपना ही गौरव है। यहां रंगभूमि और रंगशाला दोनों को ही एक माना गया है ।

चतुर्भुजीय अथवा त्रिकोणीय रंगशाला में कितनी भूमि होनी चाहिए, उसका क्षेत्रफल कितना हो और क्या हो ? उसमें कितने अंग वर्ग हों और किस वर्ग के दर्शक किस विधि से बैठेंगे-इन सबका सम्पूर्ण विवरण हमें नाट्य शास्त्र में मिलता है । यवनिका, नेपथ्य इत्यादि का वैज्ञानिक व मूल आधार यहां मिलता है । वस्तुत: इसी को नाट्य का वास्तुशास्त्र कहा गया है।

नाट्य कथावस्तु की परिधि में बंधा हुआ होता है और महान् नाटककारों द्वारा इसी कथावस्तु की मूल परिस्थितियों को मुख्य तीन भागों में वर्णित किया गया है:

(1) पांच अर्थ प्रकृतियां
(2) पांच अवस्थाएं
(3) पांच संधियां

अर्थ प्रकृतियां कथानक अथवा इतिवृत्त के निर्माण तत्व हैं: इन्हीं विभिन्न स्थितियों में नाटक का कथानक निर्मित रहता है ।

विद्वानों ने इन्हें पांच अंग बताया है । ये हैं :

(1) बीज
(2) बिन्दु
(3) पताका
(4) प्रकरी और
(5) कार्य

(1) ***बीज*** –जो घटना कार्य–व्यापार द्वारा सहसा ही अंकुरित होकर नायक के कर्म और फल की ओर बढ़ती है और प्रस्फुटित होती है, वही बीज है, यानि इसे ही नाटक रूपी वृक्ष के बीज के रूप में माना गया है ।

(2) ***बिन्दु***– पानी के अन्दर तेल की एक बून्द जब बिन्दु सा बनने के उपरान्त फैलने लगती है और विशाल बनती जाती है, उसी प्रकार नाटक की छोटी सी घटना सम्पूर्ण दर्शक समाज व रंगशाला पर प्रभाव डालती है, यही बिन्दु तत्व है ।

(3) *पताका*–आधिकारिक कथावस्तु के संग–संग नाटक में बराबर चलती रहती है ।

(4) ***प्रकरी***– मूलकथा और आधिकारिक कथावस्तु के बीच की अवस्था है । जहां पताका आधिकारिक कथावस्तु के संग चलती है, वहीं पर प्रकरी प्रासंगिक बनकर कुछ ही समय पश्चात् स्वतः समाप्त या गौण हो जाती है।

(5) ***कार्य***– नायक का जिस उद्देश्य या फल–प्राप्ति के लिए कार्य प्रारम्भ हुआ था और प्राप्ति हुई,उसी को कार्य तत्त्व कहा गया है ।

अवस्थाएं नाटकीय इतिवृत्त की गति की व्याख्या करती हैं । मानव जीवन संघर्षों के ताने–बाने में उलझा पड़ा है । दुःख–सुख विरोधाभास, विश्वास, अविश्वास के घेरे में जकड़ा, मानव जीवन । नाटक के निम्नलिखित उपांग भी ध्यान में रखे जाने चाहिएं :

(1) आरम्भ (2) प्रयत्न (3) प्राप्त्याशा (4) नियताप्ति और (5) फलागम

नायक की किसी भी प्राप्ति का नाटक में सहसा प्रकाशित होना ही आरम्भ अवस्था है ।

कार्य साधना की प्राप्ति हेतु नायक का प्रयत्नशील होना प्रयत्न अवस्था है। विरोधाभास या विघ्न इत्यादि के पश्चात् जब नायक को फलप्राप्ति की संभावना हो जाती है, तो यही प्राप्त्याशा कहलाती है और नियताप्ति में नायक को लक्ष्यप्राप्ति की सम्पूर्ण आस बंध जाती है । फलागम में उसे मोक्ष, धर्म या काम द्वारा अपना फल प्राप्त हो जाता है ।

अर्थ प्रकृति तथा अवस्था के अतिरिक्त नाटक की कथावस्तु में पांच संधियां भी होती हैं । पांच अर्थ प्रकृतियों और पांच अवस्थाओं के योग को ही नाटक में संधियों का नाम दिया गया है । ये हैं :

(1) मुख (2) प्रतिमुख (3) गर्भ (4) विमर्श और (5) निर्वहण

मुख्यतः ये ही नाटक के स्थूल स्तम्भ हैं । बीच और आरम्भ को मिलाकर रखने

वाले तत्व को मुखसंधि कहा जाता है। बिन्दु और प्रयत्न को मिलाकर प्रतिमुख संधि होती है ।

प्राप्त्याशा और पताका को मिलाकर रखना ही गर्भ संधि है । विमर्श में प्रकरी और नियताप्ति होती है । निर्वहण में कार्य और फलागम की संधि मानी जाती है ।

नाटक में 'रस' तत्त्व प्रधान होता है, तो यही उसकी मंच रचना और नाटकीयता का चरम उद्देश्य है । रस-सिद्धान्त की व्याख्या संस्कृत रंगमंच में सम्पूर्ण रूप से मिलती है । सारे का सारा संस्कृत काव्य-शास्त्र इस से भरा पड़ा है ।

भारतीय नाटक के दर्शन के सम्बन्ध में यहां केवल इतना ही कह देना आवश्यक होगा कि नाटक के दर्शन तथा उसके काव्य श्रवण से जो आनन्द अन्तः करण को झकझोर सा देता है, वही 'रस' कहलाता है । या फिर यूं कहिए कि अन्तःकरण में काव्य श्रवण से जो कौतुहल उत्पन्न होता है, वह आनन्द ही रस है।

यहां पर हम 'रस' तत्व के विभिन्न रूपों की चर्चा नहीं करना चाहते ।

मूलतः नाटकों का जन्म लोकनाटकों ,लोकगीतों, लोककथाओं और गाथाओं से हुआ है । मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः वह मिल-जुलकर समाज में रहना पसन्द करता है । अपनी दैनिक समस्याओं तक को मानव मिल-बांट कर निपटाता है । वह अपनी सुख-दुख की कहानी को प्रदर्शित करने की चेष्टा करता है । वह अमुक द्वारा की गई या शासक की कुप्रवृत्ति को समाज के सम्मुख ला खड़ा करना चाहता है । वह अपनी तथा समाज में फैली कुप्रथाओं को उखाड़ फैंकने के लिए समाज की गवाही चाहता है ।

समाज ने धीरे-धीरे लोक नाट्य कला को जन्म दिया । जिसके द्वारा मानव समस्याओं को प्रदर्शित करने के उपरान्त समाधान खोज लेता है या समाधान का मार्ग प्रशस्त कर लेता है और समाज सुधार की आशा कर सकता है । इसी कारण से मानव ने लोक नाटक को मूलतः अपनी प्रतिकथाओं को व्यक्त करने का माध्यम बनाया ।

लोकधर्मिता में मुख्य रूप से चार तत्त्व गिनाए गए हैं । ये हैं :

(1) गीत
(2) नृत्य
(3) पुराण (चाहे मिथ अथवा यथार्थ जीवन-प्रसंग हो), तथा
(4) लोक-कथा

लोक कथा नाटक में शायद ही अर्थ प्रकृतियों और कार्य-अवस्थाओं की

आवश्यकता पड़ती हो । एक के बाद दूसरी घटना गीत और नृत्य के मेल-जोल से गुंथी हुई आगे बढ़ती है । यह कभी व्यवस्थित, तो कभी बिल्कुल ही अव्यवस्थित ढंग से बढ़ती है । ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार से जीवन की घटनाएं और परिस्थितियां उतार-चढ़ाव लेकर चलती हैं ।

लोक नाटक में कुछ भी और कहीं भी औपचारिकता नहीं । कहीं भी दूरी नहीं । सब कुछ नियोजित है, सब कुछ व्यवस्थित और भ्रम से दूर है ।

लोक मंच पर दर्शक जो कुछ भी देख रहा है, केवल वह अपनी ही प्रतिच्छवि है । शायद दर्शक समाज वहीं पर अपनी स्थिति और क्षतिपूर्ति का आनन्द लेता है । संतुष्टि और असंतुष्टि के बीच का मार्ग खोज लेता है और वहीं पर दुख, करुणा में सौ-सौ बार रोता हुआ अपने को इन्हीं परिस्थितियों में घिरा हुआ पा लेता है । सत्य और असत्य की परिभाषा की व्याख्या उसे यहीं मिल जाती है । उसे सुख और दुख का अनुभव हो जाता है । लोक नाटक तथा इस का रंगमंच रूढ़ियों से बंधा नहीं रहता । परिवर्तित होते हुए सामाजिक प्रसंगों के साथ, लोकनाटक और उसकी रूढ़ियों में भी परिवर्तन होता रहता है ।

हिमाचल प्रदेश का सांस्कृतिक इतिहास अत्यन्त धनी है । रामायण और महाभारत काल का इतिहास हमारे मंदिरों व प्राचीन देवालयों तथा मूर्तियों पर अंकित मिलता है तथा सामाजिक प्रथाएं इनकी पुष्टि भी करती हैं । इन्हीं सामाजिक प्रथाओं पर आधारित रहे हैं-हमारे लोक नाटक । लोकनाट्य में सांस्कृतिक इतिहास को दर्पण की भांति देखा जा सकता है । लोकनाट्य रूपी दर्पण में इतिहास के सम्पूर्ण दर्शन होते हैं, तभी तो यहां की धरती पर जन्म लिया विभिन्न लोकनाट्यों ने !

बुढड़ा, हरण, बांठड़ा, भगत, करियाला, ठोडा, चंदरौळी, रास, वौरा, हरणात्र, झांकी और वांढ़ा आदि हिमाचली धरती के प्रमुख लोक नाट्य हैं ।

ये लोकनाट्य हास्य-प्रधान होने के साथ-साथ सामाजिक तथा धार्मिक कुप्रथाओं की ओर समाज को आकर्षित भी करते रहे हैं । सच कहिए, तो ये सही सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में एक कुशल व्यवस्थापक का काम करते आए हैं ।

महाभारत काल के युद्ध का प्रभाव समाज पर पड़ा जिससे युद्ध परम्पराएं उत्पन्न हुई और इन्हीं युद्ध परम्पराओं ने जन्म दिया 'ठोडा' जैसे लोकनाट्यों को । 'करियाला' शिमला, सोलन और सिरमौर क्षेत्रों में प्रचलित तथा 'हरण' कुल्लू जनपद का लोकप्रिय लोक नाट्य है । इसी का प्रभाव मण्डी के कुछ क्षेत्रों में भी देखा जा सकता है । भगत या रास कांगड़ा, हमीरपुर, बिलासपुर और ऊना के

ऊपरी क्षेत्रों में प्रदर्शित होता है ।

हरणात्तर चम्बा, 'होरिगंफो' किन्नौर, वौरा ऊना के निचले व साथ लगने वाले क्षेत्रों में, 'धाजा' बिलासपुर तथा 'बांठड़ा' लोकनाट्य मण्डी के जनपद में प्रसिद्ध हैं ।

चन्दरौली़ या चन्द्रावली का सम्बन्ध चन्द्रावली गुजरी से लिया जाता है । चन्दरौली़ पौष मास में ही अभिनीत होती है । इसी माह को चन्दरौली़ माह से जाना जाता है । इसके अतिरिक्त छुट-पुट रूप में कई और लोकनाट्यों का प्रचलन भी हिमाचल प्रदेश में है ।

लोक नाट्यों में निपुण और धनी होने के साथ-साथ यह हिमाचल की माटी हिमाचली नाटकों/एकांकी रचना में सन् 1966 से पहले लगभग शून्य सी रही है । शायद ही विशाल स्तर पर हिमाचली नाटककारों ने इससे पहले कोई हिमाचली पहाड़ी नाटक या एकांकी की रचना की हो । सन् 1966 में जब हिमाचल का पुनर्गठन हुआ तो उसी के साथ पहाड़ी भाषा के विकास की चर्चा ने अपना मार्ग अपनाया ।

मार्च, 1968 में हिमाचल राज्य भाषा संस्थान की स्थापना हुई और तुरन्त बाद ही हि. कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी की स्थापना हुई। इसके पदेन सचिव स्वर्गीय हरिचन्द पराशर बने । विद्वान, चिन्तक, ज्योतिष्शास्त्र के प्रकांड पंडित, लघुपत्र-पत्रिकाओं के पोषक, पहाड़ी भाषा और संस्कृति के उन्नायक, नई प्रतिभाओं के प्रेरणा स्रोत पराशर ने जन्म दिया अनेक कवियों और लेखकों को ।

दूसरी ओर उन्होंने आकाशवाणी शिमला से पहाड़ी भाषा सम्बन्धी कार्यक्रमों के लिए सम्पर्क बनाए रखा । वे ***पहाड़ी व साहित्य सर्जन*** के पृष्ठ 12 पर लिखते हैं कि साहित्य का मार्ग अभी बहुत लम्बा है । कहानी और कवितायें तो बहुत उभरी हैं लेकिन किसी साहित्यकार ने किसी भी कथा कहानी को काव्यनाटिका का रूप नहीं दिया है और न ही कोई नाटिका ही लिखी गई है ।

रेडियो द्वारा विभिन्न उपभाषाई कार्यक्रमों में रूपक, संगीत रूपक, प्रहसन, पहाड़ी नाटक, एकांकी किसी न किसी रूप में सन् 1966 के पश्चात् प्रसारित होने लगे थे ।

स्वर्गीय हरिचन्द पराशर इस ओर भी आकर्षित थे और उन्होंने रेडियो द्वारा प्रसारित एकांकियों (पहाड़ी),लघु नाटिकाओं तथा रूपकों के लिए समालोचक का कार्य भी किया तथा समय-समय पर उनका विवेचन भी किया । कांगड़ी कार्यक्रम में प्रसारित और अश्विनी गर्ग द्वारा लिखित तथा निर्देशित लगभग सभी सामाजिक और तात्कालिक समस्याओं पर एकांकी तथा लघुनाटिकाओं को उन्होंने सुना और

उन्हें पुस्तक रूप देने की प्रेरणा दी ।

उन्हीं की प्रेरणा से दस एकांकी नाटकों की पुस्तक 'दृश्यावली' छपी । मुख्यत: ये रेड़ियो एकांकी हैं और सभी नाटक सामाजिक कुरीतियों को लेकर लिखे गए हैं। लेखक के स्वयं रंगमंचीय कलाकार होने के नाते ये रेडियो एकांकी प्रसारण के उपरान्त अपनी मंचीय कसौटी पर खरे उतरे हैं । उनमें संवाद छोटे तथा मुहावरेदार होने से रस तत्त्व बनाए रखने का ध्यान रखा गया है ।

नई दिल्ली से सम्पादित एवं प्रकाशित द्विमासिक हिमाचली (पहाड़ी) पत्रिका 'हिमधारा' के विशेषांक फरवरी, 1989 में मुख्य सम्पादक प्रो. नारायण चन्द पराशर नाट्य संग्रह दृश्यावली के बारे में पृष्ठ 92 पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं : अश्विनी गर्ग री पुस्तक दृश्यावली इक सुन्दर प्रयास हा, जिसरे मुकाबले री पहाड़िया च होर पुस्तक हाले नी छपीरी ।

इसी पुस्तक को सन् 1983 वर्ष में नाटक विधा में हिमाचल प्रदेश कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ । डॉ. गौतम शर्मा व्यथित ने भी पहाड़ी हिमाचली नाटक, लघु नाटिकाएं इत्यादि लिखी हैं ।

डॉ. गौतम व्यथित का 'त्रिया नेत्र' एकांकी बाणेश्वरी के अंक 12 में प्रकाशित हुआ है । मूलतया यह गद्दी उपभाषा में छपा है ।

'साक्षरता' लघु नाटिका में गद्दी लोगों का दुकानदार किस प्रकार शोषण करते हैं, व्यथित ने अनूठे ढंग से इस समस्या का समाधान भी इसी नाटिका में एक गद्दी ग्रेजुएट युवक द्वारा सोसायटी बनाकर आन्दोलन चलाने की चेष्टा दिखलाते हुए किया है।

'संशय के भूत' मूलत: पहाड़ी (कांगड़ी) में लोकाचार पर लिखित एकांकी है । इस एकांकी में डॉ. व्यथित ने अंधविश्वास व भूत-प्रेत सम्बन्धी आडम्बरों पर कुठाराघात किया है।

'रंग अतीत के' पहाड़ी-हिन्दी में लिखित व्यथित की नाटिका 'रूल्हा दी कुल्ह' का नाट्य रूपान्तर है । 'समाधी' कांगड़ी (पहाड़ी) में लिखित नाटिका है । इसके लेखक व्यथित हैं । डॉ. गौतम व्यथित सफल नाटक/एकांकीकार हैं परन्तु पहाड़ी में उन्होंने नाट्य संग्रह अभी समाज को उपलब्ध नहीं करवाया है ।

श्री रामकृष्ण कौशल, डॉ. प्रत्यूष गुलेरी और दलीप सिंह वर्मा ने भी एकांकी/नाटक लिखे हैं । इसके अतिरिक्त नरेन्द्र अरुण भी सफल एकांकीकार हैं परन्तु मुख्यत: इन्होंने हिन्दी में ही एकांकी/नाटक रचनाएं की हैं । उन्होंने पहाड़ी एकांकी/नाटक लेखन में अधिक रुचि नहीं दिखवाई ।

हिम भारती के मार्च, 1985 अंक के पृष्ठ 23 पर डा. ओमप्रकाश सारस्वत् द्वारा

रचित पहाड़ी लघुनाटिका 'रजल्टे दा फिकर' छपी । इस लघुनाटिका में केवल तीन पात्र हैं । यह गिरती हुई सामाजिक स्थिति, शिक्षा और लुप्त होती गुरू-शिष्य परम्परा को लेकर लिखी गई है और एक ही अंक में समाप्त होती है । मूलत: यह लघु एकांकी ही है ।

हिमभारती के मार्च, 1985 अंक के पृष्ठ 87 पर छपी श्री कृष्णचन्द महादेविया द्वारा लिखित लघुनाटिका 'दो टुरू एक मेक पड़ोसणी तूं नाक छेक' छपी।

इस लघुनाटिका में दहेज प्रथा, बहु प्रताड़ना और मद्यनिषेध विषयों को उजागर किया गया है । कृष्णचन्द महादेविया मण्डी के सुन्दरनगर क्षेत्र के महादेव गांव के हैं तथा लघुनाटिका में इन्होंने लोकोक्तियों का प्रयोग किया है । कुल मिलाकर नाटिका ग्रामीण परिवेश को लेकर लिखी गई है ।

इसके अन्त में नाटककार ने पति-पत्नी में पड़ी दरार को प्यार रूपी सीमेंट से भरा है तथा पति द्वारा अधिक सन्तान पैदा करने पर स्वयं को अपराधी मानते हुए विषय का समाधान करवाया गया है ।

'किशनुए री बेटी' लघुनाटिका श्री जयकिशन ठाकुर द्वारा लिखित है तथा यह हिमभारती त्रैमासिक पत्रिका दिसम्बर, सन् 1988 में प्रकाशित हुई । इसी के पृष्ठ 57 पर कुल छः पात्रों के बीच घूमती यह नाटिका बेटी उत्पन्न होने को अभिशाप समझने वालों पर किया गया कुठाराघात है । श्री जयकिशन ठाकुर ने बेटी की शिक्षा और बेटी-बेटे के बीच सामाजिक भ्रान्तियों पर अच्छा प्रहार किया है । नाटिका में ऐसी दकियानूसी मान्यताओं को तोड़ने की बात कही गई है ।

इसी अंक के पृष्ठ 62 पर श्री शशिकान्त शास्त्री द्वारा रचित लघुनाटिका 'इक घुट' प्रकाशित हुई है । इसके कुल नौ पात्र हैं । नशाबन्दी पर ही सम्पूर्ण कथा घूमती है। वाक्य-विन्यास छोटा तथा सामान्य है ।

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका *हिमभारती* के दिसम्बर, 1988 के अंक में श्री अमर सिंह रणपतिया का नाटक 'अजनबी' पृष्ठ 14 पर प्रकाशित हुआ । नाटक पन्द्रह दृश्यों में विभक्त है । नाटक चम्बयाली उपभाषा में लिखा गया है । इस की कथावस्तु दो मित्रों के मध्य रहती है । एक मित्र रमेश अपने शैशवकाल में ही व्यस्नी हो जाता है । अत: पढ़ाई नहीं कर पाता । दूसरा साथी दिनेश खूब पढ़ लिख कर बहुत ऊँचे पद पर आसीन हो जाता है । रमेश बेकार है उसे कोई नौकरी नहीं मिलती । दर-दर की ठोकरें खाता-फिरता है । रमेश का विवाह हो जाता है परन्तु अपना भरण-पोषण करने हेतु उसके पास कुछ नहीं है । वह पैसे मांगने की चेष्टा करता है, ताकि शराब पी सके ।

एक दिन दिनेश उसे देख लेता है और अपने ही दफतर में क्लर्क की नौकरी दिलवा देता है लेकिन व्यसनों के कारण वह लोगों से घूस ले लेता है । उसे उस स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित किया जाता है ।

एक बार बस अड्डा पर पैसों की भीख मांगता है । उसकी स्त्री सहसा उसे देख लेती है और यह सब सहन नहीं कर पाती । बेहोश होकर गिर जाती है । एक युवक उठा कर उसे अस्पताल पहुंचाता है । होश आने पर रमेश की पत्नी उमा उसे डोरी बांधकर भाई बना लेती है । रमेश स्वयं को धिक्कारता है और उमा से क्षमा–याचना करता है तथा शराब न पीने की शपथ लेता है । कुल मिलाकर नाटक उत्तम है ।

कुछ कथा–रूपक स्वर्गीय आई. डी. शर्मा ने भी लिखे हैं । इनका एक कथा–रूपक 'रामनवमी' हिमभारती त्रैमासिक पत्रिका के 1988 जून अंक के पृष्ठ 36 पर प्रकाशित हुआ है ।

इससे पहले भी हिमाचल प्रदेश की पत्र–पत्रिकाओं के अतिरिक्त डोगरी संस्था, जम्मू द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका 'नमीं चेतना' में अश्विनी कुमार गर्ग तथा डॉ. आत्मा राम के एकांकी तथा लघुनाटक छपते रहे हैं ।

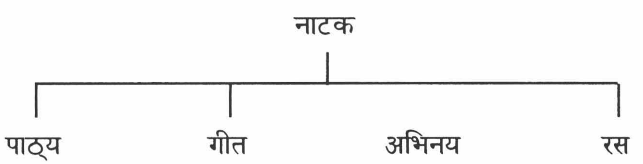
नमीं चेतना के अप्रैल, मई, जून, 1974 में सम्पादित अंक के पृष्ठ 51 पर अश्विनी गर्ग का एकांकी 'तमाचा' प्रकाशित हुआ । तमाचा की कथावस्तु मद्यनिषेध पर आधारित है । संवाद छोटे तथा तीखापन लिए हुए हैं। यह माना जाता है कि एकांकी के पात्रों की संख्या यथासम्भव कम होनी चाहिए या फिर यदि कथानक के आधार व आवश्यकता के अनुसार पात्रों की संख्या अधिक भी हो जाए, तो यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि मंच पर सभी पात्रों का जमघट सा न लग जाए ।

तमाचा नामक एकांकी भी दो पात्रों के मध्य घूमता है, अतः शेष स्थिति को पर्दे के पीछे (नेपथ्य) से दर्शाया गया है ।

'घर–कुदाल' शीर्षक से एक पहाड़ी संग्रह श्री बख्शीराम मुसाफिर का मिला है । यह एकांकी संग्रह सन् 1983–84 में छपा । इसमें लगभग सभी नाटिकायें सामान्य स्तर की हैं । लेखक ने इन्हें समस्याओं को लेकर लिखा है । जून, 1988 के हिमभारती अंक के पृष्ठ 7 पर प्रकाशचन्द धीमान की कहानी 'बवाल' प्रकाशित हुई। यह भी एक सम्वाद रूपक है क्योंकि इसकी कथावस्तु का प्रतिपादन भी केवल दो पात्रों के सम्वाद द्वारा किया गया है । सारी कथावस्तु दो पात्रों, मोहणा और पान्नों के मध्य वार्तालाप से ही जुड़ी हुई है । बवाल नामक यह कथा रूपक मण्डी बल्हघाटी की उपभाषा में है और लगभग तीन पृष्ठ का है ।

इसी अंक के पृष्ठ 61 पर श्री सी. शर्मा द्वारा रचित 'प्रौढ़ शिक्षा रा महत्व' नामक नाटिका प्रकाशित हुई है । मूलरूप में इस नाटिका को यदि क्षणिका कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी । केवल तीन पृष्ठ की कृति में चार पात्रों को लेकर भरमौरी (भरमौर क्षेत्र की बोली) में यह लिखी गई है ।

इसके अतिरिक्त ओंकार लाल भारद्वाज और राजकुमार शर्मा ने भी पहाड़ी में नाटक लेखन किया है । ओंकार लाल भारद्वाज ने कुछ एक ध्वनिरूपक लिखे हैं। राजपाल कुटलैहड़िया भी ध्वनिरूपक लिख रहे हैं । उनका ध्वनि रूपक आकाशवाणी के प्रसारण में स्थान पा चुका है । भारतीय रंगमंच में नाटक के चार अंग माने गए हैं । इन्हें इस प्रकार भी दर्शाया जा सकता है :



हिमाचल में पहाड़ी नाटक लेखन के सम्मुख सबसे बड़ी कठिनाई पाठकगण की है। यदा कदा यदि कोई पहाड़ी नाटक/एकांकी किसी पत्रिका में छपता भी है तो उस पर प्रतिक्रिया नहीं आती । इसलिए उस पर विचार विमर्श नहीं हो पाता, जो नाटक के विकास के लिए अति आवश्यक है ।

यदि पहाड़ी नाटक के अभिनय पक्ष को लिया जाए तो यही कहा जा सकता है कि अभिनय के लिए न तो कोई संस्था ही मंच जुटाती है और न ही सरकारी संस्थाएं एवं विभाग । हिमाचल प्रदेश कला, संस्कृति और भाषा अकादमी ने इस ओर अवश्य प्रयास किए हैं ।

प्रदेश की लगभग सभी बोलियों के कार्यक्रमों में लघुनाटिकाएं, एकांकी, गीति नाट्य, प्रहसन, पहाड़ी एकांकी और झांकियां सफलता से प्रस्तुत की जा चुकी हैं जिनकी भरपूर सराहना हुई है । जहां एक ओर इस प्रयास से पहाड़ी नाटककारों को प्रोत्साहन मिला है, वहीं पर दूसरी ओर कुछ नई प्रतिभायें भी उभरी हैं ।

एकांकी व नाटकों के लिए हिमाचल प्रदेश का नाम अन्य क्षेत्रों में भी प्रसिद्ध है । विकासोन्मुख पहाड़ी भाषा में नाटक व एकांकी सहज भाव से लिखे व मंचित किए जाते हैं । आकाशवाणी शिमला आरम्भ से ही एकांकी व नाटक विधा कार्यक्रमों में अग्रणी रही है । गेयटी थियेटर में अंग्रेज़ी, हिन्दी व पहाड़ी के अतिरिक्त अन्य अनेक भाषाओं में नाटकों का मंचन होता रहा है । पहाड़ी भाषा

की प्रकृति में ही अभिनय, मधुरता व नाटकीयता के अतिरिक्त स्थानीय हास्य व विनोद का पुट है । ये गुण एकांकी तथा नाटक के लिए आवश्यक तथा सोने पर सुहागा हैं । प्रकाशित व अप्रकाशित एकांकी व नाटक साहित्य का आद्योपान्त आकलन सम्भव नहीं है । प्रस्तुत विषय–पत्र मात्र एक सर्वेक्षण व स्थूल अवगाहन है । यह प्रयास स्वयं में पूर्ण नहीं ।

भाग दो

तुलनात्मक अध्ययन

पहाड़ी, संस्कृत और पालि का तुलनात्मक अध्ययन

एम. आर. ठाकुर

जब कभी भी भाषाओं के, और विशेष रूप से संस्कृत के साथ, तुलनात्मक अध्ययन की बात आती है तभी उन्नीसवीं सदी के मध्य के आस-पास पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अभिव्यक्त विचार अकस्मात् और अनायास सामने आते हैं । मैकडॉनल ने कहा था कि, 'विश्व में पुनर्जागरण के बाद संस्कृत भाषा और साहित्य के (पाश्चात्य विद्वानों के लिए) आविष्कार से बढ़कर कोई भी अन्य ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व की घटना नहीं घटी है ।'[1] हीगल ने इसे नये जगत की खोज माना है 'जिसका मानव जाति के लिए अमेरिका की भौगोलिक खोज से कहीं अधिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व है'।[2]

वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों द्वारा संस्कृत भाषा के ज्ञान से भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में नितान्त नवीन और वैज्ञानिक आयाम प्राप्त हुए हैं । इससे जहां तक एक ओर लैटिन, ग्रीक, ज़ेन्द, कैल्टिक, स्लेवानिक, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ने में तैथ्यिक सामग्री उपलब्ध हुई है, वहीं दूसरी ओर जब भाषा शास्त्रियों को बर्लिन के समीप रहने वाले लिथुआनिया निवासी रंगरूटों की भाषा में संस्कृत की अस्मि, असि, अस्ति, स्वः आदि के स्थान पर क्रमशः एस्मि, एसि, एस्ति, इस्व शब्द सामने आए[3] तो इस अध्ययन ने मानवीय विकास-क्रम के ऐतिहासिक विवेचन के लिए ऐसा साधन जुटाया जो प्राचीन से प्राचीनतम युग की सही झाँकी प्रस्तुत करने के योग्य था । इस तुलनात्मक भाषा अध्ययन का ही परिणाम था कि टिव्रिस के समीप सात पहाड़ियों पर झोंपड़ों में रहने वाले कुछ किसानों द्वारा प्रयुक्त साधारण बोली बाल्तेयर और दांते के हाथों अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की भाषा बनी । ऐसी स्थिति में भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के महत्व को स्वतः आंका जा सकता है ।

जहां तक प्रस्तुत निबन्ध के विषय का सम्बन्ध है इसके अध्ययन में कुछ व्यावहारिक कठिनाइयां देखने में आ रही हैं । संस्कृत, पालि और पहाड़ी भाषाएं समकालीन नहीं हैं, इनमें से कोई दो भी समकालीन नहीं हैं । इनमें से कोई दो भी समसामयिक नहीं हैं । ऐसी स्थिति में इस अध्ययन द्वारा कोई सैद्धान्तिक निष्कर्ष

निकालना कठिन है । इसके अतिरिक्त जहां संस्कृत का साहित्य सर्वांगीण और समृद्ध है, वहां पालि का साहित्य मुख्यतः भगवान बुद्ध के उपदेशों और प्रवचनों तक सीमित रहा है तथा पहाड़ी में हाल ही तक कोई विशिष्ट साहित्य नहीं लिखा गया था और अब भले बहुत कुछ लिखा जा चुका है तथा लिखा जा रहा है, परन्तु यह भाषा -वैज्ञानिक अध्ययन के लिए पर्याप्त नहीं है और इसमें लोक-भाषा रूप को ही प्राथमिकता देनी पड़ेगी ।

स्थिति

यद्यपि वैदिक और संस्कृत भाषाओं की समय-अवधि के बारे में विद्वानों में बहुत मतभेद हैं, परन्तु मोटे तौर पर प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा का समय ईसा-पूर्व 1500 से लेकर ईसा-पूर्व 500 वर्ष तक माना जाता है और विकास-क्रम के आधार पर इसे (क) वैदिक संस्कृत और (ख) लौकिक संस्कृत दो भागों में बांटा जाता है । पुरातनता की दृष्टि से वैदिक साहित्य विश्व का प्राचीनतम समृद्ध साहित्य माना जाता है । ''संसार के इतिहास में वेद ऐसे अन्तराल की प्रतिपूर्ति करते हैं जिसे विश्व की किसी अन्य भाषा का साहित्य भर नहीं सकता । ये हमें उस प्राचीन समय तक पीछे ले जाते हैं जिसका अन्यत्र कहीं अभिलेख प्राप्य नहीं है ।''[4] लौकिक संस्कृत का समय प्रायः मनु की धर्म संहिताओं से माना जाता है जो लगभग ईसा-पूर्व नौवीं शताब्दी से आरम्भ होता है । इसे प्रायः देव-भाषा और आदि-भाषा के नाम से अधिक जाना जाता था । लगभग ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी में पाणिनि ने इसका प्रतिष्ठित रूप व्याकरणवद्ध किया और सम्भवतः उसी काल से ही इस भाषा का नाम संस्कृत पड़ा ।

अनेक विद्वानों का मत है कि संस्कृत कभी लोक-भाषा नहीं रही है; परन्तु यह भी सत्य है कि भले ही पाणिनि-कृत संस्कृत लोक-भाषा न रही हो, इसका कोई-न-कोई रूप लोक में प्रचलित था; उसमें समय के प्रवाह के समय क्रमशः परिवर्तन आया और उसने प्राकृत रूप धारण किया और ईसा-पूर्व 500 वर्ष के आस-पास मध्यकालीन आर्य भाषाओं ने जन्म लिया । इस तरह ईसा-पूर्व 400-500 वर्ष से लेकर 1100-1200 ईसवी तक प्राकृत भाषाओं का समय रहा है जिसे तीन कालों में बांटा जाता है - प्रथम प्राकृत काल; द्वितीय प्राकृत काल तथा तृतीय प्राकृत काल ।

पालि को प्रथम प्राकृत काल की सर्व-प्रसिद्ध भाषा माना जाता है । बुद्ध की

पवित्र वाणी का संकलन पालि में ही हुआ है । कुछ विद्वानों का मत है कि पालि बुद्ध के जीवन काल की भाषा नहीं है, बल्कि यह उस समय से अधिक प्राचीन है। परन्तु इतना निश्चित है कि पालि का वह रूप जो बाद के अध्ययन और अनुशीलन के लिए प्राप्य हुआ वह बुद्ध के समय के आस-पास का है । इसका जन्म स्थान मगध प्रदेश माना जाता है जो वर्तमान बिहार का दक्षिणी क्षेत्र है। इसीलिए अनेक विद्वान बाद की मगधी को पालि से उद्भूत मानते हैं । ईसा-पूर्व तीसरी सदी में अशोक के शिला-लेखों की भाषा भी पालि ही रही है।

दूसरी प्राकृतों का समय प्रथम सदी ईसवी से 500-600 सदी ईसवी तक माना जाता है । इस काल में प्रमुखतः पांच भाषाओं का प्रचलन रहा है - मथुरा के आस-पास शूरसेन प्रदेश की *शौरसेनी*, दक्षिण बिहार क्षेत्र की *मागधी*, इन दोनों क्षेत्रों के बीच *अर्ध-मागधी*, जो जैन-धर्म के प्रवर्तक भगवान महावीर के उपदेशों की भाषा रही है; महाराष्ट्र क्षेत्र की *महाराष्ट्री* तथा भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त के आस-पास की *पैशाची* प्राकृत ।

तृतीय चरण की प्राकृतें प्रायः अपभ्रंश नाम से अधिक जानी जाती हैं, जिनका समय 500-600 ईसवी से 1100-1200 सन् ईसवी तक माना जाता है । इसमें प्राकृतों के अनेक स्थानीय रूप हो गए थे और उन्हीं से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएं प्रसूत हुई हैं जिनके अनेक समूह माने जाते हैं । इनमें से उत्तर में हिमालय की निचली पर्वतीय मालाओं में पूर्व नेपाल से लेकर पश्चिम में भद्रवाह तक बोली जाने वाली भाषाएं पहाड़ी-श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं । इन्हें इनके पूर्वी रूप को नेपाली के नाम से, मध्य-पहाड़ी को गढ़वाली के नाम से तथा पश्चिमी-पहाड़ी को प्रायः पहाड़ी नाम से ही जाना जाता है ।

पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत विद्वानों ने हिमाचल प्रदेश की बोलियों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश के जौनसर-बाबर की जौनसारी और जम्मू-कश्मीर के भद्रवाह क्षेत्र की भद्रवाही को भी सम्मिलित किया है जो भाषा विज्ञान की दृष्टि से सत्य भी है । परन्तु आजकल पहाड़ी भाषा के अन्तर्गत प्रायः हिमाचल प्रदेश की बोलियों का समावेश हुआ है जिनमें प्रमुखतः सिरमौर ज़िला की सिरमौरी, सोलन ज़िला की बघाटी, शिमला ज़िला की महासुई, बिलासपुर ज़िला की कहलूरी, कुलुई, मण्डियाली, कांगड़ी और चम्बा ज़िला की चम्बयाली शामिल हैं । भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए इनमें से कांगड़ी, कहलूरी और चम्बा के निचले क्षेत्र की बोलियों को बाहरी पहाड़ी और शेष बोलियों को भीतरी पहाड़ी के अन्तर्गत रखा जाता है ।

शब्दावली

प्रथम चरण की प्राकृत होने के नाते पालि भाषा अन्य सभी भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत से निकटतम है । इसलिए इसमें संस्कृत शब्दों की बहुतायत होना स्वाभाविक है । इधर पहाड़ी भाषायी विकास-यात्रा के अन्तिम चरण पर है, अतः इसमें संस्कृत तत्सम् शब्दों के अधिक मात्रा में होने की सम्भावना कम है । फिर भी यह कहना युक्ति संगत न होगा कि पहाड़ी में तत्सम् शब्दों का अभाव है । वस्तुतः पहाड़ी में संस्कृत के अनेक तत्सम् शब्द ऐसे हैं जो पालि में भी पाए जाते हैं, यथा-गीत, गुण, गुरू, कण, दुख, सुख, अंग, हार, लोभ, मोह, अंक, रंग, रोग, तप, खुर, तालु, देह, लोक, नरक, लेप, दान, गोत्र, घोर, तप, तारा, दया, दयालु, भूत, दूत, दशा, मन, मान, माया, दूर, तेल, शंख, शोभा आदि ।

इनमें ऐसे शब्द भी हैं जिनमें अर्थ-भेद हो गया है, जैसे - संस्कृत 'खग' का पालि में अर्थ 'पक्षी' है और पहाड़ी में 'खरगोश' । ऐसे ही 'खल' पालि 'कठोर' पहाड़ी 'खलिहान', तरंग पालि 'लहर' पहाड़ी 'क्रोध','तरी' पहाड़ी 'बांस की नाली' पालि 'नाव' आदि ।

तत्सम् की अपेक्षा संस्कृत के तद्भव शब्द दोनों भाषाओं में भारी संख्या में पाए जाते हैं । कुछ ऐसे शब्द हैं जो पालि में तो तत्सम् रूप में हैं, परन्तु पहाड़ी में उनका तद्भव रूप हो गया है, यथा-संस्कृत पालि 'हिम' पहाड़ी 'हेऊं', रू० - पा० 'हेमन्त' पहाड़ी 'हिऊंद', सं० पा० मधु > प० माहू, सं० पा० दण्ड > प० डंड, सं० पा० दधि > प० दही, सं० पा० दन्त > प० दंद, सं० पा० दानव > प० दानू, सं० पा० देव > प० देऊ, सं० पा० द्वि > प० दुई, सं० पा० गगन > प० गईण, सं० पा० रुधिर > प० रुहर, सं० पा० मानव > प० माण्हू, सं० पा० नाभि > प० नांही, सं० पा० उपवास > प० पुआस आदि ।

अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके पालि और पहाड़ी में तद्भव रूप समान हैं- संस्कृत 'पुत्र' पालि-पहाड़ी 'पुत्त', सं० मित्र > पा० प० मित्त, गृह > घर, कक्ष > कच्छ, गूथ > गूंत, ग्रन्थि > गंठी, पक्ष > पक्ख, दोष > दोस, देश > देस, अक्ष > अक्ख, अर्क > अक्क, अक्षर > अक्खर, नाश > नास, अप्सरा > अच्छरा, मुहूर्त > मुहुत (यथा समुहुत)

संस्कृत के अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके पालि और पहाड़ी में तद्भव रूप भिन्न बने हैं, यथा- संस्कृत 'दुहिता' > पालि 'धीतु' > पहाड़ी 'धी', सं० औषधि > पा० अगद > प० औकत, अर्गल > अग्गल > आगल, अग्नि > अग्नि > अग (या आग), अज्ञान > अञ्ञन > अणजाण, अस्थि > अट्ठि > हड्डी, अस्ति >

अत्थि > आथी (आसौ भी), आलस्य > अलस > औल़स, परोक्ष > पराक्ख > परोखा, पार्श्व > पस्स > परसा, प्रकट > पाकट > प्रगट, महिष > महिस > मेही, मृणाल > मुल़ाल > मनाल़, मूषक > मूसिक > मूशा आदि ।

वस्तुत: जब प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में शब्द पहुंचे हैं तो उनके विकास-क्रम की एक निश्चित दिशा रही है । मूल रूप से यह सरलीकरण की प्रवृत्ति का परिणाम है । इस दिशा के प्रमुखत: तीन चरण रहे हैं और ये तीनों चरण वर्तमान अध्ययन की तीनों भाषाओं में क्रम से स्पष्टतया देखने में आते हैं :

(क) संस्कृत में संयुक्त या द्वित्व अक्षरों का अपना नियम था । वहां संयुक्ताक्षर ह्रस्व या दीर्घ दोनों स्वरों के बाद आ सकता था। जैसे कर्म, पृष्ठ, कर्ण आदि शब्दों में संयुक्त अक्षर ह्रस्व स्वर के बाद हैं और कार्य, मूल्य आदि शब्दों में संयुक्त अक्षर दीर्घ स्वा के बाद में हैं ।

(ख) संस्कृत के बाद पूर्व प्राकृत में शब्दों के आरम्भ में संयुक्ताक्षर नहीं आते थे, तब संस्कृत शब्द ग्राम, ध्वजा, प्राणी ,पालि में क्रमश: गाम, धज, पाणी बने । शब्दों के मध्य और अन्त में संयुक्त अक्षर ज़रूर आते थे, परन्तु ये केवल ह्रस्व स्वर के बाद आते थे, दीर्घ के बाद नहीं । तब पालि के शब्द इस प्रकार बने - 'अद्य' से 'अज्ज', कर्म > कम्म, भक्त > भत्त, कर्ण > कण्ण । इस चरण में अनेक बार संस्कृत के संयुक्त अक्षर के पूर्व का दीर्घ स्वर भी ह्रस्व हो गया-सं0 मूल्य > मुल्ल, कार्य > कज्ज, मार्ग > मग्ग, तीक्ष्ण > तिक्खा या तिखिन आदि ।

(ग) तीसरे चरण में दूसरे चरण के द्वित्व या संयुक्त रूप भी समाप्त हो गए। तब हमारी बाहरी पहाड़ी के रूप प्राय: अद्य > अज्ज > अज, कर्म > कम्म > कम, पृष्ठ > पिट्ठ > पिठ, मूल्य > मुल्ल > मुल बने या वही रहे जो पालि के हैं । परन्तु मूल में जब द्वित्व और संयुक्ताक्षर लुप्त हो गए तो उनकी प्रतिपूर्ति में पूर्व ह्रस्व स्वर दीर्घ हो गया, जैसे - 'कर्म' से 'कम्म' और 'कम्म' से 'काम', 'अद्य' से 'अज्ज', 'अज्ज' से 'आज' ।

इस तरह से संस्कृत से पालि (और बाहरी पहाड़ी) तथा पहाड़ी के क्रमिक रूप देखे जा सकते हैं - सं0 अद्य > पा0 तथा बाहरी पहाड़ी 'अज्ज' > भीतरी पहाड़ी 'आज' (और औज़ भी), पृष्ठ > पिट्ठ > पीठ, हस्त > हत्थ > हाथ-हौथ, अष्ट > अट्ठ > आठ-औठ, सप्त > सत्त > सात-सौत, कार्तिक > कात्तिक-कत्तक > काती, कर्ण > कण्ण > कन्न > कान-कोन, फाल्गुण > फग्गुण > फागण, कंकन > कंगण > कांगण आदि ।

पालि भाषा में संस्कृतेतर शब्द ढूंढना सहज नहीं है । इसमें देशज शब्द तो हैं

परन्तु उनका संस्कृत आधार सरलता से मिल जाता है, परन्तु पहाड़ी के शब्द-कोश में इतने अधिक देशी शब्द हैं जिनका संस्कृत में आधार मिलना कठिन है, जैसे - टिंडा-टेंडा, 'आंख', ठिंढ, 'किसी वृक्ष का पुराना तना', झंखड़ 'झाड़ियां', झंब 'झाड़ू', ठुड 'जड़', खिट्ट 'दौड़', खिन्नु 'एक घास विशेष', खिंगा 'खूंटा', चाभ 'दलदल', ढोडर 'वृक्ष का खोखला तना', ढौर 'साया', ढोर 'पशु', झंजराड़ा 'विधवा विवाह', झगा-झगटू 'लम्बी-छोटी कमीज़', झप्फा 'पकड़' आदि । ये शब्द केवल उदाहरण - स्वरूप दर्शाए जाते हैं । वस्तु-स्थिति यह है कि पहाड़ी की भिन्न बोलियों में बीस से तीस प्रतिशत तक ऐसे शब्द हैं जिनके संस्कृत से सम्बन्ध नहीं जुड़ते या अविश्वसनीय रूप से जुड़ते हैं । यह अनुमान लोक और मूल भाषा के सम्बन्ध में कथ्य है, यदि आज-कल के रूप को देखा जाए जिसमें साहित्य रचा जा रहा है तो स्थिति भिन्न हो सकती है । लिखित साहित्य में तो हिन्दी और संस्कृत शब्द ही व्यापक हैं । विकास की दृष्टि से पहाड़ी भाषा आज उस चरण पर है जहां लगभग सौ वर्ष पहले बंगला भाषा थी । तब जोह्न बीम्ज़ ने कहा था, '' यद्यपि इस समय साहित्यिक गतिविधियों में बंगाली (भाषा) अन्य सभी सजातीय भाषाओं में सबसे आगे है, परन्तु उसके हाल ही तक अधिक ग्राम्य होने के तथ्य में कोई सन्देह नहीं है । इस समय का जीवित बंगाली सज्जन भी यह जानता है कि बंगाली (भाषा) की इतनी असंख्य और विविध प्रकार की बोलियां थीं कि इस भाषा का कोई स्वीकृत मानक स्तर नहीं था । परन्तु देशी-भाषा का साहित्य इतना प्रफुल्लित हो गया है कि उच्च-वर्ग की भाषा या अर्ध-संस्कृत भाषा शैली साहित्य रचना का आदर्श बन चुका है, यद्यपि इस रूप में कोई बात नहीं करता ।'' [5] अपने समय में पालि की भी ठीक यही स्थिति रही होगी क्योंकि विद्वानों का कथन है कि, ''यह भाषा भारत के किसी भी प्रदेश में कभी भी बोल-चाल की भाषा नहीं रही है । यह एक ऐसी कृत्रिम साहित्यिक भाषा रही है जो अनेक बोल-चाल की भाषाओं से बनी थी . . . और बुद्धोपदेश की साहित्यिक भाषा रही है ।''[6]

पहाड़ी भाषा की शब्द-सम्पदा में उन विदेशी शब्दों का बाहुल्य भी है जो पहाड़ी ने पूर्णतया आत्मसात कर लिए हैं, उदाहरणार्थ -

अरबी के : असर, असल, असूल, अर्ज़, इलाका, उजरत, कताब, कुरसी, कसर, कब्ज़ा, नसल, नशा, नकल, मुश्किल, मुनशी, मंजूर, हाज़मा आदि।

फारसी के : आदमी, अफसोस, अंदाज़ा, कारखाना, कारदार, कुश्ती, कमीना, गुज़ारा, खानदान, गुआह (गवाह), चादर, चुगली, मज़ा, मस्त, रसीद, सौदा आदि।

तुर्की के : कलंगी, काबू, कुली, तमगा, खचर, बहादुर, चाकू, लाश, बंदूक,

गलीचा, दरोगा आदि ।

पुर्तगाली के : अलमारी, कप्तान, कनस्तर, गदाम, चाबी, तमाकू(तम्बाकू), पस्तौल, पीपा, बटन, मिस्तरी, बोतल आदि ।

अंग्रेज़ी के : अफसर, इंजन, कोट, कार्ड, कमेटी, टिकट, डिग्री, डिपू, फीस, मशीन, मोटर, रिपोर्ट आदि । पालि भाषा में ऐसे विदेशी शब्दों की सम्भावना नहीं है।

ध्वनि

पालि भाषा में संस्कृत की ऋ, ॠ, लृ, ऐ और और पांच स्वर-ध्वनियों का प्रचलन नहीं मिलता । पहाड़ी में भी ॠ और लृ ध्वनियों का प्रयोग नहीं है । 'ऋ' का यद्यपि वैदिक और लौकिक संस्कृत जैसा उच्चारण तो सम्भवत: नहीं मिलता, परन्तु 'ऋण' और 'ऋषि' जैसे कुछ ऐसे शब्द हैं जो पहाड़ी की लगभग सभी बोलियों में आम शब्द हैं। ये साधारण बोल-चाल में भी प्रयुक्त होते हैं । मात्रा-रूप में 'ऋ' पहाड़ी और पालि में भिन्न प्रकार से बदल गया है, यथा पहाड़ी में -

ऋ > अ = मृणाल > पा0 मुल़ाल > प0 मनाल़, गृह > पा0 प0 घर,
वृष्टि > पा0 बुष्टि > प0 वर्षा;[7]
ऋ > आ = पितृ > पा0 पितु > प0 पिता, मातृ > पा0 मातु > प0 माता
कृष्ण > पा0 कण्ह > प0 कान्ह;
ऋ > इ = मृग > पा0 मिग्ग > प0 मिरग, पृष्ठ > पा0 प0 पिट्ठ,
घृत > पा0 घत > प0 घिऊ; तृष्णा > पा0 तिसणं > प0 तिरस्णा [7]
ऋ > उ = ऋतु > पा0 उतु > प0 रुत्त, वृक्ष > पा0 रुक्ख > प0
रुक्स = रुख, वृक > पा0 प0 बुका ।

पालि में 'ऐ' स्वर नहीं है । यह या तो 'इ' में बदला है, यथा-ऐश्वर्यम् > इस्सरियं, सैन्ध्व > सिन्धवों; या 'ए' में बदला है, यथा- ऐरावण: > एरावणो, मैत्री > मेतो आदि । पहाड़ी में 'ऐ' ध्वनि 'इ' से तो भिन्न है ही, यह 'ए' से भी स्वतन्त्र है, जैसे - खेत 'भस्म' परन्तु खैह 'शत्रुता', खेला 'खेलें' परन्तु खैला 'मैला' गेर 'मोड़, किनारा' परन्तु गैर 'कमज़ोर, पराया' आदि। इसी तरह पालि में 'औ' या तो 'उ' में बदला है या 'ओ' में यथा - औत्सुक्यं > उस्सुक्क, रौद्रम् > लुद्दं; गौतम > गोतम, औरस: > ओरसो, औदुम्बरम् > ओदुम्बरं आदि। परन्तु पहाड़ी में 'औ' की स्पष्ट सत्ता है - कोली 'जाति-विशेष' कौली

'कटोरी', चोला 'चोगा' चौला 'चौलाई', ठोर 'बड़ा पत्थर, दौड़' और 'ठिकाना' आदि ।

स्वरों की तरह ही पालि में व्यंजन ध्वनियों में भी संस्कृत की कुछ ध्वनियां नहीं हैं । संस्कृत के श्, ष् , ड् तथा ढ् चार सरल व्यंजन पालि में नहीं पाए जाते हैं। इनमें से 'श्' या तो 'छ्' में बदला है या 'स्' में, यथा- शवः > छवो, शावक > छापक; शरणम् > सरणं, शुभ > सुभ, दिशा > दिसा, आकाश > आकास आदि । 'ष्' भी या तो 'छ' में परिणत हुआ है, यथा सं0 षट् > पालि >, षट्कोण > छलंस आदि, या फिर 'स्' में बदला है- काषाणः > कासा, पुरूषः > पुरिसो, भाष > भास, पाषाण > पासाण, भाषा > भासा आदि ।

पहाड़ी भाषा में इन दोनों वर्णों की स्थिति कुछ भिन्न है । भीतरी पहाड़ी में 'श्' पूर्णतया सुरक्षित है, परन्तु बाहरी पहाड़ी में इसका उच्चारण 'स्' में बदलता है और कई बार यह पुनः 'ह्' में बदल जाता है, यथा - सं0 विशंति भी0 पहाड़ी > बीश > बाहरी पहाड़ी > बीस > बिह, संस्कृत 'उपविश्' से भीतरी पहाड़ी 'बेश' बाहरी पहाड़ी 'बेस' या 'बैह', सं0 आकाश > पा0 आ्कास > भी0 प0 गाश > बा0 प0 गास[8] आदि। यह स्थिति 'ष्' के सम्बन्ध में भी देखी जा सकती है; 'ष्' भीतरी पहाड़ी में 'श' में बदला है और बाहरी पहाड़ी में 'स्' में परिणत हुआ है जो उसे पालि के समीप जोड़ता है । परन्तु कुछ स्थितियों में बाहरी पहाड़ी पालि से आगे निकल चुकी है जब 'स्' पुनः 'ह्' में बदल जाता है, यथा - सं0 दोष > भी0 प0 दोश > बा0 प0 दोस; सं. रोष > भी0 प0 रोश > बा0 प0 रोस, सं0 विष > भी0 प0 बिश > बा0 प0 बिस । दूसरी स्थिति में सं0 पिष् > भी0 प0 पिश > हिं0 पीस > बा0 प0 पिह, सं0 पौष > भी0 प0 पोश > बा0 प0 पोस > पोह, सं0 आषाढ > भी0 प0 शाढ़ > हिं0 आसाढ़ > बा0 प0 हाड़ आदि । कुछ स्थितियों में 'ष्' पहाड़ी (बाहरी और भीतरी दोनों शाखाओं) में 'ख्' में परिणत होता है-सं0 भाषा > प0 भाखा, सं0 ईष्या > प0 हिरख, सं0 निषिद्ध > प0 नखिद, सं0 पाषण्ड > प0 पखंड, सं0 मनुष्य > प0 मनुख आदि ।[9]

पालि में 'ड्' और 'ढ्' वर्ण-ध्वनियां नहीं हैं परन्तु पहाड़ी में ये दोनों ध्वनियां विद्यमान हैं, यथा- डाक 'चिटठी-पत्र' ढाक 'एक पौधा विशेष', डाल 'बड़ी डाली' ढाल 'ढलान', डीम 'मंदिर विशेष' ढीम 'मिटटी का बड़ा ढेला' आदि ।

पालि और पहाड़ी की एक और सांझी विशिष्टता है । इन दोनों भाषाओं में ळ और ळह (ल़्ह) ध्वनियां हैं जो इन्हें सीधी वैदिक भाषा से प्राप्त हुई हैं क्योंकि यह दोनों ध्वनियां संस्कृत में नहीं थीं । पालि में ये स्वतन्त्र ध्वनियां भी हैं और 'ड्' और 'ढ्' के परिवर्तित रूप भी हैं । वहां 'ड्' प्रायः 'ल़्' में और 'ढ' ध्वनि 'ल़्ह' में

बदलती हैं, यथा– सं0 जड़: > पा0 जल़ो, सं0 तडाग: > पा0 तल़ाको; सं0 मूढ: > पा0 मूल्ह़ो सं गुढ: पा0 गुल्ह़ो आदि ।

पहाड़ी में ये दोनों मूर्धन्य–सघोष वर्ण हैं, 'ऴ' अल्पप्राण है और 'ळह' महाप्राण है । 'ळ' की दन्त्य, सघोष, अल्पप्राण 'ल' से स्वतन्त्र सत्ता निम्नलिखित न्यूनतम–विरोधी–युग्मों द्वारा देखी जा सकती है –

ल : ल़ =	काली (काली माता)	काळी (काले रंग की)
गला	(बातें)	गळा (गला)
काल	(कल)	काळ (अकाल)
मलका	(चांदी का रूपया)	मळका (जी मतलाने की क्रिया)

विद्वानों का मत है कि 'अर्धमागधी (जैसी प्राकृतों) में व्यञ्जनों के स्वर भी हो जाते हैं, लेकिन पालि में व्यंजनों के स्वर नहीं होते ।''[10] यह प्रवृत्ति पहाड़ी में भी नहीं है, परन्तु छिट–पुट उदाहरण ज़रूर मिलते हैं, जैसे – उस जो > उ' जो, तिस जो > ति' जो, जिस पल > जा'लु, पिलाना > पिआणा, धुलाना > धुआणा आदि । पालि और पहाड़ी में 'क्ष्' ध्वनि भिन्न रूप से बदली है। यह केवल इन दो भाषाओं की बात नहीं है । सभी प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में 'क्ष' अक्षर 'छ', 'च्छ', 'ख', 'क्ख' तथा 'ज्झ' में बदलता रहा है और पिशल तथा वूल्नर जैसे विद्वानों के लिए यह समस्या बनी रही है कि 'क्ष' को इस तरह विभिन्न रूपों में बदलने का विधान या आदेश क्या है ?[11] पालि और पहाड़ी में इसके भिन्न रूपों में प्रचलन इस प्रकार देखे जा सकते हैं – (1) क्ष > छ:, क्षमा > छमा, क्षार > छरिका > छार, क्षुरिका > छुरिका > छुरी; (2) क्ष > ख: क्षण > खण, मोक्ष > मोख; क्षुधा खुदा (3) क्ष > क्ख:, नक्षत्र > पा0 नक्खत > प0 नछत्र, पक्ष > पक्ख; (4) क्ष > च्छ: कक्ष > कच्छ, तक्ष > तच्छ आदि ।

ध्वनिकी के सम्बन्ध में पहाड़ी भाषा की कुछ अपनी विशेषताएं हैं । यहां प्रमुखत: भीतरी पहाड़ी में तालव्य श्रेणी की चवर्गीय (च, छ, ज, झ) ध्वनियों के अतिरिक्त वर्त्स्य–च़वर्गीय (च़, छ़, ज़, झ़) ध्वनियां भी विद्यमान हैं जो पालि में नहीं पाई जातीं । वर्त्स्य ध्वनियों का तालव्य ध्वनियों से स्वतन्त्र होने का तथ्य निम्नलिखित न्यूनतम विरोधी युग्मों से सिद्ध हो जाता है –

(1) च : च़

चार (अ चार)	च़ार	(दो और दो का जोड़)
कचेड़ा (खमीर)	कच़ेड़ा	(शरारतें)
दाची (दरांती)	दांच़ी	(जांच ली)

(2) छ : छ़

छार	(निथार)	छ़ार	(क्षार)
मौछी	(मक्खी)	मौछ़ी	(मछली)
छोण	(फुरसत)	छ़ोण	(घास की छत)

(3) ज : ज़

जाया	(औलाद)	ज़ाया	(निष्फल)
जीना	(जीवित रहना)	ज़ीना	(सीढ़ी)
राज	(राज्य)	राज़	(रहस्य)

(4) झ : झ़

झौड़	(तंग परंतु लंबा खेत)	झ़ौड़	(गिर जा)
झाड़	(झाड़ दे, इकट्ठा कर)	झ़ाड़	(गिरा दे, कसर)

इन ध्वनियों को देखते हुए डा. ग्रियर्सन ने पहाड़ी को दरद-पैशाची से प्रसूत माना था; परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि पहाड़ी का मूलाधार पालि की भगिनी शौरसेनी प्राकृत है और दरद-पैशाची से इसका दूर का रिश्ता है ।[12] डॉ. सुनीति कुमार चैटर्जी तथा डॉ. राम विलास शर्मा जैसे विद्वानों ने सिद्ध किया है कि उपर्युक्त ध्वनियां पूर्व वैदिक आर्य-ध्वनियां हैं । उनका मानना है कि '' यज्ञस्य-यज़्ञस्य, पुरोहितं-पुरज़धित, ऋत्विजम्-ऋत्विज़म, भर्गो-भर्गज़, धियो-धियज़ आदि रूपों में दूसरा रूप शुद्ध मूल आर्य था और पहला रूप अनार्य प्रभावित, या स्वतः अपभ्रष्ट भारतीय रूप है ।''[13]

पालि और पहाड़ी में ध्वनियों के विचार की कुछ समान प्रवृत्तियां भी पाई जाती हैं । इनमें सघोष महाप्राण (घ, झ, ढ, ध, भ) वर्ण 'ह' में बदलने की एक विशेषता है, जैसे - पालि में 'साधु' का 'सातु', 'प्रभुतम्' का 'पहुतं' आदि । यही स्थिति पहाड़ी की भी है, यथा-सं0 प्राघुणः > पा0 पाहुणो > प0 पाहुणा, सं0 रुधिर > पा0 रुहिर > प0 रूहर, सं0 लघुकः > पा0 लहुको > प0 लौहका आदि।

रूप-रचना

संस्कृत में प्रातिपदिक स्वरान्त भी होते हैं और व्यंजनान्त भी । भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में मध्यकाल में ही व्यंजनान्त संज्ञा शब्द लुप्त होने लगे थे । यह प्रवृत्ति पालि में स्पष्ट रूप से लक्षित होती है । पालि में व्यंजनान्त शब्द तीन प्रकार से समाप्त हो गए और यह प्रवृत्ति पहाड़ी में भी लगभग लागू हुई है -

(क) संस्कृत प्रातिपदिक के अन्तिम व्यंजन में स्वर का आगम, यथा- सं० शरद् > पा० सरदो, सं० सरित् > पा० सरिता, सं० चन्द्रमस् > पा० चन्द्रमा आदि;

(ख) अन्तिम व्यंजन का लोप- समेधस् > सुमेध, तपस् > तप, रजस् > रज, स्रोतस् > स्रोत, मरूत् > मरू, षट् > छ आदि ।

(ग) व्यंजनान्त शब्द के साथ 'अ' स्वर जोड़ कर उसे स्वरान्त बनाया जाता है और तब उसे साधारण व्यंजनान्त ही समझा जाता है - श्रीमन् > श्रीमान; सं० ष्लेष्मन् > पा० सेम्ह > प० सीम, सं० भस्मन् > पा० भस्म > प० भौस आदि ।

इस प्रकार व्यंजनान्त शब्दों के रूप उत्तरोत्तर घटते गए हैं और आज कल अकारान्त शब्दों को व्यंजनान्त समझा जाने लगा है ।

संस्कृत में तीन लिंगों का विधान है - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग । साधारणतया पालि में भी लिंग की व्यवस्था संस्कृत के समान है,[14] यथा- *पुल्लिंग*: बुद्ध, जय, पाक, निधि आदि; ***स्त्रीलिंग*** : कञ्ञा, मति, इत्थी, वधू, नीलता आदि; *नपुंसकलिंग* : चित, आयु, गमन, नीलत्त आदि । परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यों लगता है कि पालि के समय में ही संस्कृत की तीन-लिंग सम्बन्धी विधि पुरानी पड़ चुकी थी और केवल दो लिंग-व्यवस्था की प्रथा का आरम्भ हो रहा था । तब अनेक नपुंसकलिंग शब्द या तो पुल्लिंग रूप में या स्त्रीलिंग रूप में प्रयुक्त हो रहे थे । उदाहरणार्थ- धम्मपद 194 में 'तपो सुखो', सुत्तनिपात 662 में 'सुखुमो रजो पटिवातं व खित्तो' तथा धम्मपदट्ठकथा 4.45 में 'महावेगेन आगतो नदीसोतो' तीनों वाक्यों में तपस्, रजस् और स्रोतस् ये तीनों नपुंसकलिंग शब्द क्रमशः तपो, रजो, सोता पुल्लिंग रूप में प्रयुक्त हुए हैं तथा इनके विशेषण क्रमशः सुखो, सुखुमो और खित्तो, आगतो भी पुल्लिंग रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं ।[15]

इससे स्पष्ट है कि पालि में नपुंसक लिंग का विधान शिथिल पड़ रहा था और अब पहाड़ी में इसका प्रचलन पूर्णतया समाप्त हो चुका है । यहां केवल पुल्लिंग और स्त्रीलिंग की ही व्यवस्था है । पहाड़ी में लिंग-ज्ञान वैयाकरणिक है । चाहे संज्ञा-शब्द हो, जैसे गाय, बैल, बकरी, या अप्राणी जैसे पत्थर, पहाड़, नदी अथवा चाहे मूर्त हो या अमूर्त जैसे विचार, लाभ, हानि, भाव आदि सभी प्रकार के संज्ञा शब्द दोनों में से किसी एक लिंग के साथ अवश्य सम्बन्धित होगा । तभी हम कह सकेंगे, 'ग्रन्थ अच्छा है परन्तु पुस्तक अच्छी नहीं है ।' प्राणवान जीवों का लिंग-निर्धारण प्राकृतिक लिंग-भेद पर होता है, परन्तु निर्जीव संज्ञाओं के लिए लिंग-निर्धारित करने में कठिनाइयां होती हैं । अन्य भारतीय आर्य भाषाओं की तरह पालि और पहाड़ी में भी कुछ प्रत्यय हैं जिनके आधार पर संज्ञा शब्दों का या

तो लिंग-भेद प्रकट होता है या एक लिंग से दूसरे में बदलने में सहायता होती है।

पालि में प्रायः सात स्त्री-प्रत्ययों का प्रयोग देखने में आता है -

(1) आ, यथा- खत्तिय आ = खत्तिया 'क्षत्रिया', उपासक + आ = उपासिका आदि । पहाड़ी की लोक-भाषा में इसका प्रयोग नहीं मिलता परन्तु आजकल जो साहित्य लिखा जा रहा है उसमें इसके प्रयोग हो रहे हैं ।

(2) ई, यथा- कुमार + ई = कुमारी, गोतम + ई = गोतमी आदि । यह पहाड़ी का भी स्त्री-प्रत्यय है और इसका बड़ा व्यापक प्रयोग मिलता है- कुक्कड़ से कुक्कड़ी, मेंडक से मेंडकी, घोड़ा से घोड़ी, बकरा से बकरी, बेटा से बेटी, लाड़ा से लाड़ी आदि ।

(3) ऊ, यथा- करभोरू + ऊ = करभोरू, सहितारू + ऊ = सहितारू, वामोरू + ऊ = वामोरू आदि । यह प्रत्यय पहाड़ी में प्रचलित नहीं है ।

(4) नी, जैसे-भिक्खु + नी = भिक्खुनी, बन्धु+ नी = बन्धुनी, पटु + नी = पटुनी (कुशल स्त्री) आदि । इस प्रत्यय का पहाड़ी में भी प्रयोग मिलता है, यथा- मोर से मोरनी, शेर से शेरनी । श्रुति के कारण 'नी' प्रायः 'णी' में बदलता है-कुड़म से कुड़मणी, ऊंट से ऊंटणी, बझिया से बझियाणी, आदि ।

(5) इनी, यथा- यक्ख + इनी = यक्खिनी (यक्षिणी), राजा + इनी = राजिनी, नाग + इनी = नागिनी आदि । यह प्रत्यय पहाड़ी में नहीं मिलता । परन्तु इसके समान पहाड़ी में 'अन' या 'अण' प्रत्यय का बहुत प्रचलन है, यथा- माली से मालण, नेगी से नेगण, हेसी से हेसण, धोबी से धोबण आदि । वस्तुतः ईकारान्त पुल्लिंग शब्दों में 'अण' प्रत्यय लगाने से स्त्रीलिंग रूप बनते हैं ।

(6) आनी, यथा- मातुल + आनी = मातुलानी, वरुण + आनी = वरुणानी, खत्तिय + आनी = खत्तियानी आदि । पालि का यह 'आनी' प्रत्यय पहाड़ी में 'आणी' में बदल गया है । सम्बन्धसूचक प्राणीवाचक पुल्लिंग शब्दों के आगे 'आणी' जोड़ने से स्त्रीवाचक शब्द बनते हैं । ऐसी स्थिति में मूल शब्द में यदि दीर्घ स्वर हो तो ह्रस्व में बदल जाता है, यथा- नोकर से नकराणी, ठाकर से ठकराणी, मास्टर से मस्टराणी, पंडत से पंडताणी, देवर से दराणी, जेठ से जठाणी, आदि ।

(7) ति प्रत्यय, यथा- युव + ति = युवति । इस प्रत्यय का पहाड़ी में प्रयोग नहीं मिलता ।

संस्कृत में तीन वचनों का प्रावधान था, परन्तु पालि और पहाड़ी में केवल दो वचन हैं - एक वचन और बहुवचन । संस्कृत का द्विवचन इन दोनों भाषाओं में नहीं है ।

कारक

संस्कृत में सम्बोधन सहित आठ विभक्तियों का प्रचलन रहा है और जहां तक भावाभिव्यक्ति का सम्बन्ध है, अनेक अन्य भारतीय आर्य-भाषाओं की तरह पालि और पहाड़ी में भी आठ विभक्तियों या कारकों का प्रचलन है; परन्तु स्वरूप की दृष्टि से संस्कृत के विभिन्न विभक्ति-रूप धीरे-धीरे समाप्त होते गए हैं । पालि में चतुर्थी (सम्प्रदान) और षष्ठी (सम्बन्ध) विभक्तियों के रूप समान हो गए । दोनों एक हो गई हैं । इसी तरह तृतीया (करण) तथा पंचमी (अपादान) के रूपों में भी समानता आ गई है, यथा- धर्मैः और धर्मेभ्यः दोनों के लिए 'ध म्मेहि' ।

पहाड़ी में विभक्ति-चिन्हों का रूप कारक-प्रत्ययों ने ले लिया है, परन्तु इन सब का मूलाधार संस्कृत ही रहा है । पहाड़ी में कर्त्ता कारक का विभक्ति-चिन्ह 'ए' है जो व्यंजनान्त और आकारान्त प्रतिपदिकों के साथ मात्रा रूप में तथा अन्यत्र मूल रूप में जुड़ता है, यथा- बाब से बाबे, बेटा से बेटे, नेगी से नेगीए, साधु से साध ुए, ससू से ससूए, छोह्टू से छोह्टूए आदि । कर्ता कारक में यह 'ने' का अर्थ देता है-बेटे रोटी खाई (बेटे ने रोटी खाई), नेगीए गलाया (नेगी ने कहा), यह स्थिति हिन्दी आदि अन्य भाषाओं से भिन्न है । वहां लड़का से लड़के विकार होने पर भी 'ने' का प्रयोग होता है, या व्यंजनान्त या स्वरान्त ('आ' को छोड़कर) प्रतिपदिको में शब्द मूल रूप में रह कर भी 'ने' का संयोग होता है, यथा- लड़के ने, लड़की ने, साधु ने आदि । परन्तु पहाड़ी में हर प्रकार के प्रतिपदिक में 'ए' का संयोग होगा और वह 'ने' का अर्थ देगा । यही इसका विकारी रूप भी है । यह एक वचन की स्थिति है और पुल्लिंग तथा स्त्रीलिंग दोनों के लिए समान रूप से प्रचलित है । बहुवचन की स्थिति में कुछ बोलियों में 'ए' में अनुनासिकता आ जाती है । इससे स्पष्ट है कि पहाड़ी में संस्कृत की प्रथमा विभक्ति एकवचन सुरक्षित है केवल (:) विसर्ग 'ए' में बदल गया है- रामः से रामे, देशः से देशे आदि ।

यही 'ए' पहाड़ी में करण कारक का विभक्ति चिन्ह भी है । मूल रूप में यह तृतीया का ही स्वरूप है । पहाड़ी भाषा में कर्तृ कारक के 'ने' सम्बन्धी भाव को करण कारक द्वारा अभिव्यक्त करना एक विशेषता है । 'घोड़े ने घास खाया' की अभिव्यक्ति प्रायः 'घोड़े द्वारा (या से) घास खाया गया' से हो जाती है । इसलिए यह तृतीया का सह विभक्ति रूप है- कलमे लिख (कलम से लिख) तलुआरीए काटेया (तलवार से काटा) आदि । परन्तु करण कारक के कुछ स्वतन्त्र प्रत्यय भी हैं, जैसे-कन्ने = के संग, साए = सहित, संगे = संग आदि ।

पहाड़ी में कर्म कारक और सम्प्रदान दोनों के समान प्रत्यय हैं । बाहरी पहाड़ी में यह 'जो' है और भीतरी शाखा में 'खे', 'ले' और 'बे' है । अपादान के मुख्य प्रत्यय 'ते' और 'दो' है । पालि में भी '' पंचमी एकवचन 'तो' लगाकर बनाया जाता है । यह संस्कृत 'तः' का परिवर्तित रूप है, उदाहरणार्थ घरतो (गृहात्), मुखतो (मुखात्), दूरतो (दूरात)''[16] आदि । अतः पहाड़ी का 'ते' भी संस्कृत 'त्' से सम्बन्धित है और पालि के निकट है । पहाड़ी में अघोष वर्ण सघोष में बदलते हैं, अतः कुछ बोलियों में प्रयुक्त 'दो' भी मूल में 'ते' का ही परिवर्तित रूप है – ते > दे > दो । शौरसेनी प्राकृत में भी अपादान का प्रत्यय 'दो' ही रहा है । पालि में सम्प्रदान और सम्बन्ध कारकों के समान रूप हैं । देखने से लगता है कि उसमें समावेश हो गया है, यथा धर्मस्य > पा0 धमस्य, बहुवचन में धर्मानाम् > पा0 धम्मानं । पहाड़ी की किसी भी बोली में इन दो कारकों के समान रूप नहीं हैं और न ही समान प्रत्यय हैं । यहां सम्बन्ध कारक के प्रत्यय 'रा–रे–री' हैं जिनका प्रयोग हिन्दी के समान होता है ।

अधिकरण कारक के 'में' अर्थ में पहाड़ी भाषा का मुख्य प्रत्यय 'मंझ' है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'मध्य' से हुई है जिसका पालि में रूप 'मज्झ' है । शौरसेनी में भी यह प्रत्यय 'मॉझ' और 'मॅह' रूप में प्रयुक्त होता रहा है । पुरानी हिन्दी में यह 'मांहि' रूप में बदल चुका था । 'पर' के अर्थ में अधिकरण के दो प्रत्यय हैं–'पांदे' और 'पर' । पांदे शब्द संस्कृत 'उपान्त' से व्युत्पन्न हुआ है । कोमलता की प्रवृत्ति में 'त' वर्ण 'द' में बदल गया है और पूर्व्र स्वर 'उ' के लोप से अन्त में 'ए' का संयोग हुआ है–उपांत > उपां > पांदे ।

प्रत्ययों के अतिरिक्त पहाड़ी की सभी बोलियों में अधिकरण की अभिव्यक्ति विभक्ति रूप में भी होती है । प्रातिपदिक में 'ए' के संयोग से इसका प्रयोग मिलता है, यथा–घरे कुण हा, 'घर में कौण है'? यह रूप पालि की सप्तमी विभक्ति के अनुकूल है, जैसे पालि में धम्मे > धर्म में, कञ्ञे झ कन्या में आदि ।

सर्वनाम :

सर्वनाम के क्षेत्र में भी अनेक समानताएं लक्षित होती हैं । पहाड़ी में उत्तम पुरुष एक वचन कर्तृकारक रूप 'हऊं' है । यह संस्कृत 'अहम्' का तद्भव रूप है । पालि में यह तत्सम् रूप में ही प्रचलित था–सं0 अहम् झ पालि अहं झ पहाड़ी हऊं । पालि में इसके अन्य रूप संस्कृत की तरह विभक्तियों में विद्यमान थे, परन्तु पहाड़ी में इसका तिर्यक रूप 'मूं' है जो संस्कृत 'माम्' से व्युत्पन्न हुआ है और

पालि के माध्यम् से पहाड़ी में इस प्रकार पहुंचा है - माम् > पालि मं (ममं) > पहाड़ी मूं । परन्तु भिन्न कारक-प्रत्ययों से पहले यह विभिन्न बोलियों में (या विवेक से एक ही बोली में) भिन्न रूप से विकृत हुआ है, यथा सिरमौरी, कहलूरी, चम्बयाली में 'मिं', कांगड़ी, मण्डियाली, कुलुई में 'मुं' (और 'मिं'-भी), बघाटी 'मां' आदि । परन्तु यह क्षेत्र-निर्धारण बहुत उचित नहीं है । एक ही बोली में भी दोनों रूप दिखाई देते हैं- 'मंजो' या 'मुंजो' मांखे या मूंखे या मिंखे आदि ।

उत्तम पुरुष बहुवचन में इसके दो रूप प्रचलित हैं - हामे और आसे । बोलियों के आधार पर इन्हें अलग-अलग करना ठीक नहीं है क्योंकि एक ही बोली में भी दोनों रूप समानत: प्रचलित हैं - जैसे 'आसे' से 'असारा' और 'हामे' से 'म्हारा' सब बोलियों में एक साथ प्रचलित होते हैं । दोनों रूपों का एक साथ चलना कोई आश्चर्य भी नहीं है क्योंकि यह परम्परा पालि में भी थी । वहां द्वितीया विभक्ति में यह दोनों शब्द 'अम्हे' और 'अस्मे' रूप से प्रचलित रहे हैं । चतुर्थी और षष्ठी में इनके पुन: दोनों रूप प्रयुक्त होते थे -अम्हाकं और अस्माकं, पहाड़ी म्हारा तथा असारा । जैसा कि ''ध्वनि'' शीर्ष के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है श झ स झ ह में बदलने की प्रवृत्ति के कारण 'असा' से 'अहां' (कुछ क्षेत्रों में अनुस्वार का समागम है) रूप भी स्वभाविकत: प्रचलित है-असांरा से अहांरा, असांजो से अहांजो आदि ।

मध्यम-पुरुष एक वचन कर्तृकारक शब्द 'तू' है जो संस्कृत से पालि और प्राकृत के माध्यम से इस प्रकार पहाड़ी में पहुंचा है - सं0 त्वम् > पालि झ त्वं > प्रा0 तुहुँ > प0 तू । इसका तिर्यक रूप 'तें' है जो भिन्न स्थानों पर 'ति', 'तु', 'तौ', 'तां' रूप में प्रचलित हुआ है । बहुवचन में यह पूर्वोक्त 'हामे' और 'आसे' की तरह 'तुम्हे' तथा 'तुसे' रूप में विकसित हुआ है । पालि में भी 'तुम्हे' शब्द प्रचलित है, परन्तु पूर्वोक्त अस्मे या अस्माकं की तरह पालि में तुस्मे या तुस्माकं जैसे रूप प्रचलित नहीं थे । सम्भवत: पहाड़ी में ये रूप उत्तम-पुरुष के अनुकरण में प्रचलित हुए हों ।

सर्वनाम के क्षेत्र में एक और विशिष्टता तृतीय अथवा अन्य पुरुष के सम्बन्ध में देखने में आती है । अन्य पुरुष वाचक सर्वनाम के पहाड़ी में लिंग-भेद के कारण अलग-अलग प्रातिपदिक हैं और यह परम्परा इसे पालि के माध्यम से संस्कृत से प्राप्त हुई है । यह उल्लेखनीय है कि हिन्दी आदि अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओं में ऐसा भेद नहीं पाया जाता । हिन्दी में 'वह' और इसका तिर्यक रूप 'उस' दोनों पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के लिए समान रूप से प्रयुक्त होते हैं । लिंग-भेद के कारण इनके अलग-अलग रूप नहीं हैं । इसी तरह 'यह' और

'इस' पुल्लिंग के लिए जिस रूप में प्रयुक्त होते हैं, स्त्रीलिंग के लिए भी उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं । परन्तु पहाड़ी के रूप भिन्न-भिन्न हैं, यथा, कहलूरी और चम्बयाली में 'इस-कने' का अर्थ है 'इस (पुरुष या लड़के आदि) के साथ' और इसा-कने का 'इस (स्त्री या लड़की आदि) के साथ' । परन्तु बहुवचन में ऐसा भेद प्रकट नहीं होता । वहां दोनों स्थितियों में 'तिन्हा-कने' का अर्थ है 'उनके साथ' चाहे पुल्लिंग हो या स्त्रीलिंग । अन्य-पुरुष वाचक की तरह निश्चय वाचक सर्वनाम के 'ए' (यह) और 'सो' (वह) भी एक वचन तिर्यक स्थिति में लिंग के अनुसार भिन्न रूप दर्शाते हैं । यह व्यवस्था संस्कृत और पालि दोनों में थी ।

पहाड़ी में सम्बन्ध वाचक सर्वनाम का रूप 'जो' या 'जे' है । यह 'यद्' सर्वनाम के कर्ता कारक के रूप हैं- सं0 यः > पा0 यो > प0 जो, सं0 ये > पा0 ये > प0 जे । संस्कृत के 'किम्' से पहाड़ी के प्रश्नवाचक सर्वनाम की रचना कः. पुनः के संयोग से 'कुण' रूप से हुई है । 'कोई' अनिश्चय वाचक सर्वनाम सं0 'किम् अपि' संयोग से निष्पन्न हुआ है जो प्राकृत में 'कोई' रूप था । इसी का दूसरा रूप 'किछ' संस्कृत 'किम्. चित्' से व्युत्पन्न हुआ है - किंचित । पालि में इसका रूप 'किंचि' प्रचलित हुआ । अपभ्रंश में इसके दो रूप प्रचलित हुए- कछु और किछु । स्वर-विपर्यय के कारण 'कछु' से हिन्दी 'कुछ' और 'किछु' से पहाड़ी 'किछ' बना है । प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का 'आत्मन्' शब्द मध्यकालीन आर्य भाषा में 'अत' और 'अप्प' दो रूपों में परिणत हुआ । पालि में यह 'अत्त' था । अपभ्रंश में इसके अप्पा, अप्प, अप्पण, अप्पणु, अप्पाण, अप्पउं अनेक रूप विकसित हुए । इनमें 'अप्पउं' रूप से पहाड़ी का 'अप्पु' रूप परिणत हुआ है । भीतरी पहाड़ी में सरलीकरण की प्रवृत्ति से यह 'आपु' बना है । संस्कृत 'सर्व' का पालि में 'सब्ब' रूप विकसित हुआ है और उसमें सभी विभक्तियां नियोजित हुई हैं । पहाड़ी में इसका प्रयोग प्रायः 'सभ' रूप में होता है ।

विशेषण

संस्कृत, पालि तथा पहाड़ी के संख्यावाची शब्दों में क्रमिक समानता दिखवाई देती है, यथा- 'एक' तीनों भाषाओं में समान रूप, सं0 द्वि > प0 दुई त्रि > ति > त्रै (कुछ बोलियों में चोने), चत्वारि > चतु > चार, पञ्च > पञ्च > पंज (पांज), वट् > छ > छः, सप्त > सत्त > सत (सात), अष्ट > अट्ठ > अठ (आठ), नवम् > नव > नौ, दश > दस > दस' । 'एक' से पालि का 'एके' शब्द का अर्थ 'कुछ' है । पहाड़ी में यह 'एका' बना है - एका माण्हु 'कुछ लोग' । पालि

में 'द्वि' शब्द समास में 'द्वि' बनता है परन्तु पहाड़ी में 'दु', यथा- पा0 दिगुण > प0 दुगणा । 'त्रि' से समास में दोनों बोलियों में एक रूप बनता है-पा0 तिगुण > प0 तिगणा; परन्तु 'चार' में भिन्नता हो गई है- सं0 चतुष्कर्ण > पा0 चतुकण्ण >प0 चारकुणे।

दस से आगे की गिनतियों में भी समानता लक्षित होती है- सं0 एकादश > पा0 एकारस > प0 ग्यारह; द्वादश > बारस > बारह, त्रयोदश > तेरस > तेरह, चतुर्दश > चुद्दस > चौदह, पञ्चदश > पण्णरस > पन्द्रह, षोडस > सोल़स > सोलह, सप्तदश > सत्तरस > सतरह, अष्टदश > अट्ठारस > अठारह > ठारह, एकोनविंशति > एकूनवीस > उन्नीस > नीह । विंशति > विसति > बीस > बीह, त्रिंशति > तिंसति > तीस > तीह, चत्वारिंशत् > चत्तारीस (चत्तालीस) चालीस > चालीह/चाळी, पंचाशत् > पण्णस > पचास > पंजाह, षष्टि > सट्टि > साठ > सठ, सप्तति > सत्तरि > सत्तर, अशीति > असीति > अस्सी (अशी), नवति > नवति > नब्बे, शत > सत > सौ (शौ), सहस्र > सहस्स > हज़ार > ज़्हार/हजार आदि ।

अपूर्णांक गणना वाचक में केवल आधे तक हिसाब लक्षित होता है-सं0 अर्द्ध > पा0 अर्द्ध > पा0 अद्ध > प0 अध (आध), द्विअर्द्धक > डिअड्ढ > डेढ़ (देहुड़), अर्द्धतृतीय > अड्ढतिय > ढाई, सं0 अर्द्धचतुर्थ > पा0 अड्ढुड्ढ > साढ़े तीन आदि ।

पालि में अट्ठारस (अठारा) तक की संख्याएं क्रम वाचक विशेषण हैं और उनके सभी विभक्तियों में रूप बनते हैं । पहाड़ी में केवल चार तक क्रम वाचक रूप बनते हैं जिनके रूप इस प्रकार हैं- सं0 प्रथम > पा0 पठम > प0 पथम (या पहला), सं0 द्वितीय > पा0 द्वे (दुतिय) > प0 दूजा, सं0 तृतीय > पा0 ततिय (तीणि) > प0 तिया (या त्रीजा), चतुर्थ > चतुत्थ > चौथा । इससे आगे की गिनतियों में हिन्दी की तरह 'वां' प्रत्यय लगता है ।

क्रिया-रूप

क्रिया के क्षेत्र में विषमताओं का पहले उल्लेख करना अधिक उचित होगा । पालि और पहाड़ी अनेक दिशाओं में संस्कृत से दूर हो गई हैं, परन्तु आपस में समान हैं । आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में सरलीकरण की प्रवृत्ति प्रमुख रही है । इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत संस्कृत की अनेक विविधाएं समाप्त हो गई हैं -

(1) सरलीकरण का पहला प्रभाव संस्कृत के द्विवचन की समाप्ति है, यह पहले

भी देखा जा चुका है । परन्तु क्रिया के सम्बन्ध में इसका अधिक महत्व है क्योंकि क्रिया के सभी लकारों और पुरुष प्रत्ययों पर इसका प्रभाव पड़ा । संस्कृत की पठति, पठतः, पठन्ति के स्थान पर केवल पठति और पठन्ति रूप रह गए । यही दो धारणाएं पहाड़ी ने अपनाई ।

(2) परस्मेपद तथा आत्मनेपद के बन्धन में शिथिलता आ गई । यद्यपि पालि के गाथा साहित्य में आत्मनेपद के रूप भी पर्याप्त रूप में मिलते हैं किन्तु उनका बड़ा भाग केवल मात्रा की रक्षा के लिए हैं । साथ ही वे रूप पुरातन एवं अप्रयुक्त से प्रतीत होते हैं । आरम्भिक गद्य में ऐसे रूप कम मिलते हैं और आगमेतर साहित्य में तो और भी कम ।[17] इस तरह 'लभित' तथा 'लभते' के लिए एक ही रूप 'लभति' रह गया, ऐसे ही भवति - भवते > भवति आदि ।

विद्वानों का मत है कि संस्कृत में धातु व्याकरणाचार्यो के हाथों में एक ऐसा अनुज्ञापन है कि इससे विभिन्न प्रकार के शब्द बनाए तथा श्रेणीबद्ध किए जाते हैं और एक ही धातु के लगभग सात सौ दो शब्द - रूप (1 धातु ’ 3 वचन ’ 3 पुरुष ’ 13 लकार ’ 6 कृदन्त) बनाए जाते हैं, परन्तु धातु का मूल रूप में प्रायोगिक अर्थ कुछ नहीं होता ।[18] भाषाओं के सरलीकरण की ओर प्रवृत्ति का यह परिणाम भी हुआ है कि संस्कृत की क्रियाओं की धातुएं आज्ञार्थ का रूप धारण कर गई है, और मूल धातुएं आज्ञा के रूप में प्रयुक्त होती हैं, यथा - लिख् > लिख (लिख ले), पठ > पढ़ (पढ़ ले), पुन् > पुण (अन्न को घास हटा कर साफ कर), पिव् > पी (पानी पी) आदि ।

(4) संस्कृत में क्रिया काल विभाजन में लघुतम समय - भेद के कारण अनेक लकारों का विधान था । यह भिन्नता धीरे - धीरे कम होती गई है । पालि में ही लड़. (अनद्यतन - भूत) और लुड़. (सामान्य भूत) में परस्पर भेद अस्पष्ट हो गया था । दोनों में केवल लुड़. के ही रूप रह गए । इसी तरह लिट् (परोक्ष भूत) भी लुड़. में ही बदल रहा था । इसके अतिरिक्त विधिलिड़., आशीर्लिड़. और आज्ञार्थ में भी स्पष्ट भेद नहीं रह गया था और पालि में तीनों में से आशीर्लिड़. लुप्त हो गया था । पहाड़ी में काल विभाजन और सरल हो गया है ।

पहाड़ी में क्रियाओं का मूल संस्कृत ही रहा है । इसकी अनेक धातुएं पालि से मिलती हैं, यथा - सं0 खन् > पा0 खण् > प0 खण (खोदना), सं0 गण् > पा0 गिण् > प0 गिण (गिनना), जन् > जण > जण (पैदा करना), जप् > जप् > जप (जपना), तक्ष् > तच्छ् > तछ (छीलना), दुह् > दुह > दुह (दूध दुहना), रुष् > रुस > रुश (रुष्ट होना), लुन् > लुन् > लुण (घास आदि काटना), लिप् > लिप् > लिप (लिपाई करना) आदि । तद्भव रूप के और भी उदाहरण देखे

जा सकते हैं - सं0 पृच्छ > पा0 पुच्छ > प0 पूछ (पूछना), उत्तिष्ठ > उत्तिट्ठ > उठ (उठना), पिव > पिव > पी (पीना) आदि ।

संस्कृत में प्रेरणार्थक क्रिया का प्रत्यय 'अय' है । पालि में यह प्रत्यय 'ए' में परिणत हुआ है, यथा- सं0 दर्शयति > पा0 दस्सेति, सं0 दूषयति > पा0 दूसेति, सं0 घातयति > पा0 घातेति आदि । पहाड़ी में भी अन्य प्रेरणार्थक प्रत्ययों के अतिरिक्त 'ए' प्रत्यय सर्वाधिक प्रचलित है- डूबणा से डबेणा, भकणा से भकेणा (जलाना), शुकण (सूकणा) से शकेणा (सकेणा), जोड़ना से जड़ेना, सिटणा से सटेणा आदि । पहाड़ी की कुछ धातुओं की स्थिति में 'अय' प्रायः 'आ' में बदला है- अय > अव > आ, यथा- सोणा से सुआणा, घटणा से घटाणा, बधणा से बधाणा, खिसकणा से खिसकाणा आदि । ईकारान्त धातुओं में 'आ' श्रुति के कारण 'या' हो जाता है- पी से पिआ > पियाणा, जी से जिआ > जियाणा आदि । श्रुति का यह संयोग संस्कृत और पालि में भी था- 'भी' धातु से भययति झ पा0 भाययते । प्रेरणार्थक धातुएं सर्वदा सकर्मक होती हैं ।

संस्कृत में नामधातुओं का प्रत्यय 'आय' है, पालि में भी यही प्रत्यय रहा है, यथा- संस्कृत संज्ञा प्रातिपदिक 'शब्द' से शब्दायते > पा0 सुखायति (शब्द करता है), सं0 सुख से सुखायते > पा0 धूमायति (धूम्रपान करता है) आदि । पहाड़ी में 'आय' प्रत्यय 'इ' में बदला है और पहाड़ी की अनेक बोलियों में संज्ञा, विशेषण और क्रिया-विशेषण शब्दों से सरलता से नाम धातुएं बनती हैं, यथा- भूख से भूखिणा (भूख लगना), रात से रातिणा (रात होना), सिंयाणा से सियाणिना (बूढ़ा होना), पीछे से पीछिणा (पीछे रह जाना), झीश से झीशिणा (प्रातः होना) आदि ।

पालि में ध्वनियों के अनुकरण से धातु बनने की परम्परा रही है । उसमें ऐसी अनेक धातुएं प्रचलित हैं, यथा- किणकिणायति, सं0 गर्गर से गग्गरायति (गर्जता है), गल़गल़ायति (गड़-गड़ करता है), घुरुघुरायति झ सं0 घुर्घरायते, चिटचिटायति अथवा चिच्चिटायति (चिट-चिट करता है) आदि । पहाड़ी में भी अनेक अनुकरणात्मक धातुएं प्रचलित हैं, जैसे-बड़बड़ाणा, थरथराणा, सरसराणा, गड़गड़ाणा, कड़कड़ाणा आदि ।

अव्यय

साधारणतया पालि और पहाड़ी के अव्यय शब्द संस्कृत से ही आए हैं और क्योंकि वे अव्यय हैं, इसलिए उनका प्रयोग भी संस्कृत की तरह ही है । थोड़ी बहुत स्वर-व्यंजन सम्बन्धी भिन्नताएं हैं जिनका उल्लेख 'ध्वनि' के अन्तर्गत किया

गया है । कुछेक अव्यय उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य हैं -

क्रिया विशेषण- सं० अत्र > पालि अत्थ > प० एत्थी, तत्र > तत्थ > तेत्थी, कुत्र > कत्थ > केत्थी, अग्रत: > अग्गतो > आगे, पश्च > पच्छा > पीछे (पाछु); अद्य > अज्ज > अज (आज) । हिन्दी में 'कल' शब्द आगे और पीछे के दोनों दिनों के लिए प्रयुक्त होता है । परन्तु पहाड़ी में संस्कृत और पालि की तरह अलग-अलग शब्द हैं, जैसे- सं० ह्यस् > पालि हियो > प० हीज़ (हीज़ो) 'गुज़रा या पिछला कल', सं० श्वस् (श्व:) > पा० स्वे > प० शूई 'आने वाला कल', सं० सन्ध्या > पा० संझा > संझ, मध्य > मज्झ > मंझा, सदा > सदा > सदा (हमेशा), सदृश > सदिस > सांही (जैसा), वर्जित > वज्जिय > बाझी, विना > विना > बिणी आदि ।

समुच्चय बोधक - सं० चेत् > पा० चे > प० ज़े (यदि), परम् > परं > पर, किंचित > किंचि > किच्छजें, न . . . न ; पहाड़ी में सं० 'किम्' से 'क्यों' का रूप 'काऊं' हो जाता है जो कुछेक बोलियों में प्रयोग में आता है, परन्तु मुख्य रूप में अधिकतर बोलियों में यह शब्द प्रश्नवाचक सर्वनाम 'की' में कर्म कारक का प्रत्यय लगाने से ही बनता है । संस्कृत में भी वस्तुत: 'किम्' शब्द द्वितीया विभक्ति के रूप में ही 'क्यों' का अर्थ देता है । पालि में भी यद्यपि 'किमत्थं' शाब्दिक रूप में 'किम् अर्थ ' है, परन्तु अर्थ 'किसलिए' या 'क्यों ' है । पहाड़ी में यही परम्परा है, यथा-कजो, किले, किबे कर्मकारक द्वारा ही व्युत्पन्न हैं ।

संदर्भ संकेत

1. "A History of Sanskrit Literature" - Arthur A. Macdonell, p. 1.
2. As quoted by Pt. Lachhmi Dhar Kalla in his book. " The Home of the Aryas " p. 1.
3. Maxmullar- "Mythology And Folklore", as translated by Ramesh Tiwari and Suresh Tiwari ''पुराणशास्त्र एवं जनकथाएं'', पृ 36.
4. Maxmullar, "History of Ancient Sanskrit Literature", p. 52.
5. John Beams, "A Comparative Grammar of the Modern Aryan Languages", p. 38.
6. डा. कोमल चन्द्र जैन - '' पालि प्रवेशिका '', पृ० 11.
7. प्रो० नारायण चन्द पराशर - '' धम्मपद '', पृ० 234, 215.
8. वही, पृ० 220.
9. एम० आर० ठाकुर-''पहाड़ी भाषा: कुलुई के विशेष सन्दर्भ में'', पृ० 191.

10. भदन्त आनन्द कौसल्यायन- ''पालि-हिन्दी कोष'', पृ0 5.
11. Alferd C. Woolner- Introduction to Prakrit, अनु0 डॉ0 बनारसी दास जैन-''प्राकृत प्रवेशिका'', पृ0 28.
12. ''पहाड़ी भाषा : कुलुई के विशेष सन्दर्भ में'' - ले0 एम0 आर0 ठाकुर, पृ0 63-77.
13. डॉ0 रामविलास शर्मा - ''भाषा और समाज'', पृ0 158.
14. ''पालि प्रवेशिका''- डॉ0 कोमल चन्द्र जैन, पृ0 27.
15. इन्द्रचन्द्र शास्त्री - ''पालि भाषा और साहित्य'', पृ0 117.
16. वही, पृ0 119.
17. वही, पृ0 176.
18. John Beams, A Comparative Grammar of Modern Aryan Languages, pp. 2- 5.

हिन्दी और पहाड़ी भाषा : भाषा और बोली के संदर्भ में

डा. कृष्णकुमार गोस्वामी

प्राचीनकाल से हिन्दी भारत के अधिकांश भाग की संपर्क भाषा रही है, किन्तु यह किसी समुदाय-विशेष की मातृभाषा नहीं है । यह क्षेत्र-निरपेक्ष भाषा है । इसी कारण इसके तीन संदर्भ उभर कर आए हैं - 1. जनपदीय, 2. राष्ट्रीय और, 3. अंतर्राष्ट्रीय । जनपदीय संदर्भ में यह भाषा हिन्दी राज्यों की बोलियों के बीच संपर्क भाषा का कार्य करती है । इसके साथ ही इन्हीं राज्यों अर्थात् उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश और दिल्ली में राजभाषा की भूमिका भी निभाती है ।

ग्रियर्सन ने अपने सर्वेक्षण में हिन्दी भाषा का वर्गीकरण पांच उपभाषाओं के अंतर्गत किया-पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी, बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी । आधुनिक भाषाविज्ञान इस वर्गीकरण को काल्पनिक और भ्रामक मानता है क्योंकि इनमें एक क्षेत्र में बोली माने वाली बोलियों के समूह को उपभाषा कहा है जो एक-दूसरे में अधिव्याप्त (Overlapping) हैं । यहां हमारे अध्ययन-विषय पहाड़ी को ग्रियर्सन ने तीन वर्गों में विभाजित किया है - पूर्वी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी । यह ध्यान में रहे कि ग्रियर्सन ने आर्य परिवार की पहाड़ी भाषाओं को लिया है, तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषाओं को पहाड़ी के अन्तर्गत नहीं रखा। पूर्वी पहाड़ी के अन्तर्गत मुख्यत: नेपाली, मध्य पहाड़ी में मुख्य रूप से गढ़वाली और कुमायूनी आती हैं तथा पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत अधिकतर भाषाएं हिमाचल प्रदेश में बोली जाती हैं । हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली मुख्य बोलियां हैं - कांगड़ी, मंडियाली, चंबयाली, कुलवी, सिरमौरी, क्योंथली और बघाटी । इनकी भी अपनी-अपनी उपबोलियां हैं । इसमें विचित्र स्थिति यह है कि पश्चिमी पहाड़ी की जौनसारी उत्तर प्रदेश के देहरादून के पहाड़ी इलाके में बोली जाती है और लाहौल-स्पिति बोली तिब्बती परिवार की भाषा होते हुए भी हिमाचल प्रदेश में बोली जाती है । लाहौल-स्पिति और किन्नौरी को हिन्दी के संदर्भ में यदि

अलग किया जाए तो हिमाचल प्रदेश में बोली जाने वाली बोलियों को 'हिमाचली' कहना असमीचीन न होगा ।

भारत की सभी भाषाएं कश्मीर से कन्याकुमारी तक एक ही कड़ी में हैं और इनमें 'परस्पर सातत्य' है, टूटन नहीं । इसी प्रकार हर भाषा की बोलियों में यही स्थिति मिलती है । हिन्दी भाषा क्षेत्र में मैथिली से लेकर पहाड़ी भाषा तक की बोलियों में टूटन नहीं, सातत्य मिलता है । इन बोलियों में एक दूसरे के प्रति बोध गम्यता है जो उन्हें एक ही भाषा के अन्तर्गत लाने में सहायक है ।

इसी प्रकार पहाड़ी भाषा की बोलियों में संरचनात्मक समानता होने के कारण वे पहाड़ी भाषा के अन्तर्गत आ जाती हैं । दूसरे शब्दों में, स्थानीय बोलियों में परस्पर बोधगम्यता से क्षेत्रीय बोली का विकास होता है और क्षेत्रीय बोलियों में परस्पर बोध गम्यता होने से भाषा का स्वरूप उभर कर आता है । संरचनात्मक समानता के होते हुए ध्वनिपरक, तान-अनुतान, सुर, शब्दावली की भूमिका गौण रहती है । इस दृष्टि से पहाड़ी बोलियों में परस्पर बोधगम्यता मिलती है ।

अब प्रश्न उठता है कि पहाड़ी भाषा को हिन्दी की बोली माना जाए या नहीं। वास्तव में भाषाविज्ञान की दृष्टि से भाषा और बोली में कोई अन्तर नहीं माना जाता किन्तु समाज-भाषाविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में भाषा अधिरोपित (superposed) होती है और बोली अधीनस्थ (subordinate), क्योंकि भाषा का क्षेत्र व्यापक होता है और बोली का सीमित । भाषा में लिखित साहित्य और सर्जनात्मक साहित्य अधिक होता है जबकि बोली में वाचिक साहित्य और लोक साहित्य अधिक होता है । भाषा अपने क्षेत्र के बाहर भी प्रकार्यात्मक भूमिका निभाती है जबकि बोली से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती । किन्तु यह स्पष्ट है कि बोली की भी अपनी सामाजिक- सांस्कृतिक अस्मिता होती है चाहे वह सीमित रूप में क्यों न हो । इस दृष्टि से पहाड़ी अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता को पूर्णतया बनाए हुए है और अपने क्षेत्र में उसका अपना स्वरूप निखरा हुआ है ।

यह भी ध्यान रहे कि बोलियां भाषा के विकास में कारगर भूमिका निभाती हैं। हिन्दी का विकास हाने पर खड़ी बोली की बोलीगत विशेषताएं लुप्त हो गई हैं और यह रूप खड़ी बोली से उतना ही अलग जा पड़ा है जितना वह भोजपुरी, अवधी, ब्रज, पहाड़ी आदि बोलियों से । लेकिन हिन्दी के विकास और संवर्धन में इन बोलियों के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती । इसी सन्दर्भ में पहाड़ी का योगदान कम नहीं है । हिन्दी भाषी क्षेत्र में विभिन्न बोलियों के बोलने वाले यद्यपि हिन्दी को मातृ भाषा के रूप में स्वीकार नहीं करते किन्तु उसे मातृ भाषावत् का दर्जा तो देते हैं । अर्थात् वे उसे 'सहमातृभाषा' या 'प्रथम भाषा' के रूप में स्वीकार

करते हैं क्योंकि हिन्दी यहां स्कूली शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर पर लागू होती है और यहां की राजभाषा के रूप में प्रयुक्त होती है । इसीलिए राष्ट्रीय स्तर पर हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, हरियाणा आदि को हिन्दी भाषी प्रदेश कहा जाता है जबकि उनकी मातृभाषा हिमाचली, गढ़वाली, अवधी, ब्रज, हरियाणवी आदि भाषाएं हैं ।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि 19 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक पंजाबी को हिन्दी की बोली के रूप में सम्मिलित किया जाता था । सन् 1812 ई0 में टेलर ने फोर्ट विलियम कॉलिज की रिपोर्ट में पंजाबी को हिन्दी के अन्तर्गत रखा था । सन् 1853 में 'रायल एशियाटिक सोसायटी' की पत्रिका के जनवरी अंक में सर एस्किन पेरी ने भारतीय भाषाओं का विभाजन करते हुए सिंधी, पंजाबी और मुलतानी (लहंदा) को हिन्दी की बोलियों के रूप में स्वीकार किया और मैथिली को हिन्दी की बोलियों में न रखकर बंगाली की बोली माना । सन् 1867 में जॉन बीम्स ने भी पंजाबी को हिन्दी की बोली के रूप में स्वीकार किया किन्तु बाद में जार्ज ग्रियर्सन ने पंजाबी की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करते हुए उसे हिन्दी से भिन्न भाषा माना । इसके अतिरिक्त 1947 ई0 से पहले तक कुछ विद्वान नेपाली को भी हिन्दी की बोली मानते थे लेकिन बाद में नेपाली को हिन्दी से अलग कर दिया गया।

वास्तव में बोलियों की अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता होती है और अपनी-अपनी संरचना भी होती है । इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि पंजाबी, नेपाली जैसी भाषाओं में सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता का भाव अलग से उभरने लगा यद्यपि ये भाषाएं हिन्दी के काफ़ी निकट हैं । इसी प्रकार पहाड़ी भाषा का पंजाबी, डोगरी, राजस्थानी आदि भाषाओं से सामाजिक सांस्कृतिक और संरचनात्मक दृष्टि से निकट सम्बन्ध है लेकिन अपने क्षेत्र में पहाड़ी की अपनी भी सामाजिक- सांस्कृतिक अस्मिता है, इसीलिए वह इन भाषाओं से अपनी पृथक सत्ता बनाए हुए है ।

भाषा कभी-कभी अपनी अस्मिता किसी अन्य भाषा के साथ जोड़ देती है और वह उसकी बोली बन जाती है । मध्यकाल में ब्रजभाषा साहित्यिक सन्दर्भ में भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी और खड़ी बोली एक बोली के रूप में विद्यमान थी । किन्तु आज खड़ी बोली हिन्दी की आधारभूमि है और ब्रजभाषा हिन्दी की बोली के स्तर पर आ गई है। जब कोई बोली साहित्य की श्रेष्ठता और शासन के बल पर अपनी अलग अस्मिता बनाती है तो वह भाषा का पद प्राप्त करती है और वह बोली अपने क्षेत्र को पार कर अक्षेत्रीय तथा सार्वदेशिक हो जाती है । इसका प्रयोग क्षेत्र बढ़ जाता है और मानकीकरण की प्रक्रिया में उसमें आन्तरिक संसक्ति आने लगती है । इसी सन्दर्भ में पहाड़ी को, विशेषकर हिमाचली को, भाषा के स्तर पर आने से

पूर्व अपनी अलग अस्मिता को स्थापित करना होगा, हालांकि उसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता है । लेकिन हिमाचली के लिए यह महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि हिमाचली भी अपने-आप में विभिन्न सशक्त बोलियों का एक समूह है । इसलिए इसमें किसी एक बोली का चयन होगा जो जनपदीय स्तर पर अपना अस्तित्व बनाने के बाद ही मानकीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत आएगी और राष्ट्रीय स्तर पर न सही, प्रादेशिक स्तर पर उसे अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता बनानी होगी । हिन्दी के सन्दर्भ में अन्य भाषाओं की भांति उसका भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व हो पाएगा ।

सन् 1970 ई0 में हिमाचल प्रदेश विधान सभा ने प्रादेशिक भाषा एवम् संस्कृति के विकास की दृष्टि से हिमाचल कला, संस्कृति एवम् भाषा अकादमी की स्थापना से सम्बन्धित प्रस्ताव पारित किया था। पहाड़ी में एक सशक्त भाषा के सभी गुण विद्यमान हैं। इसका विशाल शब्द-भण्डार है, परम्परा है तथा विपुल साहित्य रचना का परिवेश है। इसमें साहित्यरचना की गति बढ़ी है और सभी साहित्यिक विधाओं में साहित्य प्रकाशित हो रहा है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि पहाड़ी भाषा का भविष्य उज्ज्वल है।

पहाड़ी भाषा की विलक्षणता : पंजाबी के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. नवरत्न कपूर

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश काल सन् 550 – 1200 ई0 के बीच माना है । सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक इस भाषा का विशेष प्राधान्य रहा । 'प्राकृत' का अर्थ विद्वानों ने 'स्वाभाविक भाषा' लिया है, किन्तु आम बोलने में अपभ्रंश को संस्कृत शब्दों का विकृत रूप मानने की प्रथा रही है, जो कि उचित नहीं है । वस्तुतः अपभ्रंश अपने विविध रूपों वाली जन–बोली ही है ।

भाषा वैज्ञानिकों ने पहाड़ी भाषा का विकास ''खश अपभ्रंश'' से माना है । पश्चिमी पहाड़ी पर दरद–पैशाची का प्रभाव भी अवश्य लक्षित होता है । यद्यपि आधुनिक हिमाचल प्रदेश की सीमाएं पंजाब और जम्मू–काश्मीर को स्पर्श करती हैं, फिर भी पहाड़ी भाषा का इन क्षेत्रीय बोलियों से पर्याप्त अन्तर है । वैसे भी डॉ. मैक्डॉनल पश्चिमी पंजाबी और काश्मीरी का विकास 'ब्राचड़ अपभ्रंश' से सिद्ध करके इस पार्थक्य की पुष्टि करते हैं ।

पहाड़ी और पंजाबी में साम्य–वैषम्य

(क) *साम्य* - स्थूल रूप में देखा जाए तो पहाड़ी भाषा और पंजाबी भाषा में ध्वनि–प्रयोग की दृष्टि से कहीं–कहीं समता दृष्टिगोचर होती है, यथा :

(i) 'न' के स्थान पर 'ण' हो जाना । जैसे ' धूनी ' के स्थान पर 'धूणी'; 'पहचानना' के स्थान पर 'पछाणना' (पंजाबी) और 'पहचाणणा' या पछ्याणना (पहाड़ी) ।

(ii) 'य' के स्थान पर 'ज' हो जाना । जैसे 'यज्ञ' के स्थान पर 'जग / जग्ग'; 'यमराज' के स्थान पर 'जमराज' ।

किन्तु इस प्रकार के अन्तर अपभ्रंश से प्रभावित 'हरियाणवी' और राजस्थानी में भी परिलक्षित होते हैं, फिर भी उनका निजी अस्तित्व है ।

(ख) *वैषम्य* – पहाड़ी की निजी प्रकृति (nature) के कारण उसकी स्वतन्त्र सत्ता मुख्यत: इन बातों पर आधारित है :

(i) पहाड़ी भाषा की सभी बोलियों में सघोष महाप्राण (घ, झ, ढ, ध, भ) मौलिक ध्वनियां हैं ।

(ii) नागरी लिपि की ऊष्म ध्वनियों में 'श' (तालव्य), 'ष' (मूर्धन्य) और 'स' (दंत्य) में से 'स' (दंत्य) ही अधिक प्रचलित है; जैसे ईसर (कांगड़ा)। किन्तु कहीं-कहीं 'श' भी मिलता है । यथा, ईशर (= ईश्वर);। 'ष' का तो लगभग लोप हो ही चुका है ।

(iii) पहाड़ी में विशेषण तथा क्रिया-विशेषण विभक्ति-परक हैं और प्रसंगानुसार विभक्ति-परिवर्तन भी होता रहता है ।

(iv) पहाड़ी के कारक चिन्ह पंजाबी से काफ़ी भिन्न हैं ।

(v) लिंग-परिवर्तन में भी पहाड़ी भाषा हिन्दी और पंजाबी से कई बार बिल्कुल भिन्न दिखाई पड़ती है । वचन-निर्माण में भी पहाड़ी के अपने नियम हैं ।

पंजाब और हिमाचल के संपर्क-सूत्र

अंग्रेज़ी शासनकाल से ही हिमाचल प्रदेश के कुछ पहाड़ी क्षेत्र पंजाब के राजाओं के अधिकार में रहे । कंडाघाट, चायल और धर्मपुर इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं, जो कि सन् 1948 में पंजाब की रियासतों के विलय और ''पेप्सू'' (Patiala & East Panjab States Union) नामक रियासती संघ के निर्माण तक पटियाला रियासत की प्रशासनिक इकाई (Administrative Unit) थे । ''पेप्सू'' बनने पर नालागढ़ नामक रियासत भी पटियाला समेत अन्य सात रियासतों के साथ सम्मिलित कर ली गई । नालागढ़ के पुराने राजाओं के साथ पटियाला के राजाओं और विशेषत: पैप्सू के पहले राज प्रमुख एवं पटियाला के भूतपूर्व महाराजा यादवेन्द्र सिंह से समधियाना संबंध भी स्थापित हो गया ।

महाराजा यादवेन्द्र सिंह के पिता महाराजा भूपेन्द्र सिंह थे । भूपेन्द्र सिंह के राज्य काल में पटियाला रियासत और विशेषत: इसकी राजधानी पटियाला शहर में शाक्त-मत का विशेष प्रचार हुआ । पटियाला की माल रोड पर काली देवी मन्दिर, चांडी देवी मन्दिर और राज राजेश्वरी मन्दिरों का निर्माण उन्हीं दिनों हुआ था । पटियाला के त्रिवेणी चौक में निर्मित नैना देवी मन्दिर भी लगभग उसी समय का है ।

इतना ही नहीं, श्राद्ध-पक्ष के उपरान्त आश्विन के शारदीय नवरात्रों में ''सांझी -पूजन'' का लोकपर्व अधिकांश घरों में मनाया जाता है । बालक-बालिकाओं के द्वारा एक-साथ मिल कर चिकनी मिट्टी से 'सांझी माई' के दरबार की सामग्री तैयार करने और पूरे आठ दिन तक सुबह-शाम उसकी आरती उतारते समय मधुर लोक-गीत-गान उनकी दुर्गा-माता के प्रति सच्ची श्रद्धा की अभिव्यक्ति करता है।

माता चिंतपुर्णी, माता नैना देवी की यात्राएं तो लगभग हर महीने ही बहुत-से लोग नियमित रूप से करते हैं । ''देवी के चाले'' (= यात्रा) के नाम से बसें भर कर कुछ व्यावसायिक एवं समाज-सेवी संस्थाएं भी विशेष अवसरों पर पंजाबी श्रद्धालुओं को श्री ज्वाला जी तथा अन्य पवित्र देवी-धामों के दर्शन के लिए हिमाचल प्रदेश में पर्यटन हेतु ले जाती हैं । ''पुन्न दा पुन्न फलीआं दीआं फलीआं'' कहावत के अनुसार दुर्गा-भक्त अपनी मनौतियां भी पूरी कर आते हैं और साथ ही पर्वतीय स्थलों की हवा-खोरी का आनन्द भी लूट आते हैं । इस प्रकार पंजाब और हिमाचल प्रदेश की जनता में भाषा की दृष्टि से आदान-प्रदान का सिलसिला निरन्तर चलता आ रहा है ।

सौर वर्ष के लोकपर्व

पंजाब कृषि प्रधान प्रदेश है । पंजाब निवासी सभी हिन्दु और सिक्ख अपने समस्त त्यौहार चैत से फाल्गुन की बारामासी वाले चान्द्र वर्ष (Lunar) की तिथियों के अनुसार मनाते हैं । किन्तु ''लोहड़ी'' और ''वैशाखी'' दो ऐसे लोकपर्व हैं, जिन्हें सौर वर्ष (Solar Year) के अनुसार मनाने की प्रथा है । ''लोहड़ी'' का लोकपर्व अधिकतर 13 जनवरी को तथा ''वैशाखी'' का 13 अप्रैल को होता है। कभी-कभार साल का एक दिन घट-बढ़ जाने के कारण यह तिथि 12 जनवरी और 12 अप्रैल अथवा क्रमशः 14 जनवरी एवं 14 अप्रैल भी हो जाती है ।

(क) *वैशाखी* - ''वैशाखी'' पर पंजाबी लोग गुरुद्वारों के सरोवरों में स्नान करके श्रद्धानुसार दान-दक्षिणा देते हैं । गेहूं की बल्लियों को दानों से भरा देखकर किसान झूम उठता है और अपनी प्रसन्नता की अभिव्यंजना 'भांगड़ा' नृत्य के द्वारा करता है । पंजाब में उस दिन कोई विशेष पकवान तैयार करने की प्रथा नहीं है । पुआधी, मलवई, माझी, पोठोहारी आदि पंजाब की सभी बोलियों में ''वैशाखी'' का एक मात्र यही नाम सर्व-प्रचलित है ।

इसके विपरीत हिमाचल प्रदेश में ''वैशाखी'' नाम भी कई जगह चलता है । किन्तु मंडी ज़िले तथा अन्य कुछ ज़िलों में इसके स्थान पर 'बरसोआ' अथवा

बसोआ शब्द का प्रयोग भी होता है । इस पर्व ने पहाड़ी भाषा को कुछ नए शब्द भी प्रदान किए हैं, यथा :

(क) बरशोहा [कुल्लू] - देवता द्वारा वर्ष में एक बार, प्राय: वैशाख में बताया वर्ष भर का वृतांत । [पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश, पृ. 377]

(ख) पिंदड़ी - वैशाखी के पर्व पर बनाई जाने वाली कोदों के आटे की टिकियां, जिन्हें पत्तों में तीन-चार दिनों तक रखा जाता है और वैशाखी के दिन गुड़ या शहद के साथ खाया जाता है । [वही, पृ. 431]

(ग) लाहौल [मंडी] - वैशाखी का मेला । [वही, पृ. 459]

पंजाब में इस प्रकार के अनुष्ठान नहीं होते । अत: ये शब्द पहाड़ी की निजी संपदा हैं । ''वैशाखी'' का मेला तो पंजाब के धार्मिक स्थानों पर लगता है, किन्तु ''लाहौल'' की तरह का कोई अलग नाम पंजाबी की बोलियों में नहीं मिलता ।

(ख) *लोहड़ी* - सौर वर्ष के पौष मास की अन्तिम तिथि को रात्रि में अग्नि जलाकर 'लोहड़ी' का लोकपर्व उत्तर भारत में मनाया जाता है । पंजाब में इसकी विशेष महिमा मानी जाती है । वस्तुत: यह पतझड़ और सर्दी के अन्त एवं वसंत ऋतु के आगमन का सूचक है । बच्चे दस-बारह दिनों तक गली मुहल्लों में 'लोहड़ी' जलाने के लिए लकड़ी और उपलों की गुहार करते हैं । बालक एवं बालिकाओं के लोकगीतों में भिन्नता परिलक्षित होती है । लड़कों के कथा-परक लोकगीतों में चुहलबाज़ी अधिक होती है, जबकि लड़कियों के लोकगीतों में दैन्य, विनम्रता एवं दानी-परिवार के प्रति शुभ-कामनाओं की भरमार रहती है ।

''लोहड़ी'' के पहाड़ी लोकगीतों में पंजाब की तरह 'दुल्ला भट्टी' पात्र तो एक-जैसा है । किन्तु गायक बालकों की बोली पर पहाड़ी की स्पष्ट छाप झलकती है । कुल्लू क्षेत्र में लोहड़ी का त्यौहार सात दिन मनाया जाता है और इस अवसर पर कुछ अश्लील गीत भी गाए जाते हैं । इन लोकगीतों को 'जीह्‌रू' कहा जाता है, जो पहाड़ी क्षेत्र की विलक्षणता है ।

हिमाचल प्रदेश का एक लोक नृत्य है : 'हरनात्र', जिसकी व्युत्पत्ति 'हिरण + नृत्य' में ढूंढी जाती है । इसी नृत्य ने ''लोहड़ी'' पर्व को एक लोकगीत और बच्चों का खेल भी प्रदान किया है । गुरदासपुर ज़िले तक ही खेलनुमा यह लोकगीत सीमित है । पंजाब के गुरदासपुर जिले के हरदोशनी का त्रवां और नरोट जेमलसिंह गांवों में इस प्रकार के लोकगीत सुने गए हैं :

(क) हुंडु हुंडु प्हाड़िआ,
हुंडु मारी टक्कर दी
दे पड़ोपी शक्कर दी ।

(ख) इसमें टोली के नायक लड़के के कथन में अन्य बालक अपनी बात जोड़कर संवादात्मक लोकगीत बनाते देखे गए, यथा :

एक लड़का	अन्य साथी
हिरन मारी टक्कर दी	दे पड़ोपी छक्कर दी ।
सावा हिरन सावा	भन्न सुट्ट पावा ।
सदके हिरन सदके	भन्न सुट्ट तखते ।
इल्लण भपीलणॉ	पंज दा नोट ले के हिल्लणा ।

टोली के नायक के पैर में रस्सी बांधी गई थी और माथे पर बंधी कपड़े की पट्टी में लकड़ी के दो टुकड़े दाईं-बाईं ओर खोंसकर उसे बारहसिंगे के रूप में सजाया गया था । वह हरेक घर के द्वार पर जाकर नकली सींग मारकर भिक्षा देने की हुंकार करता है, जिसकी छंद-पूर्ति रस्सी पकड़े हुए बालक करते रहते हैं । पहले लोकगीत में ''हुंडु'' (Hound) को पहाड़ का निवासी (= प्हाड़िआ) स्पष्ट रूप में कहा ही गया है । यही बात पंजाबी लोकगीत को पहाड़ी क्षेत्र की देन का स्पष्ट प्रमाण है ।

पशुओं का दूध

पंजाब की तरह पहाड़ी क्षेत्र में भी पशुओं की बहुतायत रहती है । मैदानी क्षेत्र में गाय-भैंसें अधिक होती हैं, जबकि हिमाचल प्रदेश में भेड़-बकरियों की बहुलता के कारण उन्हीं के दूध का उपयोग बहुधा होता है । पंजाब में पशु के प्रसव को 'जनना' या 'सूना' (पुआधी बोली) कहते हैं । पहाड़ी में 'जमणा' शब्द इन्हीं का पर्याय है । पंजाब में यही 'जम्मणा' बन जाता है । किन्तु 'जमणा', 'जम्मणा' और 'जनना' का सीधा संबंध संस्कृत के ''जन्म'' शब्द से है; जबकि 'सूना' शब्द पंजाब की पुआधी बोली की निजी विशेषता है । पहाड़ी भाषा में 'ण' एवं 'न' अक्षर युक्त इस शब्द के पुआधी से भिन्न अर्थ हैं ; यथा :

(i) सूणा (चम्बा) - पानी रखने के लिए लकड़ी से बना पात्र, जिसमें पट्टू आदि भी धोए जाते हैं । (पहाड़ी-हिन्दी शब्द कोश, पृ. 499) । बिलासपुरी (कहलूरी) में 'सूणा' शब्द भैंस आदि पशुओं के बच्चा होने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार 'सूणा' का अर्थ 'बच्चा देना' होता है । यह 'सूह्णा' भी है ।

(ii) सूणा- [अक्रर्मक (चम्बा)] सोना । (वहीं, पृ. 499) ।

(iii) सूणा- [सक्रर्मक क्रिया] झाड़ू लगाना । (वही, पृ. 499) ।

(iv) सूना- [विशेषण] सुनसान । (वही, पृ. 499) ।
(v) सूना- (कुल्लू) स्वर्ण, सोना धातु । (वही, पृ. 499) ।
(vi) सूना- (कुल्लू) चुम्बन । (वही, पृ. 499) ।

दुधारू पशुओं के ब्याने के बाद दूध के कई नाम पहाड़ी एवं पंजाबी भाषाओं में मिलते हैं । ये क्रमानुसार इस प्रकार हैं :

(i) ''खीस''- नए दुधारू पशु का पहला दूध (प. हि. श., पृ. 87) यह शब्द इसी रूप में पुआधी (पंजाबी) में विद्यमान है । किन्तु पहाड़ी में 'खीस' का एक और अर्थ भी उपलब्ध है - ''लकड़ी पर निशान लगाने का उपकरण''। शिमला जिले में इसका ध्वनि परिवर्तन होने से यह 'खीश' बन गया है, फिर भी इसमें अर्थ वही है । शिमला ज़िले ने पहाड़ी के 'खीस' शब्द को एक पर्याय भी प्रदान किया है । वह है, ''पिउशी'', जिसका प्रयोग विशेष रूप से गाय के ब्याने के समय के दूध के लिए होता है । पंजाब के पुआधी-बोली के क्षेत्र में पहला दूध गाय को ही पिला दिया जाता है और दूसरी बार के दूध को ''खीस'' कहा जाता है ।

(ii) बौहल़ी - यह पुआधी बोली का शब्द है । इसकी व्युत्पत्ति 'बाहुल्य' (= अधिकता) से प्रतीत होता है । यह गाय या भैंस के ब्याने के बाद से तीसरी या चौथी बार का दूध होता है । यह 'खीस' की तरह पकाने पर कठोर तो नहीं होता, बल्कि इसमें कुछ अंश तरल-सा भी विद्यमान रहता है । पहाड़ी भाषी ऊना, कांगड़ा, बिलासपुर एवं हमीरपुर में भी यह शब्द उपलब्ध होता है । अतः 'पुआधी' के अतिरिक्त अन्य पंजाबी बोलियों के क्षेत्र में यह शब्द नहीं है । 'बौहल़ी' शब्द 'पहाड़ी' भाषा से गृहीत होने का संकेत करता है । सिरमौर ज़िले में 'बौहल़ी' शब्द का अर्थ-विस्तार हो जाने से यह 'घी की तलछट में बचे पदार्थ' का बोधक बन गया है । 'बौहल़ी' आस-पड़ोस में वितरित की जाती है, मानों 'ब्याउली' (ब्याए हुए मादा पशु की ओर से) एक भेंट हो ।

(iii) छेरड़ा - यह पहाड़ी भाषा का शब्द है । इसका प्रयोग बिलासपुर ज़िले में होता है और इसका अर्थ है-'गाय-भैंस के ब्याने के छः दिन बाद तक का दूध ।' पुआधी में यह शब्द ''छेड़ा'' बन गया है, जिसमें 'छेरड़ा' का 'र' अगले अक्षर 'ड़' में लुप्त हो गया है । वस्तुतः आग पर औटाने से यह फटे हुए दूध की तरह हो जाता है । किन्तु फटे हुए दूध की भांति इसमें खटास नहीं आती है और स्वाभाविक मिठास बनी रहती है । 'कांगड़ा' ज़िले में ''फटे हुए दूध'' को ही 'छेरड़ा' कहते हैं । अतः दोनों माध्यमों से यह पंजाबी भाषा तक पहुंचा हुआ नज़र आता है ।

(iv) थेई - उस दूध या दूध से बनी खीर को कहते हैं, जो किसी निश्चित दिन पर परिवार के किसी स्वर्गीय पूर्वज के नाम पर रखा जाता है । गाय अथवा भैंस के बच्चे को थोड़ा-बहुत दूध पिलाने के बाद शेष हुआ दूध न तो परिवार में पीने के काम में लाया जाता है और न ही दही के रूप में जमाया तथा बिलोया जाता है । ऐसा दूध 'खीर' अथवा परिवार की रुचि के अनुसार मीठा पदार्थ बनाने एवं परिजनों में बांटने के लिए ही होता है ।

'थेई' शब्द पंजाब में, विशेषत: पुआधी-क्षेत्र में प्रचलित है । इसकी व्युत्पत्ति ''स्थायी'' (परिवार के बुज़ुर्ग की स्मृति की निश्चित तिथि) शब्द से आभासित होती है । पहाड़ी भाषा में ''थेईया'' शब्द मिलता है, जो संस्कृत के 'स्थायी' शब्द से ही व्युत्पन्न है । किन्तु उच्चारण की दृष्टि से यह 'थेई' से भिन्न और अर्थ की दृष्टि से संकुचित हो गया है, यथा :

थेईयां - (स्त्री.) नाग पंचमी से पहले के कुछ दिन, जब दूध, दही और अरबी के पत्ते बाहर नहीं निकालते और न ही इनका प्रयोग करते हैं । (पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 269)

पंजाब में 'थेई' का दिन कुछ परिवारों में हर सप्ताह कम से कम एक बार, अन्यथा महीने में एक बार अवश्य होता है ।

बच्चों के खेल

बाल-क्रीड़ाएं सभी जगह लगभग एक-जैसी होती हैं, किन्तु उनके नामों में कई बार क्षेत्रीय-छाप भी परिलक्षित होती हैं । पुआधी भाषी क्षेत्र में बालिकाएं जली हुई लकड़ी के कोयले से फ़र्श पर एक चौकोर आकृति बना लेती हैं और उसे बीच में एक सीधी रेखा खींचकर दोनों ओर आमने-सामने बराबर आकार के पांच-सात खानों में बांट लिया जाता है । खानों में कूदने वाले इस खेल को 'पीचो' कहा जाता रहा है । पटियाला के महाराजा क्रिकेट के शौक़ीन थे । क्रिकेट के ''धावक क्षेत्र'' (Pitch) के अंग्रेज़ी शब्द 'पिच' से ही यह 'पीचो' शब्द व्युत्पन्न हुआ प्रतीत होता है ।

किन्तु कुछ वर्षों से 'सटापू' शब्द का प्रयोग भी इसके लिए होने लगा है । यह हिमाचल प्रदेश के कई ज़िलों में एक-समान प्रचलित है, जिसका अर्थ है : 'बच्चों द्वारा ज़मीन पर चौरस खानों में पत्थर की चिप्पी फैंक कर खेला जाने वाला खेल।' (पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश, पृष्ठ 483) । कुल्लू ज़िले में इसके लिए 'बिल्ली' शब्द का प्रचलन है । 'सटापू' शब्द अंग्रेज़ी Stap से व्युत्पन्न प्रतीत होता है ।

कुल्लू ज़िले में भाग-दौड़ कर एक दूसरे को छूने वाले 'छुआ-दुआई' के खेल का नाम ''थीपी'' है । पुआधी क्षेत्र में 'छून-छलाई' अथवा ''छून-छलीका'' इसी को कहते हैं ।

शब्दों की गीतशीलता में सहायक यातायात के साधन

एक स्थान से दूसरे स्थान पर, विशेषत: दूरस्थ स्थानों पर सामान पहुंचाने और वहां से लाने के लिए ट्रकों का प्रयोग होता है । राजस्थान में जयपुर और अजमेर के बीच एक टेक्सी में यात्रा करते हुए मैंने मार्ग पर एक ट्रक पर गुरुमुखी अक्षरों में लिखा हुआ यह पद पढ़ा :

बुरी नज़र वाले, तेरे उड्ड जाण तित्तर ।
घरों पैण जुत्तिआं, बाहरों पैण छित्तर ।।

ट्रक पर मालिक के नाम से पता चला कि वह वाहन लुधियाना के किसी व्यक्ति का था । राजस्थान के बहुत-से मोची अब पटियाला में बस गए हैं । वे तिल्ले की कशीदाकारी वाली और चमड़े की सादी जूतियां बनाते हैं । इस लिए पटियाला की 'जुत्ती' (जूती) अब विश्व विख्यात हो गई है । ट्रक के पीछे लिखी तुकों में ''जुत्तिआं'' शब्द इसी 'जुत्ती' के बहुवचन रूप का ज्ञान करवाता था ।

पंजाब कोशों में 'छित्तर' शब्द का अर्थ ढूंढा तो व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या एक प्रामाणिक शब्द-कोश में इस प्रकार मिली :

छित्तर - (संज्ञा) स0 क्षिति + त्र = ज़मीन पर बिखरे हुए कंकड़ों, कांटों आदि से पैरों को बचाने वाला जोड़ा/जुत्ती; 2. एड़ी रहित जूता । (भाई काह्न सिंह: महान कोश, पृष्ठ 302)

किन्तु पंजाबी अर्थ की अपेक्षा इस शब्द का पहाड़ी अर्थ अधिक उपयुक्त जंचा, यथा :

छित्तर - पु0 घटिया प्रकार का या टूटा हुआ जूता (पहाड़ी-हिन्दी शब्द-कोश, पृष्ठ 166)

छितरियां – स्त्री. (कांगड़ा, बिलासपुर, मंडी) - महिलाओं के जूते (वही, पृष्ठ 166) हिन्दी में 'छितरौल करना' मुहावरा भी मैंने उत्तर प्रदेश में कई जगह सुना है, जिसका अर्थ है 'खूब पिटाई करना' । कोई भी समझदार व्यक्ति दूसरों को मार-पीट कर अपना जूता तोड़ना नहीं चाहेगा । उचित यही होगा कि फटे हुए और टूटे जूते का उपयोग करे । पंजाब के पुआधी क्षेत्र में 'छितरौल करना' का

पर्यायवाची मुहावरा है 'खोसड़े मारना' ।

'खोसड़ा' अथवा 'खोशड़ा' शब्द कुल्लवी-बोली में प्रचलित है, जिसका अर्थ है-'फटा-पुराना जूता' (पहाड़ी-हिन्दी शब्द-कोश, पृष्ठ 94) संस्कृत में ''जूते'' के लिए शब्द है ''पद-त्राण'' (= पैरों का रक्षक) । ''क्षप त्राण'' (= टूटा हुआ जूता) में ही इसका निकास (Derivation) ढूंढा जा सकता है । पत्थरों पर चलने से खोखला और पानी-मिट्टी में 'सड़ने' (गलने) से 'खो. सड़ा' (= खोसड़ा) मुख-सुख के कारण बना हुआ शब्द है ।

आनुष्ठानिक शब्दावली, पेड़-पौधों की नामावलि और बहुलार्थक शब्दों की बहार पहाड़ी भाषा में खूब मिलती है । किन्तु एक ही शब्द के सामान्य प्रयोग में उसकी जो मूल आत्मा रहती है, दूसरी भाषा में उसमें अन्य रंग भर जाता है । ऐसा एक शब्द है :

(क) 'डोके' - भैंस या गाय के दो बार गाभिन होने की स्थिति में थन से रुक-रुक कर आने वाला दूध ।

(ख) 'डोके' - दूध दूहने के बाद थन में बचा हुआ दूध । (पहाड़ी-हिन्दी शब्द-कोश, पृष्ठ 238)

पहला ('क' अंकित) शब्दार्थ ऊना, कांगड़ा और हमीरपुर की पहाड़ी में उपलब्ध होता है और दूसरा ('ख' अंकित) केवल सिरमौर ज़िले में । पंजाब के पुआधी क्षेत्र में 'डोके लेना' बोल-कुबोल (Slang) भरपूर मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है 'समय से चूकने पर निरर्थक प्रयास करना' ।

भाग तीन

भाषा - वैज्ञानिक अध्ययन

पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में आर्ष शब्द : एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. हुकमचन्द्र पट्याल

इस शोधपत्र में पश्चिमी पहाड़ी बोलियों (प. प.) के कुछ आर्ष और विरल शब्दों की चर्चा की गई है । ये प. प. बोलियां इन आर्ष शब्दों को सुरक्षित रखने में काफी समृद्ध हैं। इनमें से कुछ प्रविष्टियां सर राल्फ टर्नर के CDIAL में एक प्रकार के उपयोगी परिशिष्ट का काम करती हैं ।

इस शोध पत्र में कुछ प. प. बोलियों में पाए जाने वाले आर्ष और विरल शब्दों पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है । इनमें से कुछ प्रविष्टियां सर राल्फ टर्नर की महान् कृति ' ए कंपेरेटिव डिक्शनरी ऑफ़ दि इंडो-आर्यन लेंग्वेजिज़ ' का एक प्रकार का उपयोगी परिशिष्ट होंगी, क्योंकि इस कृति में कई बोलियों का पर्याप्त प्रयोग नहीं हुआ है ।

प. प. बोलियां लगभग 62 हैं और वे मुख्यत: हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश के निकटवर्ती ज़िलों, भारत के हिमालयी ज़िलों तथा पाकिस्तान अधिकृत जम्मू-कश्मीर में बोली जाती हैं । तथाकथित पहाड़ी भाषाएं भारत - आर्य भाषाओं का महत्वपूर्ण वर्ग हैं और इन्हें तीन मुख्य भागों में बांटा जाता है । जैसे-पूर्वी पहाड़ी (मुख्यत: नेपाली), मध्यवर्ती पहाड़ी (मुख्यत: कुमायूंनी और गढ़वाली बोलियां) और पश्चिमी पहाड़ी । पश्चिमी पहाड़ी की मुख्य बोलियां - जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, क्योंथली, हिंडूरी, सिराजी, बुशहरी, सोदोची (कोटगढ़ी और कोची बोलियों / उपबोलियों के साथ), कुलुई, मंडियाली, सुकेती, चम्बयाली, भरमौरी, चुराही, पंगवाली, भद्रवाही, भलेसी, पधरी आदि हैं । इस शोध पत्र के लिए मैंने कांगड़ी और बिलासपुरी से आधार-सामग्री ली है । आजकल डोगरी और कांगड़ी को प. प. बोलियों की निकटस्थ बोलियां माना जाता है । (मसीका 1991:19-20 देखें) इस शोध पत्र में प. प. शब्दों की एक प्रकार की तुलनात्मक व्युत्पत्ति का अध्ययन किया जाएगा । इसमें जिन शब्दों की चर्चा की गई है वे CDIAL में उपलब्ध नहीं हैं । कभी-कभी हमने शब्द की जो नई प्रविष्टि दी है, या तो उसे प्राचीन इंडिक में सत्यापित किया गया है या उसकी सामान्य पुनर्रचना की गई है ।

II

1. *अग्निधान्य:* विशेषण (अग्निपात्र के लिए अनुकूल) CDIAL (परिशिष्ट 60 क)

अग्निधान : संज्ञा (पवित्र अग्नि के लिए पात्र) (RV 10.165.3 आदि) मंडियाली, कुलुई, सिरमौरी, बिलासपुरी, चम्बयाली सभी में *घ्याना* मिलता है (कोटगढ़ी और कोची में *गैन्न* है)(*< अग्निधान्य देखें टर्नर 1979:359) डोगरी में *ग्याना*, कांगड़ी कियाना (क्यान) है । इन अधिकांश बोलियों में इसका अर्थ बड़ी अग्नि ज्वाला (उसके चारों और बैठने के लिए) है । इन सभी बोलियों में भारी अक्षर से पहले मूल अ– का लोप हो गया है। *अग्निधान* (या * अग्निधान्य) > *अग्गीधान* > *गिधान* > *घियान* (महाप्राणीकरण) > *घियाना* (CDIAL परिशिष्ट 60 या 60 क); पट्याल 1984:123–4, प्रविष्टि सं. 100 देखें ।

2. अपवरक पु. ' आंतरिक ' (CDIAL 450)
पालि ओवरक (< * *अववरक*), प्राकृत *ओअरय;* उड़िया स्त्री. 'छोटा कमरा '
मंडियाली *ओब्रा* पु. 'कमरा ' (लघुवाचक रूप ओब्रू 'छोटा कमरा');
कांगड़ी *ओब्री* स्त्री. 'सामान रखने के लिए भीतरी कमरा';
बिलासपुरी *ओब्रा* 'खाद्यान्न आदि रखने के लिए भीतरी कमरा'; किंतु
सिरमौरी *ओब्रा* 'गऊशाला', कोटगढ़ी *ओब्री* स्त्री. 'छोटी पशुशाला';
कोची *ओब्रो* पु. 'घर की सब से निचली मंजिल'; (पशुशाला के रूप में प्रयुक्त)
देखें पट्याल 1984 : 121 . प्रविष्टि 77.

3. * *अविवाट* पु. 'भेड़–कलम' (CDIAL 896)
मंडियाली ओड़ (तर्यक *ओड़ि*) स्त्री. कांगड़ी (हमीरपुर ज़िला) ओड़ि * ***अविवाट*** > * *ओइवाट* > * *ओइवाड* > * *ओआड* > * *ओडा* > *ओड़* से हम शब्द व्युत्पन्न कर सकते हैं । CDIAL में केवल *अइवारा* मिलता है ।

4. *आरयिका* (या ओयका) स्त्री. 'भद्र महिला' (CDIAL 1351) प्राकृत अज्जिआ 'दादी';

मंडियाली (पहाड़ी) इज्ज् स्त्री. 'मां' (तिर्यक ओज्जे) (यह शब्द मानक मंडियाली में प्रस्तुत नहीं होता । CDIAL 1351 (परिशिष्ट) में प. प. कवि इजे स्त्री. 'मां', जोशी (प. प. कोश) *इजि*) पंगवाली इज्जी, पाडरी इज् मिलता है किन्तु भद्रावाही *हाज* । देखें पट्याल 1982:289–90, प्रविष्टि 2.

5. *अइषामह* क्रि. वि. 'इस वर्ष (के दौरान)' (CDIAL 2537 Sat Br. 3.3.4.11) मंडियाली *ऐसुं* क्रि. वि. इस वर्ष (के दौरान), कोची *अश्शु । ऐशु* गढ़वाली ऐंसु (देखें CDIAL परिशिष्ट) । ये सभी नव भारत – आर्य रूप अइषामह से व्युत्पन्न हुए हैं (Sat Br. 3.3.4.11, पृष्ठ 3.22) मंडियाली में विशेषणपरक रूप *ऐस्का* है (स्त्री. – ई) या *ऐस्क* (आ) *णा* (स्त्री. – इ) 'इस वर्ष से संबद्ध' । देखें पट्याल 1983:41, प्रविष्टि 28.

6. *करमीण* (CDIAL 2902)
संस्कृत में *करमीणा* समस्त शब्द के दूसरे सदस्य के रूप में घटित होता है (देखें पृ. 5.2.7; 5.4.7) ; ये दोनों सूत्र गौण प्रत्यय – खा (– इन) के प्रयोग के बारे में बताते हैं । मंडियाली, कांगड़ी, सिरमौरी, कुलुई, भटेयाली सभी में *कमीण* [(निम्नजाति) कर्मकार व्यवसाय जैसे कि बढ़ई, लुहार,मोची आदि), होते हैं । हरियाणवी में भी *कमीण* (कर्मकार मज़दूर जैसे सफ़ाई कर्मचारी, मोची आदि)] होते हैं । देखें पट्याल 1984:122, प्रविष्टि 84 .

7. *कल्याहार* पु. (किन्तु CDIAL 3106 क **काल्याहार*) 'दोपहर का भोजन' मंडियाली *कलवर* स्त्री. (ति. कलवारि); कुलुई *कलार* 'दिन का भोजन' कु. कल्यो 'नाश्ता' । कोटगढ़ी *कलारि* स्त्री. 'लघु नाश्ता', कोची *कलार* 'दोपहर का भोजन', *कलैर* भी । देखें पट्याल 1984. 122, प्रविष्टि 87; हेंड्रिक्सन 1976 : I. 29)

8. *कांत* पु. 'पति' (CDIAL 3029)
मंडियाली *कंत* पु. 'पति', प्रेमी (अधिकांशत: लोकगीतों में)' डोगरी में (लोकगीतों और लोक कथाओं में) *कंत* होता है । *कैंत* (गौरी शंकर 1931:107 – 8 अनुभाग 9). देखें पट्याल 1983:41 प्रवि. 29 ।

9. *गव्याय* वि. 'गाय या पशु से सम्बद्ध या आने वाले'
मंडियाली में आर्ष शब्द *गायब* (~ गैब) विशेषण (गाय उत्पाद) (जैसे घर, दू, दही) प्रयुक्त होता है । यह शब्द बड़ा रोचक है। सम्भवत: यह *गव्य, गाव्य* अथवा *गावीय* से व्युत्पन्न नहीं हो सकता । इसे हम ***गव्याय*** (स्त्री. – ई) से व्युत्पन्न कर सकते हैं (RV. 9.70.7; 10.48-4) व्युत्पत्ति की प्रक्रिया इस प्रकार होगी गव्याय > * गव्वय > * गब्बय > * गाबय > गायब (विपर्यय द्वारा) अन्य प. प. बोलियों में इस शब्द के अस्तित्व के बारे में मुझे कोई ज्ञान नहीं है । देखें पट्याल 1982:290, पृ0. 6

10. *जनि-वास* पु. ' संतति निवास'

मंडियाल *जणवास* स्त्री. 'पत्नी' (सामान्यतः तिरस्कार के रूप में प्रयुक्त) को अर्थ की दृष्टि से* *जन्य-वास* 'बारात को ठहराना' से व्युत्पन्न करना असंभव है (CDIAL 5119) हि. जनवास -वासा, -ओवॉसा 'बारात का स्वागत करने का स्थान'। सभी संभावनाओं में शब्द जणवास < * जनि-वास है । कांगड़ी और बिलासपुरी में ***'जुणास'*** हैं । देखें पट्याल 1982:291, प्रविष्टि 9.

11. निमान सं. 'मापदंड' (देखें CDIAL 7239)

पृष्ठ 5.2.47 में इस शब्द का उल्लेख है : *संख्याया गुणस्य निमाने मयट* । मंडियाली *न्वाण* पु. 'मापदंड' (विशेषकर जूता बनाने के लिए पैर का) बिलासपुरी में *न्वाओ़* है किन्तु अब यह पूर्णतया अप्रचलित हो गया है । कांगड़ी (हमीरपुर ज़िला) में *पताण* पु. < पदमान 'पद मापदंड' । देखें पट्याल 1984:127, प्रविष्टि 139.

12. *परूत* क्रि. वि. गत् वर्ष (CDIAL 7909, देखें पृ. 5.3.22)

मंडियाली, कांगड़ी और डोगरी में *परू* 'गत् वर्ष' है (डोगरी में परू भी) कोटगढ़ी में *पौर* । मंडियाली में हमें *परका* (स्त्री. < ई) । *परक (णा)* (स्त्री. ई) 'गत वर्ष से सम्बन्धित' विशेष रूप मिलते हैं । देखें पट्याल 1983. 45, प्रविष्टि 54.

13. *प्रकाश* पु. (CDIAL 8347)

मंडियाली में प्रयासा पु. 'प्रकाश, चमक' प्रयुक्त होता है । कोटगढ़ी ***'प्रैस्सौ'***, कोची *प्रसो, पयसा* (CDIAL 8437, परिशिष्ट से लिया गया) मंडियाली में मूल - क का लोप हो जाता है और-य- श्रुति का आगम हो जाता है । यह प्रवृत्ति आधुनिक भारतीय - आर्य भाषाओं में सामान्यतः पाई जाती है। कुछ प. प. बोलियों में स्पर्श सहित गुच्छ. र सुरक्षित रह जाते हैं । उदाहरण के लिए, मंडियाली प्राण < *प्राण ; प्रौल़* < *प्रतोली ; ग्राओं* < *ग्राम* ; इसी प्रकार कोटगढ़ी *प्रैस्स* < प्रकाश । देखें पट्याल 1982:292 प्रविष्टि 16.

14. *मित्रत्व* पु. (CDIAL 10126)

CDIAL में केवल मेत्रुथ मिलता है । मंडियाली में *मित्रत* (~ *मत्रत*) और *मित्रप* (~ *मत्रप*) जैसे रोचक रूप हैं । पहला रूप समीकरण के सामान्य नियमों से व्युत्पन्न होते हैं : ****मित्रत्व**** *मित्रत्ता* > *मित्रत* (या *मत्रत*). - त्व > - प्प -यद्यपि कुछ-कुछ है किन्तु आधुनिक भारत-आर्य और नव भारत-आर्य बोलियों में इनका पूर्णतया अभाव नहीं है । आधुनिक भारत-आर्य बोलियों के

कुछ उदाहरण दिए जाते है : *गत्वी* > प्रा0 *गंप्पी* ; अवहट्ठ *लेप्पिणु* < * लयत्विन (नारा 1979:59); बड्डप्पणु < वर्धत्वनम(सुमद्रकुमार सेन 1973:177; इस प्रकार के और उदाहरणों के लिए सुकुमार सेन 1960:41, अन्नु. 44 (ग) देखा जा सकता है) कुछ नवभारतीय- आर्य उदाहरण हैं : डोगरी *प्राप्पा* (देखें पट्याल 1991:123, प्रविष्टि 2); प्राचीन आर्य भायप; सं. भाईपि (सभी < भ्रातृत्व); ले. *हिणप* < *हीनत्व* (CDIAL 14126)। मंडियाली *मित्रप* (~ *मत्रप*) < *मित्रत्व* > * *मित्रप* > * *मित्रप्प* (समीकरण द्वारा) > *मित्रप* (या *मत्रप*) । यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय आर्य स्पर्श + तरल स्वन (*र* और *ल*) सुरक्षित है (जैसे दर्दी भाषाओं में) मंडियाली में कई मामलों में हैं । कांगड़ी (हमीरपुर ज़िला) में *मित्रेच्चा* (यहां -च्च - रोचक है) मिलता है । देखें पट्याल 1983:47 प्रविष्टि 47 ।

15. **यव–पिष्ट** सं. 'जौ का भोजन' (CDIAL 10434 क)

यह संयुक्त अभिव्यक्ति 'मानस' से संपुष्ट होती है । 1.2.2। कोटगढ़ी में ***'जरित्थौ'***; कोची जल्रित्थौ पु. 'जौ का आटा' । (देखें CDIAL परिशिष्ट)

16. *श्वेत* वि. 'सफेद' (CDIAL 12774)

मंडियाली में *सेता* (स्त्री. - ई) वि. 'सफेद' मिलता है । यह शब्द *श्वेत* > *सेत* (पालि) > * *सेत* > *सेता* से व्युत्पन्न हुआ है (यहां – ***आ*** विशेषण प्रत्यय है)। यह शब्द मुहावरों में प्रयुक्त होता है और इसका कम प्रयोग है । देखें पट्याल 1983:48, प्रविष्टि 69)

17. * *सु–वाट* 'ज़मीन के अच्छे संलग्न टुकड़े' (*अग्रवाट*, CDIAL 80)

मंडियाली *स्वाड़* पु. (लघुवाची रूप *स्वाड़*) 'मकान के निकट ज़मीन का संलग्न टुकड़ा' (जिसमें प्राय: सब्ज़ियां उगाई जाती हैं) । यह शब्द तुलनात्मक भारतीय-आर्य भाषा के अध्ययन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है । शब्द की व्युपत्ति इस प्रकार हो सकती है < * *सु–वाट* > * *सुवाड* > *सुवाड़* > ***स्वाड़*** प्राचीन भारतीय-आर्य *सु* - > मंडियाली में *स्वा*, उदाहरण के लिए देखें *सन्यार* < *सुवर्णकार* , *स–बर्न* < *सुवर्ण* आदि । *स्वाड़ी* रूप (< *सु–वाटिका*) ने अपने मूल रूप खो दिया है और 'मकान के निकट (संलग्न) स्थान का अर्थ शौचालय ने ले लिया है' । अब इसका सामान्य अर्थ है 'शौचालय' । देखें पट्याल 1983:48-9, प्रविष्टि 73.

18. *स्तूका* स्त्री. 'ऊन, बालों का गुच्छा, वेणी आदि' (CDIAL 13697)

मंडियाली *थुआ* पु. (स्त्री.–ई) 'ऊन या सूत का गुच्छा' बहुत ही रोचक आर्ष शब्द है । इसे वैदिक *स्तूका* से व्युत्पन्न किया जा सकता है । सत्यापति ऋग्वेद 9.97.17., आयुर्वेद 7. 78.2 आदि । *स्तूका* की व्युत्पत्ति के लिए मइरहोफर को देखा जा सकता है । के ई डब्ल्यु ए III पृ. 516 । वाकर नेगल देबरन्नर को भी देखें । *ए आई टी* ग्रेड II. i. 88 और II ii-535. इस शब्द की तुलना ओस्सेटिक Stug, यिद्‌ध *अस्तुर* से की जा सकती है । *थुइ* स्त्रीलिंग रूप लघुवाची अर्थ में 'ऊन या सूत का बहुत छोटा गुच्छा'. देखें पट्‌याल 1982:291; प्रविष्टि 11.

19. स्थात्र सं. 'स्थान, स्टेशन'

बहुत सी प. प. बोलियों में, *थाक* पु. शब्द का व्यापक सत्यापन चरवाहों की शब्दावली में होता है । यह शब्द आधुनिक भारतीय-आर्य और नव भारतीय-आर्य भाषाओं में सत्यापित नहीं होता । इस शब्द का अर्थ है 'ऐसा मैदानी स्थान या स्थल जहां चरवाहे अपनी भेड़ों और बकरियों के झुंड के साथ विश्राम करते हैं ।' टर्नर ने (1979:360, पा: टि. 7) इस शब्द को *स्थात्रा* के साथ जोड़ा है (देखें ऋग्वेद 1.164. 15= आयुर्वेद 9.14.16) (देखें *भूरी-स्थात्रा* वि. (स्त्री.)) (ऋग्वेद 10.125. 3-AVS' 4.30.2) *स्थात्रा* > * *थात्ता वत* थत्ता (* त में तालव्यरंजन है) > *थात्त या थात*> *थाच* . यह भी देखें ***जाच*** < (< ***यात्रा***) मंडियाली पहाड़ी और कुलुई में सत्यापित किया है । *त* >- *च* कदाचनिक स्वन-परिवर्तन का उदाहरण है ।

20. *हिम:* पु. 'बर्फ' (CDIAL 140 96)

मंडियाली, कुलुई, भटियाली, चम्बयाली सभी में ह्यूं (या हिऊं) पु. *बर्फ* है । कोटगढ़ी (कोची) 'हिऊं' है । *भारत जनगणना* (1971:135) में ***'यूहू'*** का रूप दिया गया है जो मंडियाली में *ह्यूं* से बदलता है किन्तु इन पंक्तियों के लेखक ने इस भाषा का भाषाभाषी होते हुए इस परिवर्तित रूप पर ध्यान नहीं दिया है । देखें पट्‌याल 1984:131. प्रविष्टि 174.

21. *हिमानी* स्त्री. 'बर्फ का पुंज' (CDIAL 14105)

मंडियाली, भटयाली में *ह्इन* स्त्री. 'बर्फ का पुंज, हिमस्खलन' है । यह शब्द हिमानी से व्युत्पन्न हुआ है । (पृ. 4.1.49 . *हिम + आन + नीश = हिमानी*)

22. *हेमंतः* पु. 'सर्दी' (CDIAL 14164)

मंडियाली, कुलुई, भटियाली (गढ़वाली में भी) सभी में *ह्यूंद* पु. 'सर्दी का मौसम, शीतकाल' है । कोटगढ़ी (कोची) में '*हियुंद*' है । देखें पट्‌याल 1984.

131, प्रविष्टि 175.

23. *हयस* (लयपूर्ण *हियस*) क्रि. वि. 'कल' (CDIAL 14108)
कोची *हिज* ; कोटगढ़ी *हिज्ज़* 'बीता हुआ कल'; मालदीवियन इच्चे (देखें CDIAL परिशिष्ट).

III

सार

ये व्युत्पत्तिपरक टिप्पणियां भारतीय - आर्य भाषाओं के तुलनात्मक भाषा - विज्ञानियों के लिए उपयोगी हो सकती हैं । कुछ समक्ष भारतीय - आर्य भाषाविदों को पश्चिमी पहाड़ी बोलियों के लिए तुलनात्मक तथा व्युत्पत्तिपरक कोश तैयार करने चाहिएं।

संदर्भ

CDIAL - Turner, R. L. 1966.

Census of India, 1971. Survey of Mandeali & Kului in Himachal Pradesh, Language Monograph No. 7.

Gauri Shanker, 1931, A Short account of Dogri dialect, *I L* 1 : 3. 93-175

Hendriksen, Hans, 1976, *Himachali Studies* I . Vocabulary Kobenhavn.

Joshi, Tika Ram, 1911, *A Dictionary of the Pahari Dialect Spoken in the Punjab Himalayas.*

JRASB (New Series) VII, 5.

पहाड़ी - एक भाषा के रूप में

डॉ. देवी प्रसन्न पट्टनायक

हिन्दी, चीनी और अरबी ऐसी भाषाएं हैं जिनके रूप परस्पर अत्यधिक अबोधगम्य हैं । कुछ भाषा-रूपों को बोली का दर्जा मिला है जबकि कुछ को स्वतन्त्र भाषा का दर्जा प्राप्त है । चीनी लेखन पद्धति विविध मौखिक रूपों के बीच संयोजन करती है । अरबी में भाषाद्वैत मौखिक अरबी के विविध रूपों में संयोजन करता है। हिन्दी की स्थिति कुछ अधिक जटिल है । विभिन्न कालों में हिन्दी विभिन्न नामों से जानी जाती रही है जिनमें से कुछ रूपों को आज भाषा का दर्जा प्राप्त हुआ है। जो मानक रूप उभर कर आया वह संस्कृत पर आधारित है । इसका प्रयोग विशिष्ट वर्ग के संप्रेषण के लिए होता है जिससे विशिष्ट वर्ग की संस्कृतनिष्ठ भाषा और जन सामान्य की प्राकृत भाषा में दूरी आ गई है । देश की क्षेत्रीय भाषाओं के विकास पर प्रभाव पड़ा है । हिन्दी में संसक्ति को अंत: भाषिक और अंतर भाषिक रूपों में देखना है । पहाड़ी और राजस्थानी जैसे मध्यवर्ती मानक रूप का सृजन अंत: भाषिक संसक्ति की ओर एक कदम है जबकि भारत के अनुच्छेद 351 के द्वारा एक भाषी क्षेत्र का स्थान लेना है और यह स्थान अंतर भाषिक संसक्ति की ओर एक चेष्टा है । पहाड़ी और राजस्थानी के अपकर्ष से और अनुच्छेद 351 के कार्यान्वयन में अत्यधिक निष्क्रियता होने से हिन्दी आन्तरिक उपनिवेशवाद की भाषा के रूप में मानी जाती है ।

स्वतन्त्रता संग्राम के प्रारम्भ में कांग्रेस भाषायी राज्य बनाने के लिए बचनबद्ध थी । उस बचनबद्धता में गड़बड़ी यह थी कि इन राज्यों के बहुभाषी, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक स्वरूप को मान्यता नहीं दी गई । सोवियत संघ ने राष्ट्र, राज्य और एक प्रारूप का कुछ सफल प्रयोग किया था, उसके स्पष्ट होने पर गांधी के अलावा हमारे राजनीतिज्ञों ने एकल राज्य का सपना लिया था । उन्होंने भारत राष्ट्र के एकल प्रतीक के रूप में हिन्दी के बारे में सोचा था । क्षेत्रीय बलों ने प्रत्येक क्षेत्र को एकल सत्ता के रूप में और भारत राष्ट्र को संघ राज्य के रूप में सोचा था । एशिया के बहुभाषी, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक देशों के लिए न तो एकल राज्य की और न ही संघ राज्य की संकल्पना पर्याप्त है । अफ्रीका और लातीनी अमरीकी

की पूर्णतया उपेक्षा राजनीतिज्ञों और योजनाकारों द्वारा हुई है । मुख्यधारा में सम्मिलित होने, राष्ट्रीय एकता के नारे बहुसांस्कृतिक राज्य की एकरूपता के लिए मंगलमय उक्तियां हैं । यहां तक कि दो सौ वर्षों तक उत्तरी अमरीका के कुठाली सिद्धान्त से यह सिद्ध हुआ कि पिछले पात्र से विभिन्न अस्मिताएं एक साथ जुड़ गईं जबकि पश्चिमी आदर्श की नकल करने पर भी हमने उनके विकासपरक अनुभवों से कुछ नहीं सीखा ।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 में राष्ट्रीय राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास की चर्चा की गई है । हिन्दी के विकास के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः आठवीं अनुसूची की भाषाओं से शब्दावली लेने की बात की गई है । आठवीं अनुसूची की भाषाओं से क्यों और उन भाषाओं से क्यों नहीं जिनके साथ हिन्दी का सम्पर्क बना रहता है । क्या वे आठवीं अनुसूची में उल्लिखित है या नहीं । बहरहाल, चूँकि सरकार ने अनुच्छेद 351 पर कार्यवाही करने के लिए एक भी कदम नहीं उठाया है, अतः इसके बारे में चर्चा करना व्यर्थ है ।

इस बात को उठाना महत्वपूर्ण है कि आठवीं अनुसूची और अनुच्छेद 351 में हिन्दी को लाने से कार्यालयी हिन्दी और क्षेत्रीय संस्कृतियों की वाहक हिन्दी के बीच सूक्ष्म अन्तर करना होगा । यद्यपि कार्यालयी हिन्दी का विकास मुख्यतः संस्कृत के संसाधनों से करना है किन्तु क्षेत्रीय हिन्दी के विकास के लिए ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है । तथापि, इन दोनों का परस्पर आदान-प्रदान दोनों के लिए लाभकारी है । इस समस्या का एक और आयाम भी है । कार्यालयी हिन्दी का विकास केन्द्र की ज़िम्मेदारी है जबकि भारत की अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के विकास की भांति क्षेत्रीय हिन्दी के विकास की ज़िम्मेदारी मुख्यतः राज्यों की है, परन्तु गौणतः केन्द्र की है । पहाड़ी और राजस्थानी जैसी भाषाओं के आन्दोलन क्षेत्रीय हिन्दी के विकास के लिए सहायक होते हैं ।

यह आशा की जा सकती है कि भाषा नीति पर अधिक ध्यान देना चाहिए था । विशेषकर भाषाएं जहां विभिन्न समुदायों की स्तरित अस्मिता को बताती हैं वहां विभिन्न संस्कृतियों की वाहक भी हैं । शिक्षा की राष्ट्रीय नीति 1986 और इसके कार्य निष्पादन प्रतिवेदन से न केवल यह स्पष्ट जानकारी मिली है कि भारत में कोई भाषा नीति नहीं है और भाषा नीति राज्य के विभिन्न स्तरों में और कार्यकलाप के विभिन्न क्षेत्रों में, जैसे कि, शिक्षा और प्रशासन में पैदा की जाती है। दुभार्ग्यवश, स्कूली शिक्षा के स्तर पर त्रिभाषा सूत्र का सर्वसम्मति से अत्यधिक प्रचार हुआ और उसे अधिकाधिक समझा गया । पहली बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि त्रिभाषा सूत्र एक रणनीति है न कि लक्ष्य । दूसरा, त्रिभाषा सूत्र

न तो मातृभाषा, गृहभाषा का परिज्ञान कराता है और न ही वरेण्य भाषाओं और अंग्रेज़ी के अलावा विदेशी भाषाओं का ज्ञान कराता है । तीसरा, यह पाठ्य चर्चा के अन्य विषयों से जुड़ी भाषाओं को विरोध में रखता है । अतः आश्चर्य की बात नहीं है कि पहाड़ी और राजस्थानी भाषाओं के समूह के बारे में चर्चा नहीं हुई और न ही हिन्दी के साथ इनके सम्बन्धों के बारे में कोई चर्चा हुई है । 1986 में 1968 की ओर पीछे ले जाने का कदम पश्चगामी कदम है । बहुभाषिकता और बहुसंस्कृतिवाद की समस्याओं का सामना करने के लिए इसका आकलन नहीं किया गया ।

यद्यपि अनेक सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाएं स्थापित की गई हैं किन्तु किसी ने भी हिन्दी के मातृभाषा/गृहभाषा और मानक रूप के बारे में कार्य नहीं किया । जनगणना से हमें मातृभाषा की सूचना मिलती है । ए. एस. आई. के भारतीय जनता कार्यक्रम से समुदायगत भाषाओं के बारे में हमें सूचना मिलती है । जनगणना 1981 से घरेलू भाषाओं के सम्बन्ध में जानकारी मिलती है । मातृभाषा, घरेलू भाषा और समुदाय-भाषा का समाधान करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया है ।

हिन्दी की भांति पहाड़ी भी अध्यारोपित विशिष्ट भाषा है । पहाड़ी नामक भाषाएं चीनी- तिब्बती और भारत-आर्य भाषाओं का मिश्रण हैं । लाहौल-स्पिति जैसी भाषाएं चीनी-तिब्बती भाषा-परिवार की तिब्बती-बर्मी उप-भाषा परिवार से सम्बद्ध हैं । मंडियाली, चम्बियाली, कहलूरी (बिलासपुरी) और कांगड़ी निकटता से जुड़ी हैं ।

पंजाबी के प्रभाव के कारण इनमें कुछ अंश तक समानता मिलती है । गद्दी, चुराही और भटियाली बोलियां चम्बियाली की बोलियां मानी जाती हैं और इनमें अंशतः परस्पर बोधगम्यता है । यह समानता उनमें परस्पर संप्रेषण के कारण भी है । एक ओर सिरमौरी, महासुई और दूसरी ओर कुलुई में संस्कृत और प्राकृत शब्दावली का सम्मिश्रण हुआ है । इनके कुछ अभिलक्षणों में समानता मिलती है और कुछ अभिलक्षणों में भिन्नता मिलती है। शैक्षिक दृष्टि से इन सब पर अध्ययन करने की आवश्यकता थी और मानक रूप लाने के लिए प्रयास किए जाते तो ठीक रहता । दुर्भाग्यवश पहाड़ी को हिन्दी के विरोध में देखा जाता है। यह समझा नहीं गया कि मानक कोई बिन्दु न होकर एक क्षेत्र है और यह क्षेत्र जितना विशाल होता है उसकी स्वीकृति उतनी व्यापक होती है । यद्यपि पहाड़ी भाषा समर्थक अपने ही ढंग से मध्यवर्ती मानक स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं लेकिन उसका विकास उसी तरह नहीं हो रहा जिस तरह होना चाहिए था । मातृभाषा ने

हिन्दी भाषी राजनीतिज्ञों के बीच आशंका पैदा कर दी है । यह कहा जाता है कि हिन्दी की संस्क्ति को तोड़ने के लिए अहिन्दी भाषी षड्यन्त्र है । जब तक मातृभाषा/ गृहभाषा और स्कूली मानक में सम्बन्ध नहीं बनता और बोली शब्दावली को मानक में समाविष्ट करने से द्विभाषिकता नहीं हो जाती तथा मानक शब्दावली हिन्दी के विभिन्न रूपों में नहीं आ जाती, तब तक हिन्दी को अपना उचित स्थान लेने के बहुत कम अवसर हैं । इसी प्रकार जब तक द्विदिशापरक बहुभाषिकता हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच नहीं लाई जाती, तब तक एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्द उर्वर भाषा को पार नहीं करते । प्रति राज्य में एक भाषा पर बल देने से एक भाषिक क्षेत्र के रूप में भारत का आधार नष्ट हो जाएगा ।

देश की पुरातन भाषायी संरचना अंग्रेज़ी के दबाव में कस गई है । मुख्यधारा के तथाकथित भाषा भाषी अंग्रेज़ी को प्राथमिकता देते हैं । बोली भाषी, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक भाषा भाषी क्षेत्रीय मानक रूप को स्वीकार किए बिना अपनी मातृभाषा और अंग्रेज़ी के लिए दावा करते हैं। उनका तर्क है कि यदि मुख्यधारा की भाषा बोलने वाले अपनी ही भाषा के प्रति निष्ठावान नहीं हैं तो उन्हें क्षेत्रीय भाषा का अध्ययन करने के लिए गौण अल्पसंख्यक भाषा मांगने का नैतिक अधिकार नहीं है । यदि भाषाएं और उनके रूप विरोध में खड़े होते हैं तो दोनों को हानि उठानी पड़ेगी । पहाड़ी जैसे भाषायी आन्दोलन सामाजिक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तरों पर सद्भावना पैदा करते हैं ।

हिमाचल प्रदेश की पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं में लघुतावाची रूप

डा. जगदीशचंद्र शर्मा

लिंग विधान अधिकांश आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में संज्ञा का अंतर्निहित गुण है । प्राणीवाचक संज्ञाओं में व्याकरणिक और प्राकृतिक लिंग में अनुरूपता है। पुल्लिंग और स्त्रीलिंग संज्ञाएं प्राय: पुरुष और स्त्री के लिए प्रयुक्त होती हैं । जहां तक अप्राणीवाचक संज्ञाओं का सम्बन्ध है वे व्याकरणिक् लिंग विधान से सम्बद्ध होती हैं और कभी-कभी आकार विभेदन की परिचायक भी होती है । लघुतावाची अप्राणीवाचक और व्यक्तिवाचक संज्ञा का गुण है जो आकार के अर्थपरक तथ्य पर आधारित है अन्यथा लघु रूप को उतनी विशिष्टता नहीं दी जाती जितनी भाषा के कई भाषापरक विवरणों से दिखाई देती है । कई व्याकरणों में अप्राणीवाचक संज्ञा लघुतावाची रूपों का अध्ययन लिंग से व्युत्पादित शब्दों के अंश के रूप में किया गया है । प्राय: यह देखा गया है कि लघु आकार की वस्तुएं लिंग विधान में स्त्रीलिंग के रूप में मिलती हैं और बड़े आकार की वस्तुएं पुल्लिंग के रूप में मिलती हैं । किन्तु कई भाषाओं के मामले में जिनमें पहाड़ी भाषाएं भी हैं, यह पूर्णतया सत्य नहीं है ।

लघुवाचीकरण रूपपरक प्रक्रिया है जिसके दो भेद हैं -

1. वर्ग अपरिवर्ती और 2. वर्ग परिवर्ती ।

लघुतावाची प्रत्यय संज्ञा प्रतिपदिक के साथ जुड़ते हैं और केवल संज्ञा ही होते हैं किन्तु व्युत्पन्न शब्द के लिंग में या तो परिवर्तन हो जाता है या वही रहता है अर्थात् Menomini रूप मूलाधार रूप का है । जर्मनी भाषा में लघुतावाची शब्द का लिंग मूलाधार रूप के लिंग की ओर ध्यान न देते हुए सदैव नपुंसक होता है। उदाहरण के लिए Tisch (पु.) 'मेज़' Tischchen (नपुं.) 'छोटी मेज' । अधि कांश आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में दो लिंगों (पुल्लिंग और स्त्रीलिंग) का भेद दिखाया जाता है जिनमें लघुतावाची रूप अप्राणीवाचक संज्ञाओं में प्रत्यय जोड़ने से बनते हैं और व्युत्पन्न रूप सदैव स्त्रीलिंग होते हैं और मूलाधार रूप

पुल्लिंग होता है । हिन्दी, पंजाबी आदि भाषाओं के कई उदाहरण दिए जा सकते हैं जिनमें लिंग प्रत्यय आकार की अभिव्यक्ति करते हैं ।

लघुतावाची प्रत्यय लिंग प्रत्यय के इतने अनुरूप होते हैं कि लिंग रूप और लघुतावाची रूप इस प्रकार एक दूसरे पर छा जाते हैं कि छोटा आकार स्त्रीलिंग प्रत्यय द्वारा चिह्नित होता है और बड़ा आकार पुल्लिंग प्रत्यय द्वारा । उदाहरण के लिए, हिन्दी-पंजाबी में :

थैला	*(पु.)*	*थैली*	*(स्त्री.)*
हथौड़ा	*(पु.)*	*हथौड़ी*	*(स्त्री.)*
टहना	*(पु.)*	*टहनी*	*(स्त्री.)*
लोटा	*(पु.)*	*लुटिया*	*(स्त्री.)*

आकार के दो मार्गीय रूप अर्थात् बड़ा बनाम छोटा, व्याकरणिक लिंग के सहित और रहित भाषाओं में सामान्य रूप में पाए जाते हैं । उड़िया भाषा में लिंग व्याकरणिक है लेकिन उनके लघुतावाची रूप भी बनते हैं । यहां (ऊपर) रूप वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा प्रत्यय जोड़ कर लघुतावाची रूप बनाए गए हैं । इसके विपरीत, अंग्रेज़ी और द्रविड़ भाषाओं में यह प्रक्रिया विशेषकों की सहायता से वाक्यात्मक रचना द्वारा व्यक्त होती है । जैसे - बड़ी मेज़ बनाम छोटी मेज़ ।

जिन भारतीय आर्य भाषाओं में लिंग विधान व्याकरणिक है, उनमें लिंग के सन्दर्भ के बिना लघुतावाची रूपों के बारे में कहना सम्भव नहीं है क्योंकि ये सभी संज्ञाओं में निहित रहते हैं । जो भाषाएं प्राय: पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के विधान में हैं वे दो आकारों (हिमाचली के सिवाय) का भेद रखती हैं और उनमें बड़े और छोटे की तुलना सामान्यत: पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के रूप में की जाती है और यह विधान हिन्दी, पंजाबी जैसी भाषाओं में ऊपर देखा जा सकता है । गुजराती, मराठी, कोंकणी (प्रमुख भाषाओं) और भीली वर्ग की भाषाओं, पश्चिमी पहाड़ी वर्ग की भद्रवाही और सिरमौरी उप-भाषाओं में तीन लिंगों का विधान है । इसमें यह देखना है कि इनमें लिंग भेद और लघुवाची रूपों का परस्पर सम्बन्ध क्या है? गुजराती में तीन लिंग हैं जिनमें पुल्लिंग अतिरिक्त बड़ी वस्तु का संकेत करता है । स्त्रीलिंग छोटी वस्तु का, और नपुंसक लिंग अपकर्षक अर्थ दे सकता है । उदाहरण के लिए :

/रोटलो/ (पु.)	मोटी रोटी
/रोटली/ (स्त्री.)	पतली रोटी

/रोटलु/ (नपुं.)	घटिया किस्म की रोटी
/मटलो/ (पु.)	अतिरिक्त बड़ा बर्तन
/मटली/ (स्त्री.)	छोटा बर्तन
/मटलु/ (नपुं.)	घटिया बर्तन

यह स्थिति तीन लिंगों वाली अन्य भाषाओं में इसी प्रकार नहीं है । यह सत्य नहीं है कि लघुतावाची रूप सदैव स्त्रीलिंग होते हैं और नपुंसक लिंग अपकर्ष अर्थ देता है । उदाहरण के लिए, गदे लोहर बोली में छोटे आकार की वस्तु तीनों लिंगों अर्थात् पुल्लिंग, स्त्रीलिंग या नपुंसक लिंग में किसी एक में हो सकती है और लघुतावाची रूप मूलाधार रूप के लिंग में परिवर्तन करने से या बिना परिवर्तन किए व्युत्पन्न हो सकते हैं । कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

/हडसी/ (स्त्री.)	बड़ा चिमटा	/हडसियो/ (पु.)	छोटा चिमटा
/ छिनी/ (स्त्री.)	बड़ी छेनी	/छिंटी/ (स्त्री.)	छोटी छेनी
/हलथोरो (पु.)	बड़ा हथौड़ा	/हथोन्यो/ (पु.)	छोटा हथौड़ा
/घड़ो/ (पु.)	बड़ा घड़ा	/घड़ियो/ (पु.)	छोटा घड़ा
/ढोल/ (नपुं.)	बड़ा ढोल	/ढोलक/ (नपुं.)	छोटा ढोल

(शर्मा 1988: 62 – 63)

इस प्रकार तीन लिंगों वाली भाषाएं एक ही प्रकार से काम नहीं करतीं । यह सामान्यीकरण करना कठिन है कि छोटे आकार व्यक्त करने वाली संज्ञाएं सदैव स्त्रीलिंग होती हैं । अत: लिंग विधान निर्माण से अलग होकर लघुतावाची रूपों का अध्ययन करना अनिवार्य है, क्योंकि उड़िया और बंगाली जैसी भाषाओं में लिंग भेद नहीं होता किन्तु उनमें आकार–भेद अवश्य होता है (चट्टर्जी पृ. 673) । उदाहरण के लिए :

बंगाली में /छुरी/और/छुरा/,/नाटिका/नाटक/ में बिना किसी लिंग विधान के आकार का भेद मिलता है ।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में आकार पर आधारित दो संज्ञा रूपों से अधिक रूप देखे जा सकते हैं । क्या ये तीन लिंगों वाली गुजराती जैसी भाषाओं की तरह काम करते हैं ? यद्यपि दो लिंगों वाली भाषाओं में, जिनमें बहुत सी पहाड़ी बोलियां भी आती हैं, दो लिंगों का भेद मिलता है तो अन्य रूपों का लिंग क्या होगा जो अतिरिक्त बड़े आकार का संकेत करती हैं?

2. हिमाचल प्रदेश की पश्चिमी पहाड़ी बोलियों में लघुतावाची रूप

अब तक यह परिकल्पना प्रमुखतः भारतीय आर्य भाषाओं पर लागू होती है कि जिस भाषा में तीन लिंग होते हैं । उसमें लघुतावाची रूप सदैव स्त्रीलिंग होते हैं और मूलाधार रूप पुल्लिंग होते हैं । परन्तु जब हम ऊपर वर्णित गदे लोहर बोली अथवा परिशिष्ट दो में दी गई पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं के उदाहरण देखते हैं तो इस प्रकार का रूप सामान्यतः सही नहीं बैठता । इसी प्रकार बहुत सी भारतीय आर्य भाषाओं में एक प्रकार की स्थिति नहीं मिलती ।

लिंग–भेद पर आधारित हिमाचली बोलियों को दो प्रकारों में रखा जा सकता है – (1) दो व्याकरणिक लिंगों से युक्त बोलियां और (2) तीन व्याकरणिक लिंगों से युक्त बोलियां । हिमाचली बोलियों में कम से कम तीन आकारों की पद योजना मिलती है, अर्थात् बड़ा, छोटा और बहुत ही छोटा । कुछ बोलियों में चार–पांच प्रकार के भेद भी पाए जाते हैं जैसा कि, बहुत बड़ा, बड़ा, सामान्य, छोटा और बहुत छोटा । ये रूप कांगड़ी (चौहान, ए. आर. 1992) और मंडियाली जैसी कुछ बोलियों में पाए जाते हैं । यह रोचक तथ्य है कि दो लिंगों वाली बोलियों में केवल एक रूप स्त्रीलिंग सूचित करता है और शेष पुल्लिंग । इससे पता चलता है कि पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं में छोटे आकार का स्त्रीलिंग से परस्पर सम्बन्ध नहीं है । जहां तक तीन से अधिक रूपों वाली भाषाओं का, जिनमें आकार का भेद मिलता है, का सम्बन्ध है, में कांगड़ी जैसी भाषा में केवल एक रूप स्त्रीलिंग को सूचित करता है और शेष सभी रूप पुल्लिंग को सूचित करते हैं । उदाहरण के लिए; कांगड़ी में

टोपा (पु.) (बड़ा आकार), टोपी(स्त्री.) (छोटा आकार)
टोपु(पु.) (बहुत छोटा आकार) और टोपरू(पु.) (अत्यन्त छोटा आकार)
टोप(पु.) (अत्यन्त बड़ा आकार)

आदि पांच आकारों के भेद मिलते हैं । जिन भाषाओं में आकार पर आधारित तीन से पांच संज्ञाएं हैं उनमें आवश्यक नहीं है कि इनकी सभी संज्ञाएं अथवा कुछ संज्ञाओं में बड़ा, छोटा और बहुत छोटा रूप मिलें । (परिशिष्ट देखें)

सभी हिमाचली बोलियों में कम से कम तीन आकारों का भेद मिलता है (जिन्हें परिशिष्ट I और परिशिष्ट II में देखा जा सकता है ।) किन्तु इन सभी के तीन प्रकार के लिंग नहीं मिलते । छोटे आकार के लिए प्रायः स्त्रीलिंग शब्द मिलते हैं जैसा कि हिन्दी और पंजाबी में देखने में आता है । किन्तु बहुत छोटे आकार के

अर्थ को द्योतित करने वाले संज्ञा में (उ) लगता है और यह अर्थ उन भाषाओं में पुल्लिंग के रूप में द्योतित होता है जिनमें दो लिंगों का विधान है, यथा, यह कांगड़ी, बघाटी, क्योंथली बोलियों में प्रायः देखने में आता है । और नपुंसक लिंग उन भाषाओं में द्योतित होता है जिनमें तीन लिंगों का विधान है, यथा सिरमौरी, पंगवाली, चुराही बोलियां ।

3. उपर्युक्त विश्लेषण से यह प्रकल्पना सही सिद्ध नहीं होती है कि बड़ा आकार पुल्लिंग से सूचित होता है और लघुतावाची रूप स्त्रीलिंग से सूचित होते हैं । जैसे हिमाचली भाषाओं में कम से कम तीन आकार हैं और दो लिंग हैं । उनमें बड़ा और बहुत छोटा (लघुतावाची रूप) पुल्लिंग हैं । उदाहरण के लिए, मंडियाली में /टोप/(पु.), /टोपी, /टोपु । जिन हिमाचली भाषाओं में तीन लिंग हैं उनमें लघुतावाची (बहुत छोटा) नपुंसक लिंग है, जैसे, टोपा(पु.), टोपी(स्त्री.), टोपरू (नपुं) ।

इस बात को स्पष्ट करने के लिए कुछ चुनी हुई हिमाचली भाषाओं से उदाहरण लिए जा सकते हैं । हिन्दी की भांति हिमाचली भाषाओं में संज्ञा पदबंध में संज्ञा और विशेषण (परिवर्तनीय) के साथ वचन लिंग का और वाक्य में संज्ञा कर्म के साथ पूर्णवाचक कृदंत क्रिया का अन्वय मिलता है । बघाटी में आकार पर आधारित संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं किन्तु इसमें पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोंनों के भेद मिलते हैं । उदाहरण के लिए, /काला टोपा/, /काली टोपी/ सिरमौरी, पंगवाली, चम्बयाली भाषाओं में पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग, तीन लिंग हैं । बहुत बड़ा और बहुत छोटा क्रमशः पुल्लिंग और स्त्रीलिंग हैं जबकि बहुत छोटा आकार नपुंसक लिंग है । स्पष्ट है कि निम्नलिखित उदाहरणों में संज्ञा कर्म के साथ लिंग और वचन के अनुसार पूर्ण कालिक कृदंतों का अन्वय होता है । जैसे–

मोए	एक	टोपा	लोआ	(मैंने एक टोपा लिया)
	1	2	3	4
			(पु.)	(पु.)
मोए	एक	टोपी	लोई	
	1	2	3	4
			(स्त्री.)	(स्त्री.)
मोए	एक टोपरू		लू	
(नपुं.)	(नपुं.)			

सिरमौरी, पंगवाली, चुराही आदि भाषाओं में तीन लिंगों में संज्ञा रूप मिलते हैं जो तीन आकारों के अनुरूप हैं । गुजराती में भी इस प्रकार की व्यवस्था है । हिमाचल प्रदेश की सभी भाषाओं के लिंग विधान को इस प्रकार समझाया जा सकता है :

पंगवाली

मइ	अइख		टोप		खरीदा	(बड़ा)
	1	2		3		4
				(पु.)		(पु.)
मइ	अइख		टोपी		खरीदी	(छोटी)
	1	2		3		4
				(स्त्री.)		(स्त्री.)
मइ	अइख	टोपरु	खरीदु	(बहुत छोटी)		
	1	2		3		4
				(नपुं.)		(नपुं.)

चम्बयाली

मी	अक		टोप		खरीदा	(बड़ा)
	1	2		3		4
				(पु.)		(पु.)
मी	अक		टोपी		खरीदी	(छोटी)
	1	2		3		4
				(स्त्री.)		(स्त्री.)
मी	अक		टोपरू		खरीदु	(बहुत छोटी)
	1	2		3		4
				(स्त्री.)		(स्त्री.)

परिशिष्ट – ।

हिमाचल प्रदेश की विभिन्न पश्चिमी पहाड़ी उप – भाषाओं में बड़ा/विशाल, छोटा और बहुत छोटा आदि तीन आकारों के लिए चिन्हित प्रत्यय)

		बड़ा	छोटा	बहुत छोटा
1.	बघाटी	– आ	– ई ् – ड़ी ् – ली	– ऊ – डू – टू – लूं – सू
2.	कियुंथली	– आ्	– ई – टी	– ऊ – डू
3.	सोराचली	– ओ – आ	– ए – ड़े – टे	– ऊ् – डू – टू – लू
4.	सिरमौरी	– आ	– ए	– ऊ् – टू – डू
5.	बिलासपुरी/कहलूरी	– आ	– ई	– ऊ = कू ± लू – डू
6.	कांगड़ी	आ	इ	उ ् – डू
7.	मंडियाली	आ	ई	ऊ = डू – टू
	(अतिरिक्त विशाल (– ड़ा) से चिन्हित होता है ।)			
8.	चुराही	आ	ए	ऊ ् – णू
9.	पंगवाली	आ	ई	ऊ ् – ऐ – ऊ = उ ळ

परिशिष्ट ॥

हिमाचल प्रदेश की चुनिंदा पश्चिमी पहाड़ी भाषाओं से लघुतावाची रूपों के उदाहरण। इनसे परिशिष्ट-। में दिए गए प्रत्ययों का होना दिखाई देता है।

	बड़ा	छोटा	बहुत छोटा
1. **बघाटी**			
	टोकरा (पु.)	टोकरी (स्त्री.)	टोकरू (पु.)
	हथोड़ा (पु.)	हथोड़ी (स्त्री.)	हथोड़ू (पु.)
	टोपा (पु.)	टोपी (स्त्री.)	टोपड़ू (पु.)
	लोटा (पु.)	लोटड़ी (स्त्री.)	लोटड़ू (पु.)
	गलास (पु.)	गलासी (स्त्री.)	गलासटू (पु.)
	घड़ा (पु.)	घड़ोली (स्त्री.)	घड़ोलू (पु.)
	डांग (पु.)	- - - - -	डांगसू (पु.)
2. **कियुंथली**			
(क्योंथली)	टोकरा (पु.)	टोकरी (स्त्री.)	टोकरू (पु.)
	टोपा (पु.)	टोपी (स्त्री.)	टोपू (पु.)
	लोटा (पु.)	लोटड़ी (स्त्री.)	लोटड़ू (पु.)
	थाल़ (पु.)	थाल़ी (स्त्री.)	थाल़ू (पु.)
	आरव (पु.)	आरवटी (स्त्री.)	आरवटू (पु.)
	कुर्ता (पु.)	कुर्ती (स्त्री.)	कुरतू (पु.)
3. **सोराचली**			
	टोपो (पु.)	टोपे (स्त्री.)	टोपड़ू/टोपलू (पु.)
	डाब्बो (पु.)	डाब्बे (स्त्री.)	डाब्टू (पु.)
	कुर्तो (पु.)	कुर्ते (स्त्री.)	कुर्तेटू (पु.)
	लोटा (पु.)	लोटड़े (स्त्री.)	लोटड़ू (पु.)
	बनैन (पु.)	बनैंटे (स्त्री.)	बनैंटू (पु.)
	ढोल (पु.)	ढोले (स्त्री.)	ढोलटू (पु.)
4. **सिरमौरी**			
	बाल्टा (पु.)	बाल्टे (स्त्री.)	बाल्टू (पु.)
	टोपा (पु.)	टोपे (स्त्री.)	टोपड़ू (पु.)

	थाल (पु.)	थाले (स्त्री.)	थालटू (पु.)
5. **बिलासपुरी /कहलूरी**			
	कटोरा (पु.)	कटोरी (स्त्री.)	कटोरू (पु.)
	लोटा (पु.)	लोटड़ी (स्त्री.)	लोटकू (पु.)
	डाळा (पु.)	डाळी	डाळू (पु.)
6. **कांगड़ी**			
	टोपा (पु.)	टोपी (स्त्री.)	टोपड़ू (पु.)
	कटोरा (पु.)	कटोरी (स्त्री.)	कटोरू (पु.)
7. **मंडियाली**			
	टोप/टोपा/ टोपड़ा	टोपी	टोप्पू/टोपड़ू
	पोटिला/पतीला	पोटिली/पतीली	पोटिलू/पतीलू
	कोरहा	कोरही	कोरहटू
	तवा	तवी	
	टोटू		
8. **चुराही**			
	कटोरा (पु.)	कटोरे (स्त्री.)	कटोरू (नपुं.)
	टोप (पु.)	टोपे (स्त्री.)	टोपणू (नपुं.)
9. **पंगवाली**			
	तौआ (पु.)	ताउई (स्त्री.)	ताइउलू (नपुं.)
	डाः (पु.)	डाई (स्त्री.)	डाउ (नपुं.)
	(बड़ी शाखा)	(छोटी शाखा)	(बहुत छोटी शाखा)
	टोप (पु.)	टोपी (स्त्री.)	टोपऐऊ

कांगड़ी में शब्द व्युत्पत्ति

डॉ. ए. आर. चौहान

प्रस्तावना

पश्चिमी पहाड़ी की भारत–आर्य बोली को कांगड़ी नाम मिला है । यह बोली हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना और चम्बा तथा बिलासपुर ज़िलों के कुछ भागों में बोली जाती है । कांगड़ी का क्षेत्र बिलासपुरी, पंजाबी, चम्बयाली, तिब्बत बर्मी बोली लाहौली, तथा मंडियाली से घिरा हुआ है । भारत के भाषा सर्वेक्षण में कांगड़ी को पंजाबी डोगरी के रूप में वर्गीकृत किया गया है किन्तु संरचनात्मक बंधुता की दृष्टि से कांगड़ी पश्चिमी पहाड़ी की बोली के रूप में दृष्टिगत होती है ।

कांगड़ी के मुख्य अभिलक्षण

कांगड़ी पंजाबी की भांति तान भाषा है । इसमें व्यंजन ध्वनियों /घ, झ, ढ, ध, भ/ घोष महाप्राण और /ह/ श्वासद्वारीय महाप्राण ध्वनियां नहीं होती । आदि स्थिति में (ल़, ड़, ण) ध्वनियों तथा आज्ञार्थक भविष्य के लिए /- या, -नो, दिख्या, दिखनो / व्यावर्तक रूपों के प्रयोग हैं । ये कांगड़ी के दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिलक्षण हैं क्योंकि ये प्रयोग किसी भी अन्य भारतीय आर्य बोली में अभी तक नहीं मिले हैं ।

प्रस्तुतीकरण परिचय

इस प्रस्तुतीकरण में उन विभिन्न प्रक्रियाओं को सूचीबद्ध करने और उनके उदाहरण देने का प्रयास किया गया है जिनका प्रयोग कांगड़ी में शब्द–निर्माण के लिए किया गया है । इन प्रक्रियाओं का विवरण मुख्यत: व्युत्पत्ति तक सीमित है। इसमें उस रूप साधन प्रक्रिया को भी सम्मिलित किया गया जहां कहीं उनके रूपों

और प्रक्रिया के कारण इन दोनों में ऐसी समानता आकस्मिक आ गई हो। कांगड़ी के मामले में व्युत्पति और शब्द साधन दोनों के प्रतिसंदर्भ तर्कसंगत हैं क्योंकि यह भाषा व्युत्पादक और विभक्तिपरक दोनों हैं, अथवा यह कहा जा सकता है कि यह श्लिष्ट योगात्मक भाषा है। तथापि, इस समूचे आलेख में व्युत्पत्ति शब्द या शब्द साधन का प्रयोग पूर्णतया विवरणात्मक है, न कि ऐतिहासिक। यह भिन्न-भिन्न प्रक्रिया प्रकारों की सूची को विस्तृत बनाने का प्रयास है किन्तु प्रत्येक प्रकार के लिए मात्र सीमित उदाहरणों की सूची दी गई है।

कांगड़ी में शब्द वर्ग

रूप प्रक्रिया और वाक्य-विन्यास के आधार पर कांगड़ी में शब्द वर्ग के दो प्रकार निर्धारित किए जा सकते हैं - वे हैं (1.) रूप वर्ग शब्द, और (2.) संरचना या प्रकार्य शब्द। रूप वर्ग शब्द रूपावलीगत समुच्चय बनाते हैं और ये एक रूप से अधिक दिखाई देते हैं। यह तथाकथित कथ्यात्मक शब्द है जिसमें प्रमुख शब्दगत अर्थ होता है। इस वर्ग में सभी संज्ञाएं, सर्वनाम, विशेषण, संख्यावाचक रूप, क्रियाएं और क्रिया विशेषण आते हैं। संरचनात्मक शब्दों के अन्तर्गत परसर्ग, सहायक क्रिया, समुच्चयबोधक, रंजक रूप, निषेधात्मक रूप, निपात, सार्वनामिक रूप आदि आते हैं। ये एक रूप से अधिक दिखाई नहीं देते और यह वर्ग छोटा, किन्तु शब्दों का सीमित संवृत वर्ग होता है। शब्द-निर्माण में विभिन्न शब्द रूपात्मक प्रक्रियाएं पहले प्रकार में अर्थात् रूप वर्ग शब्दों में लागू होती हैं। फिर भी, परसर्ग, परसर्गपरक क्रिया विशेषण जैसे संरचनात्मक शब्दों के कुछ वर्ग और सार्वनामिक रूपों के कुछ प्रकार भी कांगड़ी में सर्वादेश, समासीकरण और पुनरुक्ति की प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। सभी शब्दरूपात्मक प्रक्रियाएं सभी रूप वर्ग शब्दों और कुछ संरचनात्मक शब्दों पर लागू नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, क्रिया, क्रिया विशेषण और परसर्ग केवल समासीकरण तक सीमित हैं किन्तु संज्ञा और विशेषण विभिन्न व्युत्पत्तिपरक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत कार्य करते हैं।

शब्द रूपात्मक प्रक्रिया

प्रत्यय योजन : कांगड़ी में तीन प्रकार के प्रत्यय हैं। वे पर प्रत्यय, पूर्व प्रत्यय (उपसर्ग) और मध्य प्रत्यय या संयोजक प्रत्यय हैं। परप्रत्यय और पूर्वप्रत्यय दो प्रकारों सम्बन्धी पहले को वर्ग-परिवर्ती और वर्ग-अपरिवर्ती में विभाजित किया

जा सकता है किन्तु तीसरा प्रकार अर्थात् मध्य प्रत्यय ऐसी विशिष्टता को पूरा नहीं करता । वर्ग-परिवर्ती प्रत्यय वे हैं जो वर्ग या शब्द-वाक् के उस भाग में परिवर्तन करते हैं, जिसके साथ वे जुड़ते हैं । दूसरी ओर, वर्ग अपरिवर्ती प्रत्यय मुख्य अर्थ का केवल परिष्कार करते हैं किन्तु दूसरे वर्ग में शब्द या पहले के वाक् के भाग में परिवर्तन नहीं करते ।

पर प्रत्यय योजन : पर प्रत्यय योजन की प्रक्रिया केवल संज्ञा और विशेषण पर लागू होती है । तथापि, कुछ सार्वनामिक और क्रिया विशेषण परक रूप भी कांगड़ी में उसी ढंग में रूपान्तरित होते हैं । हम यहां यह भी उल्लेख कर दें कि सभी विभक्तियां सदैव पर प्रत्यय के रूप में लगती हैं और इस प्रकार व्युत्पन्न शब्द सदैव वर्ग अपरिवर्ती रूप हैं ।

वर्ग अपरिवर्ती पर प्रत्यय : बहुत उत्पादक नहीं हैं, यथा:

उदाहरण : (1) संज्ञा : केवल संज्ञा से लगते हैं :

/दोस्त/ - /दोस्ती/, /तेल/ - /तेली/, /चोर/ - /चोरी/
/समज/ - /समजाता/, /मंग/ - /मंगता/, /कर्ज/ - /कर्जई/
/सेर/ - /सेरनी/, /मसाल/ - /मसालची/, /मिस्त्री/ - /मिस्त्रूमा/
/चोर/ - /चोरटी/, /नाई/ - /नऐण/, /पड़ाकू/ - /पड़ाक्ण/
/कमल/ - /कमला/, /नंद/ - /नंदोइ/, /रसो/ - /रसोइया/
/मम्मा/ - /ममेर/, /दक्वान/ - /दक्वानदारी/, /गरीब- /गरीबो/,
/डब्बु/ - /डब्बी/, /डब्बा/ - /डब्ड़ु/ - /डब्बड़/

(2) *विशेषण :* केवल विशेषण से लगते हैं :

/चार/ - /चारो/, /सत्त/ - /सत्तुअ/, /काट/ - /कटिया/,
/बड्डा/ - /बड्ड़ा/, /अद्दा/ - /अदरवड़/, /दो/ - /दोरा/,
/दोसरू/ - /द्मुआ/, /दूज्जड़/ - /दुंदा/, /दुनला/ - /दोगला/
/मिस्सा/ - /म्सैड़/, /बेल्ला/ - /बेल्लड़/, /काळा/ - /काळरव्ड़अ/,
/मैला/ - /मैलखोर/

(3) *सर्वनाम :* एक ही वर्ग के सर्वनामों के साथ लिंग और वचन विभक्ति के रूप में लगते हैं :

/इस/ - /इसा/, /तिस/ - /तिसा/, /कुस/ - /कुसा/
/तू/ - /तुसा/ - /तुसे/

वर्ग परिवर्ती पर प्रत्यय : अति उत्पादक । विशेषण, परसर्ग और परसर्गीय क्रिया विशेषण के साथ जोड़े जा सकते हैं :

क्रिया :

/चल/ - /चाल्ला/, /कस/ - /कसौट/, /गठ/ - /गठाइ/
/बैठ/ - /बैठक/, /माळ/ - /माळन/, /बुण/ - /बुणटी/ -
/बुण्टर/बुण्तर, /मंग/ - /मंगता/

विशेषण के साथ :

/लाल/ - /लालगी/, /काळा/ - /काळख/
/खट्टा/ - /खट्यास/, /साफ/ - /सफाई/

परसर्ग और परसर्गीय क्रिया विशेषण के साथ :

/बार/ - /बारक/, /अग्गे/ - /अग्गा/, /ग्वार/
/पस्से/ - /पस्सा/, /गब्बे/ - /गबो/

विशेषण : विशेषण निर्माण वर्ग परिवर्ती पर प्रत्यय संज्ञा, क्रिया, परसर्ग और परसर्गीय क्रिया विशेषण के साथ जोड़े जा सकते हैं । यथा:

संज्ञा के साथ :

/सराब/ - /सराबी/,/रोग/ - /रोगी/ - /रोगन/रोगण,/अत्थ/ - /आथल/,
/समज/ - /समजदार/, /गुस्सा/ - /गुस्याळ/, /चुगली/ - /चुगलखोर/,
/मर्द/ - /मर्दान्नु/,/खतरा/ - /खतरनाक//नखरा/ - /नखरेल/,
/नखरेवाला//संज/ - /संजका/, /गेत/ - /गेत्ता/

क्रिया के साथ : उदाहरण (1) संज्ञा : ये क्रिया,

/सड़/ - /सड़ीरा/, /स्वाणा/ - /खाउ/ - /खजरु/ /चल/ - /चलदा/,
/चालू/, /मार/ - /मरैल/, /द्वा/ - /द्वाळ/, /सोणा/ - /सोतड़/
/मिलणा/ - /मिलणसार/

क्रिया विशेषण और परसर्गीय रूप

/कल/ - /कल्कण/ - /कलका/, /एठ/ - /एठला/,
/बार/ - /बारला/, /गब्बे/ - /गबला/

/उप्पर/ - /उप्परवाळा/, /पार/ - /पारला/
/मंज/ - /मंजला/, /पिछे/ - /पछेत्ता/

पूर्व प्रत्यय योजना : कांगड़ी में पूर्व प्रत्यय योजन की प्रक्रिया केवल संज्ञा और विशेषणों पर लागू होती है । यह प्रक्रिया इस भाषा में अधिक उत्पादक नहीं है । पूर्व प्रत्यय योजन में वर्ग परिवर्ती और वर्ग अपरिवर्ती का भेद भी बना रहता है ।

वर्ग अपरिवर्ती पूर्व प्रत्यय : उत्पादक नहीं है । उदाहरण के लिए : (1) केवल संज्ञा के साथ जोड़े जा सकते हैं ।

/ठार/ - /क्ठार/, /पंच/ - /सरपंच/
/देस/ - /परदेस/, /मर्द/ - /नमर्द/
/लोक/ - /परलोक/, /जात/ - /क्जात/
/टंग/ - /क्टंग/, /जोग/ - /संजोग/
/मार्ग/ - /क्मार्ग/, /बुद्धि/ - /सबुद्धि/
/पिठ/ - /परपिठ/, /अड/ - /त्राडा/
/ओंगल/ - /त्रोंगल/, /टैम/ - /बेटैम/
/बालक/ - /नबालक/, /दोत्तु/ - /पड़दोत्तु/
/कादस/ - /द्वादस/ - /त्रयोदस/

(2) ***विशेषण***

/लायक/ - /नलायक/, /प्यारा/ - /क्प्यारा/
/कम्म/ - /नकम्मा/, /फारा/ - /न्फारा/

वर्ग परिवर्ती पूर्व प्रत्यय : अधिक उत्पादक नहीं ।

उदाहरण :

(1) *संज्ञा*

/पड़/ - /अनपड़/ /फल/ - /त्रिफला/, /पाया/ - /चपाया/

(2) *विशेषण*

/जाण/ - /अणजाण/, /कड़/ - /अण्कड़/
/प्रवा/ - /लाप्रवा/, /सबर/ - /बेसबर/ - /बेसबरा/
/मतलब/ - /बेमतलब/, /टैम/ - /बेटैम/
/कोर/ - /चकोर/, /जात/ - /बदजात/

/पता/ - /लापता/, /आंख/ - /सनखा/
/लज्ज/ - /निर्लज्ज/, /भय/ - /निर्भय/
/बस/ - /बेबस/, /सरम/ - /बेसरम/
/नाम/ - /बदनाम/

मध्य प्रत्यय/संयोजक प्रत्यय : कांगड़ी में संयोजक प्रत्यय अधिक उत्पादक नहीं हैं । कुछ ही उदाहरण दिए जा सकते हैं । ये दो वर्ग बनाते हैं । वर्ग एक में दो रूप वर्ग शब्द बिना किसी रूपान्तरण के जुड़ते हैं । उदाहरण के लिए : मारोमार । वर्ग दो में संयोजित होने से पहले प्रथम रूप का आधार रूपान्तरित होता है । ये व्युत्पन्न रूप किसी भी रूपवर्ग शब्दों के मिश्रण हो सकते हैं । संरचना शब्द मिश्रित रूप का कार्य नहीं कर सकते । उदाहरण के लिए :

/मारोमार/, /सड़कोसड़क/, /बातेंबात/, /रातेंरात/ - /रातोंरात/ /दिनोदिन/, /अत्थोअत्थ/ - /अत्थोअत्थिया/, /कन्नोकन्न/ /कारोबार/, /बिलोबिल/,/बिल्लोबिलिया/, /अग्गोअग्गिया/, /गबोगब/ - /गबोगबिया/ /गसोगास/ - /गासोगासिया/, /आसो असिया/, /छेड़ाछेड़ी/, /एराफेरी/, /बारोबारी/, /बखोबखिया/, /जटाजट/, /सटासट/, /फटाफट/,
/दड़ोदड़ी/ - /दड़ादड़ी/, /चड़ोचड़ी/, /कड़ाकड़/
/चलोचली/, /चलीचल/, रखीरख/, /करीचल/, /सैज/, /छड़ीदे/, /देइदे/, /जुटम जुटटा/, /गुत्थमगुत्था/, /धक्कमधक्का/

सर्वादेश – आंशिक

कांगड़ी में कुछ रूप हैं विशेषकर कुछ क्रियाएं और सर्वनाम जो न तो आन्तरिक परिवर्तन से बनते हैं और न ही पूर्ण सर्वादेश से । इन मामलों में मूल रूप विशेष प्रकार के परिवर्तन में आते हैं जिनकी व्याख्या या आंशिक सर्वादेश रूप में आ जाने पर वर्णन अच्छी प्रकार से किया जा सकता है । भले ही वे आन्तरिक परिवर्तन की प्रक्रिया में ऐसे मामले विवरण को जटिल बना देते हैं क्योंकि वे न तो आन्तरिक रूपान्तरण तक सीमित होते हैं और न ही उनमें स्वरात्मक परिवर्तन होता है । उदाहरण के लिए :

/बेच/ - /बिक/ - /बक/, /दे/ - /दित/ - /द्‌व/

/सों/ - /सुत/ - /स्व/,
/कर/ - /कित/ - /क्रया/
/तोल/ - /तुल/ - /त्ल्वा/, /ओ/ - /उंद/ (निषेधात्मक रूप)
/ज/ - /ग/ (पूर्णवाचक)- /जांद/
/ए/ - /इस/(तिर्यक)- /इने/ (अभिकर्ता)
/ओ/ - /उस/ - /उने/, /सै/ - /तिस/ - /तिने/,
/कुण/ - /कुस/ - /कुने/

3. आन्तरिक परिवर्तन

वर्ग 1 - इस वर्ग में स्वरात्मक ध्वनियां आन्तरिक रूप में एक-दूसरे में रूप के भीतर परिवर्तन करती हैं । उदाहरण के लिए :

/लेख/ - /लिख/, /चल/ - /चाल/, /मिल/ - /मेल/,
/रख/ - /राख/, /कुळ/ - /कोळ/, /कर/ - /कार/,
/तोल/ - /तुल/

वर्ग 2 - इस वर्ग में एक ही स्वर ध्वनि मूल रूपों के भीतर स्थानान्तरित हो जाती है । उदाहरण के लिए :

/चल/ - /चला/, /कर/ - /करा/, /गळ/ - /गळा/

वर्ग 3 - इस वर्ग में स्वरात्मक ध्वनि में परिवर्तन होता है और वह मूल रूप के भीतर स्थानान्तरित होता है । उदाहरण के लिए :

/चीर/ - /चरा/, /तोल/ - /तलव/, /मेल/ - /म्लाल/

वर्ग 4 - इस वर्ग में व्युत्पन्न स्वर ध्वनि को जोड़ने से पहले स्वरात्मक ध्वनि में मूल रूप के भीतर परिवर्तित होता है या उसका रूपान्तरण होता है ।

/चल/ - /चाल्ला, /चर/ - /चारा/, /रख/ - /राखा/ - /राखी/

4. पुनरुक्ति

कांगड़ी में पुनरुक्ति की प्रक्रिया तीन प्रकारों की है:

1. *पूर्ण* : इस वर्ग में समूचे मूल रूप की बिना किसी स्वनिमिक परिवर्तन के पुनरावृत्ति होती है । उदाहरण के लिए :

/छोड़/ - /छोड़/, /खाई/ - /खाई/, /बैठ बैठ/, /कन्ने कन्ने/,/आसी आसी/, /कर कर/, /नेड़े नेड़े/, /पले पले/, /दुआर दुआर/, /कई कई/, /लाल लाल/, /छयाल छयाल/, /सारी सारी/, /परी परी/ /रोई रोई/, /किती किती/, /कोइ कोइ/, /कदी कदी/, /मिट्ठा मिट्ठा/, /नर्म नर्म/, /गोल गोल/

2. *आंशिक* :– आंशिक पुनरुक्ति दो प्रकार की है :

(i) जहां दोनों रूप अकेले में किसी शब्दगत अथवा व्याकरणिक अर्थ से विहीन रहते हैं । उदाहरण के लिए :

/आळा द्वाला/, /जाप्ता/, /जंख पंख/

(ii) इसमें मूल रूप कुछ शब्दगत अर्थ देते हैं किन्तु मूल रूप से पुनरुक्त रूप अर्थहीन होते हैं । इस प्रकार दोनों रूपों से, अर्थात् मूल और पुनरुक्त रूप से जो अर्थ निकालता है वह पुनरुक्त होता है । उदाहरणार्थ :

/चुप-चाप/, /सुनसान/, /लीरलार/ ~ लूर/,
/बीड़ी-बाड़ी ~ बूड़ी/, /तेल-तूल् ~ ताल/, /पो पो ~ पू/
/मजा मुजा/

(iii) अकेले में पहला रूप अर्थहीन है । जैसे -

/चू मू/, /अता पता/

शून्य विकृति

वर्ग 1 : भावार्थक संज्ञा में क्रियाओं से शून्य विकृति द्वारा संज्ञाएं व्युत्पन्न की जाती हैं । उदाहरण के लिए :

खाना (सं) ~ खाना (क्रि.), गाना (सं) ~ गाना (क्रि.)
जीना (सं) ~ जीना (क्रि.), गर्जना(सं) ~ गर्जना (क्रि.)
बरसणा (सं) ~ बरसणा (क्रि.)

वर्ग 2 : क्रिया धातु से संज्ञा के अर्थात् क्रिया रूप के तुमर्थ चिह्न का लोप करके व्युत्पन्न होता है । यह बड़ा उत्पादक है । उदाहरण के लिए :

'नाप' - नापणा, घोल-घोलणा
जीत - जीतणा, जोड़ - जोड़णा/ना
आर - आरना, खंग - खंगणा

वर्ग 3 : पुल्लिंग संज्ञा के स्वरांत /आ/ के तिर्यक कारक एक वचन रूप चिह्न का व्युत्पन्न कर्तृकारक के पुल्लिंग संज्ञा के स्वरांत /आ/ के बहुवचन रूप चिह्न से होता है । उदाहरण के लिए :

चारा घोड़े ~ घोड़े रा स्वार
लाड़े रा घोड़ा ~ कई लाड़े
दो झोटे ~ झोटे रा मुल
काम्मे जो सद ~ सारे काम्मे

वर्ग 4 : संज्ञा के बहुवचन रूपों का व्युत्पन्न शून्य विकृति से होता है। उदाहरण के लिए :

बोल्ड, घर, तेली, पो, माणु, रंग, ढंग, बोल

समासीकरण

कांगड़ी में संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण, परसर्ग और क्रिया पर समासीकरण की प्रक्रिया लागू होती है । यथा:

जंतर मंतर, जादूटोना, गवाड़ा पिछवाड़ा

(i) संज्ञा मूल + मूल: घर-घुक्कर, सिर-पैर, गल-बात, बाब/मो, घर जवाई, मो-माया, बण-सरकार, दिन-रात

(ii) मूल + मूल + विभक्ति : सीना जोरी, घुड़स्वारी,

(iii) मूल + विभक्ति + मूल + विभक्ति : करनीभरनी, लेखा जोखा, आरी बमारी ।

(iv) भावार्थक संज्ञा + भावार्थक संज्ञा (क्रि.) आसणा-खेलणा, खाणा-पीणा, चलना + फिरना

(v) क्रिया धातु + क्रिया धातु ; उठ-बैठ, चल फिर, ओ बैठ, देखसुण, आंदक जांदक, भनतरोड़, नापतोल, आरजीत, ले दे ।

2. विशेषण

(i) सं + सं = चितचोर, ज्बानजोर, भलामानस, मु जोर

(ii) सं + क्रि = मु लग, सिरफिरा, सिरकड, मणुमार, मु फट, दांत फाड़

(iii) संख्या + सं. = दमुआ + नलक्खा, चबट्टा, पंजपतिया

(iv) वि. + वि. = हरा भरा, खरा बुरा, साफ सुथरा, लम्मा चौड़ा,

खरा खोटा, असली नकली, सस्ता मैंगा

(v) वि. + सं. = कमजोर, कम अक्कल

(vi) क्रि. + क्रि. = भुल्या भटक्या, देंदा पैंदा, खांदा पींदा, रइसई, नापी तोली गल

(vii) क्रि. + स. = चलचित

(viii) वि. + क्रि. = कचबा, अदचोल

3. परसर्ग

बल (निकट, साथ), बलाते (निकट से), बलरा (निकट का);
पर (ऊपर), पराते (ऊपर से), परारा (ऊपर का);
खा (दिशा, की ओर), खते (की ओर से), उदाहरण के लिए :
खारे खाते (एक लक्ष्य की ओर से), उपराखाते (ऊपर की ओर से)
इतखाते, बुनखारा ।

4. क्रिया विशेषण

(1) अग्गे पिच्छे
(2) अज्जे कल्ले, दोता संजा
(3) एथे उप्पर
(4) हॅस्दे खेल्दे, उठदे बैठदे
(5) खाइणे, जौणे, तोइने, देखिने

5. क्रिया

(1) देखसुण + करना (प्रचालित क्रिया)
(2) औंदे जांदे + प्रचालित क्रिया सुचस रेणा, बैठणा, ग्लाणा, मिलणा ।
(3) खाणे + प्रचालित क्रिया जैसे कि लगणा, देणा, जाणा
(4) करी + प्रचालित क्रिया देणा, लेणा
(5) आसद केल्द + प्रचालित क्रिया रेणा, करणा
(6) औणा जाणा + प्रचालित क्रिया रखणा
(7) करदा + प्रचालित क्रिया रैणा, जाणा
(8) आस्ळा रखण, कमकरण, सक्ककर्म, जेरदेणा, सला लैण्णा
(9) गल्बा + करणा, सिर-पैर मारणा, ऐठ उप्पर करणा, चुपचाप रैणा ।

कांगड़ी सर्वनाम : व्याकरणिक – अर्थपूरक विश्लेषण

डॉ. मधुबाला

भाषा संप्रेषण के उपकरण के रूप में विचार विमर्श और परस्पर संबंधों के लिए प्रयुक्त होती है । समाज में अर्थ परक प्रयोजनों के लिए भाषा का जो प्रयोग होता है, उसका विश्लेषण व्याकरणिक – अर्थपरक होता है । विभिन्न सामाजिक संदर्भों में व्याकरणिक रूपों में जो परिवर्तन आते हैं उनका व्याकरणिक अध्ययन होता है और विभिन्न सामाजिक स्थितियों में उन प्रयुक्त व्याकरणिक रूपों के अर्थ का अध्ययन अर्थपरक विश्लेषण के अन्तर्गत आता है । व्याकरणिक – अर्थपरक दृष्टि से सर्वनामों का जो अध्ययन किया गया है उसमें एक ओर व्याकरणिक संरचना को स्पष्ट किया गया है और दूसरी ओर अर्थपरक अभिरचनाओं का विवेचन किया गया है । हैलिडे (1983) ने स्थिति की संरचना के लिए तीन तत्त्वों, अर्थात् क्षेत्र, सरणि और प्रकार को प्रस्तुत किया है, इन तत्वों को अर्थपरक दृष्टि से संप्रत्ययात्मक, अंतर व्यक्तिक और संदर्भपरक रूप में दिखाया गया है । इन घटकों का अध्ययन अर्थ के 'प्रकारों' के रूप में किया गया है जो प्रत्येक सामाजिक संदर्भ में भाषा के प्रत्येक प्रयोग में मिलते हैं । हैलिडे ढांचे को ध्यान में रखते हुए इस शोध पत्र में मेरा मुख्य केन्द्र बिन्दु उन सर्वनामों का विश्लेषण करना है जिनका प्रयोग कांगड़ी भाषियों के वार्तालाप में बहुधा होता है ।

कई व्याकरणिक रूप वाक्–क्रिया और प्रतिभागी के सामाजिक व्यवहार से परस्पर जुड़े होते हैं और ये रूप विभिन्न वाक् स्थितियों में कार्य करते हैं । विभिन्न वाक्–घटनाओं व जिन संदर्भों का आदान–प्रदान होता है, उन्हें सामाजिक मूल्यों से अलग नहीं किया जा सकता । स्थिति का संदर्भ निश्चित संस्कृति से पैदा होता है जो प्रतिभागियों को विद्यमान प्रयुक्ति के अभिलक्षणों का अनुमान लगाने के लिए बाध्य करता है ताकि वे एक–दूसरे को समझ सकें । विभिन्न भूमिका सम्बन्धों को निभाने वाले संवादी की पहचान कराने में सार्वजनिक प्रयोग सहायक हो सकते हैं । विभिन्न भूमिका नियन्त्रित सम्बन्धों में जो सार्वनामिक रूप होते हैं, वे संख्या में सीमित होते हैं किन्तु संवादी के बीच जो सम्बन्ध होता है, उसकी प्रकृति के अनुसार उनके प्रकार्यों में परिवर्तन होता है । संवाद के दौरान, कुछ

सार्वनामिक रूप अपने लिए प्रयुक्त होते हैं और कुछ सम्बोधित व्यक्तियों के लिए होते हैं । सार्वनामिक सामंजस्य प्राय: वक्ता और श्रोता के बीच काम करता है । वक्ता इस सामंजस्य को बनाए रखना चाहता है । सामंजस्य के अतिक्रमण से भिन्न सूचना मिलने की प्रवृत्ति रहती है ।

सार्वनामिक नेटवर्क

कांगड़ी में सर्वनामों का सीमित समुच्चय सार्वनामिक नेटवर्क में निहित रहता है। संवादियों के बीच प्रयुक्त होने वाले सर्वनामों के अतिरिक्त अन्य सर्वनाम भी हैं जो देशकाल सापेक्ष संदर्भ में होते हैं (जब प्रतिभागी देश और काल में अलग होते हैं)। सभी सर्वनाम उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष एक वचन (आदरसूचक और आदरेतर सूचक) और बहुवचन (आदरसूचक) सर्वनामों की श्रेणी में समूहित किए जाते हैं । निम्नलिखित सारणी कांगड़ी का सार्वनामिक नेटवर्क दिखाती है ।

सारिणी एक

समूह क एकवचन	समूह ख समूह ग बहुवचन
संम्बोधित/सम्बोधक हा/मैं/असां	असां (हम)
रूप सम्बोधित तूं/तैं/तुसां	तुसां (तुम)
सन्दर्भपरकदूरस्थ सै (वह)	ओ (वे)
रूप निकटस्थ ए (यह)	ए (ये)
व्यक्तिक सै/ओ/ए (वह)	
विशिष्ट	
सामान्य	ओ/ए
संदर्भ रूप (संबोधन रूपों	
से बाहर व्याप्त)	
आप	

उपर्युक्त सारिणी में उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष सर्वनामों के लिए द्विश्रेणी पद्धति का प्रयोग होता है । अन्य पुरुष (संकेतवाचक) सर्वनामों को दो समूहों में

वर्गीकृत किया जा सकता है - व्यक्तिक और विशिष्ट । पहला व्यक्ति-विशेष है (अन्य को छोड़कर) और बाद का अवैयक्तिक वक्ता है अर्थात् एक ही वाक् क्रिया स्थिति में वक्ता और बाहरी व्यक्ति दोनों है । उत्तम पुरुष सर्वनाम और मध्यम पुरुष सर्वनाम केवल प्राणीवाचक संज्ञाओं के लिए प्रयुक्त होते हैं जबकि अन्य पुरुष प्राणीवाचक या अप्राणीवाचक दोनों संज्ञाओं के लिए प्रयुक्त होता है । उपर्युक्त सर्वनामों के बीच जो अंतः संबंध है, उसे घटक विश्लेषण की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है ।

I	/मैं/हऊं/	+ प्राणीवाचक	+ प्राणीवाचक
		- बहुवचन	/असां/
	- बहुवचन	± नर	± नर
II	/तुं/	+ प्राणीवाचक	+ बहुवचन
	± नर	/तुसां/	± प्राणीवाचक
	+ आदरेतर सूचक	± नर	
	+ निम्न	+ निम्न	
III	/सै/ओ/	± बहुवचन	
	± बहुवचन		
	± नर	/ए/	± नर
	± आदर सूचक	± आदर सूचक	
	± दूरस्थ		
	+ निकटस्थ		
	± प्राणीवाचक		± प्राणीवाचक

सर्वनामों के घटक विश्लेषण से सर्वनामों के अर्थपरक और व्याकरणिक प्रकार्य, दोनों स्पष्ट होते हैं । फेडरिचि (1979:69) के मतानुसार, ''सर्वनामिक प्रयोग व्याकरणिक संरचना के अनिवार्य वर्गीकरणों के क्षेत्र और अर्थपरक वर्गीकरणों के दूसरे क्षेत्र के बीच विश्लेषणात्मक अभिगम्य कड़ी स्थापित करते हैं जो सामाजिक संस्कृति में समान अनिवार्य दिशा स्पष्ट करते हैं । मध्यम पुरुष सर्वनाम गहन संरचना और समाज के अत्यन्त भीतर के बीच सीमा बनाते हैं ।'' सतही स्तर पर व्याकरणिक वर्गीकरणों से संबद्ध सर्वनाम गहन स्तर पर विभिन्न अर्थ छटाओं में प्रतिबिंबित होते हैं । जहां जाने - अनजाने सर्वनामों के प्रयोग से बचा जाता है, वहां क्रिया सर्वनामों की प्रकृति को स्पष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है ।

संदिग्धता वहीं पैदा होती है जहां सर्वनाम क्रिया रूपों से नियंत्रित नहीं होते । उदाहरण के लिए :

(तू) इत्थु अइ जा
(तुसां) इत्थु अइ जाणेयु ।

कोष्ठक में दिए गए सर्वनाम प्रयुक्त हो भी सकते हैं और नहीं भी । तीव्र उच्चारण में ये सर्वनाम प्रायः हटा दिए जाते हैं । इन सर्वनामों के स्थान पर व्यक्तिगत नाम, या नाते-रिश्ते के शब्द या व्यावसायिक शब्द प्रयुक्त होते हैं ।

संयुक्त वाक्य में, सर्वनाम (जो पूर्ववर्ती संज्ञा के बारे में बताते हैं) संज्ञा की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए प्रतिस्थापित होते हैं । ये सर्वनाम अधिक अमूर्त होते हैं और उस संबोधित शब्द की अपेक्षा वितरण में अधिक स्वतन्त्र होते हैं जिसके बारे में वे बताते हैं । उदाहरणार्थ :

रामे सप्प दिखिया, सप्प दिक्खिवी ने सै
डरी गेया कनै सै बड़ी मुश्कले ते घरे पुज्जिया
(राम ने सांप देखा, सांप को देखते ही वह डर गया और बड़ी मुश्किल से घर पहुंचा ।)

इस प्रकार की कई वाक्यात्मक रचनाओं में सर्वनामों का कार्य व्यापार दिखवाई देता है । जब वक्ता संबोधित व्यक्ति से अपना संबंध स्पष्ट करना चाहते हैं, तब वक्ता द्वारा सर्वनामों का प्रयोग संबोधित शब्द के साथ भी होता है । उदाहरणार्थ:

[भाउ + तुसां] → भाउ तुसां मेरी गल बी सुणो
↓
[संबोधित शब्द + सर्वनाम]

[अम्मा + तूं] → अम्मा तूं क्या करादी
↓
[संबोधित शब्द + सर्वनाम]
[ø + तुसां] → तुसां मत जान्नेयो
[ø + तूं] → तूं कै नी सुणदी

जहां नाम बोलना वर्जित है, वहां सार्वनामिक रूप तू (तुसां विशिष्ट भूमिका निभाते हैं) कर्तावाचक संकेतवाचक सर्वनामों के अतिरिक्त संप्रदान, अपादान, और संबंध कारकों के रूप में ऐसे कई सर्वनाम हैं जिनकी आवश्यकता सुनिश्चित व्याकरणिक प्रकार्य और भाषा के संदर्भ के अनुसार पड़ती है ।

कारक	उत्तम पुरुष	मध्यम पुरुष	अन्य पुरुष
संप्रदान एक.	मिंजो	तिजा	तिस्जो / तिस
बहु.	सांजो	तुआंजो	तिनाजो
अपादान एक.	मेत्ते	तेत्ते	तिने
बहु.	सात्ते	तुआते	तिने
संबंध एक.	मेरा	तेरा तिस्दा	/ तिस्दे
बहु.	साडा	तुआडा	तिंनादा / तिनादे
स्त्री. एक.	मेरी	तेरी	तिस्दी
	सडी	तुआडी	तिनादी
स्त्री. बहु.	मेरियां	तेरियां	तिस्दियां
	साडियां	तुआडियां	तिंनादियां

उपर्युक्त सारिणी में उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष सर्वनाम, लिंग, वचन और कारक के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं । आदरेतर एक वचन रूप निम्न सामाजिक स्तर के लोगों को, अपने से कम आयु के लोगों को और अनौपचारिक स्थितियों में, मित्रों में परस्पर तथा समान लोगों को संबोधित करने के लिए प्रयुक्त होते हैं । आदरसूचक एक वचन रूप उच्च सामाजिक स्तर के लोगों के लिए, बड़ों के लिए, अपरिचितों आदि के लिए प्रयुक्त होते हैं ।

सामाजिक – अर्थपरक प्रकार्य

वार्तालाप की दृष्टि से मध्यम पुरुष सर्वनाम महत्वपूर्ण है । फ्रिडरिक के शब्दों में, ''मध्यम पुरुष सर्वनामों के समुच्चय सैद्धांतिक रुचि के हैं क्योंकि वे किसी भाषा में मूलभूत व्याकरणिक रूपावली की अमूर्त्त विशेषताओं को सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट घटकों की उस दूसरी आधात्री के साथ जोड़ते हैं जो बारंबार घटित होते हैं और उनका भावात्मक तथा सामाजिक महत्व होता है ।'' यहां मध्यम पुरुष

सर्वनामों के लिए सामाजिक – अर्थपरक प्रकार्य मान लिया गया है क्योंकि व्यक्ति को सामान्यतः /तू/या/तुसां/ दो सर्वनामों में से किसी एक से संबोधित किया जाता है किन्तु जब श्रोता एक से अधिक हों तो उन्हें सार्वनामिक रूप /तुसां/ से संबोधित किया जाता है । इस प्रकार /तुसां/ शब्द के प्रयोग में द्वैयता दिखाई देती है ।

/तुसां/ > तुम + अन्य (सम्मिलित)] पु0 /तुसां/ > तुम + ø (सम्मिलित न करना)] स्त्री0

उत्तम और मध्यम पुरुष सर्वनाम सहभागी वार्तालाप में प्रयुक्त होते हैं जबकि अन्य पुरुष सर्वनाम सहभागी वार्तालाप से बाहर प्रयुक्त होते हैं । मध्यम पुरुष सर्वनाम दो प्रकार के अर्थ देते हैं अर्थात् 'सामान्य' और ' संदर्भपरक ' । संदर्भपरक अर्थ सार्वनामिक परिवर्तन का परिणाम है । यह परिवर्तन क्षणिक भी हो सकता है और दीर्घकालीन भी । संदर्भपरक विशेषताओं को भाषिक रूपों में जुड़े प्रत्ययों की सहायता से पहचाना जा सकता है ।

I. सामान्य → [तूं चल -------------------- क्रि. + ø]
[तुसां चल्ला ---------------- क्रि. + आ]

II. विनम्रतासूचक → [तूं चल्लें/चल्लेआं ---- क्रि. + एं /एआं]
(संदर्भपरक) [तुसां चलनेओ ---- क्रि. + नेओ]

मध्यम पुरुष सर्वनाम /तूं/और /तुसां/ पांच संभव भाषिक रूपों अर्थात् चल/चल्ला/चल्लें/चल्लेआं/चल्लेओ/ के अनुकूल होते हैं । मध्यम सर्वनाम की द्विस्तरीय पद्धति को इस प्रकार दिखाया जा सकता है :

	तूं (एक)		तुसां (बहु.)
	↓		↓
आदर सूचक पु.	चल	+	चल्ला
	+		
आदरेतर सूचक स्त्री.	चल्ले/चल्लेआं		चलनेओ

उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष सर्वनामों को लिंग-वचन के अनुसार निम्नलिखित रूप में चार भाषिक प्रत्ययों की सहायता से दिखाया जा सकता है :

वचन लिंग भाषिक रूप
एक. बहु.
पु. -आ -ए
करादा/करादे
स्त्री. -ई -इआं
करादी/करादियां

सर्वनामों और क्रियाओं के प्रयोग में जो परिवर्तन होता है उसे चिन्हक द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। ये चिन्हक सर्वनामों और क्रियाओं के प्रयोग के सोपान क्रम में विकल्पन प्रस्तुत करते हैं।

एकवचन (पु.. स्त्री.) बहुवचन (पु.. स्त्री.)

चिह्नित
मैं करादा/-दी मैं करता हूं असां करादे/-दियां तम
सर्वनाम
+ तूं करादा/-दी तू करता है तुसां
करादे/-दियां तुम लोग
अचिह्नित सै/ओ/ए करादा/-दी वह करता/ती है सै/ओ/ए
करादे/दियां वे

क्रिया		(दूरस्थ + निकट)
अचिह्नित	सै करादा	वह करता है
	सै करादे	वे करते हैं (बहु.)
सर्वनाम	सै करादे	वे करते हैं(एक.)
	सै करादियां	वे करती हैं(स्त्री.)
+	सै करादी	वह करती है
चिह्नित	मैं करादा	मैं करता हूं (पु.)
सर्वनाम	मैं करादी	मैं करती हूं (स्त्री.)

जहां क्रियाएं अचिह्नित रहती हैं, वहां सर्वनाम संबोधक के साथ संबोधित के साथ या उसके विपरीत संबंधपरक स्थिति को दिखाने का कार्य करता है । किन्तु जहां सर्वनाम अचिह्नित रहते हैं वहां क्रियाएं लिंग और वचन के बीच भिन्नता लाने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं । इसलिए व्याकरणिक दृष्टि से सर्वनाम और क्रियाएं एक साथ महत्वपूर्ण कार्य करती हैं । यह स्पष्ट है कि सार्वनामिक समुच्चय द्विमुखी सत्ता है जो एक ओर व्याकरणिक आधात्री से जुड़ी है और दूसरी ओर अर्थपरक आधात्री से ।

सामाजिक – मनौवैज्ञानिक विशिष्टता

सार्वनामिक प्रयोग के विभिन्न आयाम हैं - (क) संबोधक, (ख) संबोधित, (ग) संप्रेषण सरणि और (घ) सामाजिक स्थिति। सर्वनामों के प्रयोग में परिवर्तनशीलता जनसांख्यिकी और संदर्भपरक पहलुओं से नियंत्रित है । जनसांख्यिकी पहलु लिंग, जाति, आयु, शिक्षा और सामाजिक वर्ग की ओर संकेत करता है और संदर्भपरक पहलु औपचारिक तथा अनौपचारिक व्यवहार से स्पष्ट होते हैं । खूबचंदानी के अनुसार (1976: 10) भारतीय भाषाओं का यह विशिष्ट अभिलक्षण है कि सर्वनामों के अर्थपरक कथ्य वाक् क्रिया के विन्यास और संप्रेषणीय कार्य के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं । प्रारम्भ में अपरिचित व्यक्ति संबोधित को सर्वनाम के औपचारिक रूप से संबोधित करता है किन्तु कुछ समय बाद जब उन दोनों में आत्मीयता आ जाती है तो वे अनौपचारिक रूप में परिवर्तित हो जाते हैं । इसी प्रकार, मां को संबोधित करते हुए आदरेतर सर्वनाम का प्रयोग होता है किन्तु अन्य लोगों की उपस्थिति में आदर सूचक सर्वनाम में परिवर्तन हो जाता है । इस प्रकार सार्वनामिक परिवर्तन जनसांख्यिकी और संदर्भपरक पहलुओं से नियंत्रित होते हैं । शक्ति और आत्मीयता का द्विभाजन भी सर्वनामों के प्रयोग को पहचानने में सहायता करता है, जैसा कि ब्राउन और फोर्ड ने चर्चा की है (1964: 234) । साउथवर्थ (1974: 183) ने उस व्यक्ति को संबोधित करने के लिए विशिष्ट 'तू' के प्रयोग को निर्धारित किया है जिसका वक्ता के आगे कोई स्तर नहीं होता है अर्थात् वक्ता के आगे उसकी कोई शक्ति नहीं होती, जैसे कि वह वक्ता का सेवक या बच्चा होता है या वक्ता से जिस व्यक्ति की विशेष दूरी इतनी कम होती है कि उसके साथ शक्ति और स्तर की बात लागू नहीं होती। उदाहरण के लिए, वक्ता का समवयस्क आत्मीय मित्र ! यह सही है कि जब दो मित्रों में आत्मीयता बढ़ती है तो शक्ति अपनी विशिष्टता खो बैठती है । वाक् व्यवहार सदैव

गत्यात्मक स्थिति में रहता है । अर्थात् प्रतिभागियों की संप्रेषणीय आवश्यकता के अनुसार यह शक्ति घटती-बढ़ती रहती है ।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि -

(1) सर्वनामों के प्रयोग में सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और व्याकरणिक तीनों पक्ष अर्थीय दृष्टि से संगत हैं । ये तीनों पहलू सर्वनामों के जालक्रम के निर्माण में एक दूसरे से जुड़े हुए हैं ।

(2) मध्यम पुरुष सर्वनाम व्याकरणिक संरचना और अर्थपरक संरचना के क्षेत्र के बीच ऐसा संबंध स्थापित करता है जो सामाजिक संरचना में दिखाई देता है ।

(3) सामाजिक-अर्थपरक दृष्टि से जनसांख्यिकी और संदर्भपरक दोनों पहलू महत्वपूर्ण हैं ।

(4) सम्वादियों के बीच भूमिका - संबंध सार्वनामिक प्रयोग के अनुसार बदलते रहते हैं ।

प्रतिभागी लेखक

डॉ0 बंशीराम शर्मा हिण्डोल, कुसुम्पटी, शिमला - 171 009

डॉ0 हरिराम जसटा अम्बिका निवास, इंजिनघर, संजौली, शिमला -171006

डॉ0 प्रत्यूष गुलेरी सरस्वती नगर, धर्मशाला (हि0 प्र0)

डॉ0 विश्वचन्द्र ओहरी बलसन एस्टेट, शिमला -171001

डॉ0 पीयूष गुलेरी अपर्णाश्री, आवास कालोनी, धर्मशाला (हि0 प्र0)

डॉ0 गौतम व्यथित नेरटी, ज़िला कांगड़ा, (हि0 प्र0)

श्री सी0 आर0 बी0 ललित नाभा हाउस, शिमला (हि0 प्र0)

डॉ0 शमी शर्मा सेरा थाना, ज़िला कांगडा, (हि0 प्र0)

श्री देसराज डोगरा चैतड़ू, ज़िला कांगडा, (हि0 प्र0)

श्री अश्विनीकुमार गर्ग आकाशवाणी, शिमला -171004

श्री एम0 आर0 ठाकुर द्वारा देवप्रस्थ साहित्य संगम, ढालपुर, कुल्लू (हि0 प्र0)

डॉ0 कृष्णकुमार गोस्वामी 1764, औट्रम लाइन्ज़, गुरु तेग बहादुर नगर, दिल्ली

डॉ0 नवरत्न कपूर जीवन संत कुटीर, 1697, मुहल्ला दीवान मूलचन्द, पटियाला

डॉ0 श्यामलाल डोगरा सुजानपुर टीहरा, ज़िला हमीरपुर, (हि0 प्र0)

डॉ0 हुकमचन्द्र पट्याल डक्कन कालेज़, पूना

डॉ0 देवीप्रसन्न पटनायक पूर्व निदेशक, केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मानस गंगोत्री, मैसूर (कर्नाटक)

डॉ0 जगदीशचन्द्र शर्मा प्रो0 एवं उपनिदेशक, केन्द्रीय भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर (कर्नाटक)

डॉ0 ए0 आर0 चौहान इंग्लिश टीचिंग इन्स्टीट्युट, चण्डीगढ़

डॉ0 मधुबाला भाषा-विज्ञान विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)